श्रीमान् परमपूज्य प्रातःस्मरणीय आबालब्रह्मचारी
गिरिनार आदि तीर्थोद्धारक शासनप्रभाविक
तपागच्छाधिपति जंगमयुगप्रधान
जैनाचार्य श्री श्री श्री १००८ श्री

विजयनीतिसूरीश्वरजी महाराज साहिब

के

कर कमलों में

सादर समर्पण

भवदीय कृपापात्र—

भगवानदास जैन

श्रीमान् शासनप्रभाविक गिरिनार आदि तीर्थोद्धारक जंगमयुगप्रधान जैनाचार्य श्री विजयनीतिसूरीश्वरजी, महाराज, तथा श्रीमान् शान्तमूर्ति विद्वद्वर्य मुनिराज श्री जयंतविजयजी महाराज, एवम् खरतरगच्छीय प्रवर्त्तिनी साध्वी श्रीमती पुण्यश्रीजी महाराज की विदुषी शिष्यरत्ना साध्वी श्रीमती विनयश्रीजी महाराज, उक्त तीनों पूज्यवरों के उपदेश द्वारा अनेक सज्जनों ने प्रथम से ग्राहक होकर मुझे उत्साहित किया है, जिसे यह ग्रंथ प्रकाशित होने का श्रेयः आपको है।

श्रीमान् शासनसम्राट् जंगमयुगप्रधान जैनाचार्य श्री विजयनेमिसूरीश्वरजी महाराज के पट्टधर जैनागम-न्याय-दर्शन-ज्योतिष-शिल्प-शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्री विजयोदयसूरीश्वरजी महाराज ने ग्रंथ को शुद्ध करने एवं कहीं२ कठिन अर्थ को समझाने की पूर्ण मदद की है, इसलिये मैं उनका बड़ा आभार मानता हूँ।

श्रीमान् प्रवर्त्तक श्री कान्तिविजयजी महाराज के विद्वान् प्रशिष्य मुनिराज श्री जसविजय जी महाराज के द्वारा प्राचीन भंडारों से अनेक विषय की हस्त-लिखित प्राचीन पुस्तकें नकल करने को प्राप्त हुई हैं एतदर्थ आभार मानता हूँ। मिस्त्री भायशंकर गौरीशंकर सोमपुरा पालीताना वाले से मंदिर सम्बन्धी नकशे एवम् माहिती प्राप्त हुई हैं, तथा जयपुरवाले पं० जीवराज ओंकारलाल मूर्तिवाले ने कई एक नकशे एवम् सुप्रसिद्ध मुसब्बर बद्रीनारायण जगन्नाथ चित्रकार ने सब देव देवियों आदि के फोटो बना दिये हैं तथा जिन सज्जनों ने प्रथम से ग्राहक बनकर मदद की है, उन सब को धन्यवाद देता हूँ।

अनुवादक

प्रस्तावना.

मकान, मंदिर और मूर्त्ति आदि कैसे सुंदर कला पूर्ण बनाये जावें कि जिसको देखकर मन प्रफुल्लित हो जाय और खर्चा भी कम लगे। तथा उनमे रहनेवालों को क्या २ सुख दुःख का अनुभव करना पड़ेगा? एवं किस प्रकार की मूर्त्ति से पुन्य पापो के फल की प्राप्ति हो सकती है? इत्यादि जानने की अभिलाषा प्रायः करके मनुष्यों को हुआ करती है। उन सबको जानने के लिये प्राचीन महर्षियों ने अनेक शिल्प ग्रंथो की रचना करके हमारे पर महान् उपकार किया है। लेकिन उन ग्रंथो की सुलभता न होने से आजकल इसका अभ्यास बहुत कम हो गया है। जिससे हमारी शिल्पकला का ह्रास हो रहा है। सैकड़ों वर्ष पहले शिल्पशास्त्र की दृष्टि से जो इमारते बनी हुई देखने मे आती हैं, वे इतनी मजबूत हैं कि हजारों वर्ष हो जाने पर भी आज कल विद्यमान हैं और इतनी सुंदर कलापूर्ण हैं कि उनको देखने के लिये हजारों कोसों से लोग आते हैं और देखकर मुग्ध हो जाते हैं। शिल्पकला का ह्रास होने का कारण मालूम होता है कि– मुसलमानों के राज्य में जबरदस्ती हिन्दू धर्म से भ्रष्ट करके मुसलमान बनाते थे और सुंदर कला पूर्ण मंदिर व इमारतें जो लाखों रुपये खर्च करके बनायी जाती थी उनका विध्वंस कर डालते थे और ऐसी सुंदर कला युक्त इमारते बनाने भी न देते थे एवं तोड़ डालने के भय से बनाना भी कम हो गया। इन अत्याचारों से शिल्पशास्त्र के अभ्यास की अधिक आवश्यकता न रही होगी। जिससे कितनेक ग्रंथ दीमक के आहार बन गये और जो मुसलमानों के हाथ आये वे जला दिये गये। जो कुछ गुप्त रूप से रह गये तो उनका जानकार न होने से अभी तक यथार्थ रूप से प्रकट न हो सके। जो पांच सात ग्रंथ छपे हैं, उनसे साधारण जनता को कोई लाभ नहीं पहुँच सकता। क्योंकि वे मूलमात्र होने से जो विद्वान् और शिल्पी होगा वही समझ सकता है। तथा हिन्दी भाषान्तर पूर्वक जो 'विश्वकर्मा प्रकाश' आदि छपे हुए हैं। वे केवल शब्दार्थ मात्र है, भाषान्तर करनेवाले महाशय को शिल्प शास्त्र का अनुभव पूर्वक अभ्यास न होने से उनकी परिभाषा को समझ नहीं सका, जिसे शब्दार्थ मात्र लिखा है एवं नकशे भी नहीं दिये गये, तो साधारण जनता कैसे समझ सकती है? मैंने भी तीन वर्ष पहले इस ग्रंथ का भाषान्तर शब्दार्थ मात्र किया था, उसमें मेरे को कुछ भी अनुभव न होने से समझता नही था। बाद विचार हुआ कि इसको अच्छी तरह समझकर एवं अनुभव करके लिखा जाय तो जनता को लाभ पहुँच सकेगा। ऐसा विचार कर तीन वर्ष तक इस विषय के कितनेक ग्रंथों का अध्ययन करके अनुभव भी किया। बाद इस ग्रंथ को सविस्तार खुलासावार लिखकर और नकशे आदि देकर आपके सामने रखने का साहस किया है। हिन्दी भाषा में इस विषय के पारिभाषिक शब्दों की सुलभता न होने से मैंने संस्कृत में ही रखे हैं, जिसे एक देशीय भाषा न होते सार्वत्रिक यही शब्दों का प्रयोग हुआ करे।

प्रस्तुत: ग्रंथ के कर्त्ता करनाल (देहली) के रहनेवाले जैनधर्मावलम्बी श्रीधंधकुल में उत्पन्न होनेवाले कालिक सेठ के सुपुत्र ठक्कुर 'चंद्र' नामके सेठ के विद्वान् सुपुत्र ठक्कुर 'फेरु' ने संवत् १३७२ में रचा है, ऐसा इस ग्रंथ की समाप्ति में प्रशस्ति से मालूम होता है। एवं उन्हीं का बनाया हुआ दूसरा 'रत्न परीक्षा' नामक ग्रंथ 'जिसमें हीरा, पन्ना, माणक, मोती, लहसनीया, प्रवाल, पुखराज आदि रत्नों की; सोना, चांदी, पीतल, तांवा, जसत, कलइ और लोहा आदि धातुओं की तथा पारा, सिंदुर, दक्षिणावर्त्तशंख, रुद्राक्ष, शालिग्राम, कपूर, कस्तूरी, अम्बर, अगरु, चंदन, कुंकुम इत्यादिक की परीक्षा का वर्णन है, उसकी प्रशस्ति में लिखा है कि—

सिरिधंधकुल आसी कन्नाणपुरम्मि सिट्ठिकालियओ ।
तस्स य ठक्कुर चंदो फेरु तस्सेव अंगरुहो ॥ २५ ॥
तेण य रयणपरीक्खा रइया संखेवि ढिल्लियपुरीए ।
कर[२]-मुणि[७]-गुण[३]-ससि[१]-वरिसे अलावदीणस्स रज्जम्मि ॥ २६ ॥
श्रीढिल्लीनगरे वरेण्यधिषण: फेरू इति व्यक्तधी-
मूर्द्धन्यो वणिजां जिनेन्द्रवचने वेचारिकग्रामणी: ।
तेनेयं विहिता हिताय जगतां प्रासादबिम्बक्रिया,
रत्नानां विदुषां चमत्कृतिकरी सारा परीक्षा स्फुटम् ॥ २७ ॥

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि फेरू ने देहली में रहकर अलाउद्दीन बादशाह के समय में सम्वत् १३७२ में वास्तुसार और रत्नपरीक्षा ग्रंथ रचे हैं।

इस वास्तुसार प्रकरण ग्रंथ का श्राद्धविधि और आचार प्रदीप आदि ग्रन्थों में प्रमाण मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि प्राचीन आचार्यों ने भी इस ग्रन्थ को प्रमाणिक माना है।

प्रस्तुत ग्रंथ में तीन प्रकरण हैं। प्रथम गृहलक्षण प्रकरण है, उसमें भूमि परीक्षा, शल्य-शोधन विधि, खात आदि के मुहूर्त्त, आय व्यय आदि का ज्ञान, १६ और ६४ जाति के मकानों का स्वरूप, द्वारप्रवेश, वेध जानने का प्रकार ६४, ८१, १०० और ४९ पद के वास्तु चक्र, गृह सम्बन्धी शुभाशुभ फल, मकान बनाने के लिये कैसी लकड़ी वापरना चाहिये, इत्यादि विषयों का सविस्तर वर्णन है। दूसरा बिम्बपरीक्षा नाम का प्रकरण है, उसमें पत्थर की परीक्षा तथा मूर्त्तियों के अंग विभाग का मान तथा उनको बनाने का प्रकार एवं उनके शुभाशुभ लक्षण हैं। तीसरा प्रासाद प्रकरण है, उसमें मंदिर के प्रत्येक अंग विभाग के मान और उनको बनाने का प्रकार दिया गया है। इन तीनों प्रकरण की कुल २८२ मूल गाथा हैं। उनका सविस्तर भाषान्तर सब सज्जनों के समझ में आ जाय इस प्रकार नक्शे आदि बतलाकर स्पष्टतया किया गया है। जो

---

१ प्रथम पत्र नहीं है यह श्री यशोविजय जैन गुरुकुल के संस्थापक श्री चारित्रविजय जैन ज्ञानमंदिर से मुनि श्री दर्शनविजयजी महाराज द्वारा प्राप्त हुई है।

विषय इसमें अपूर्ण था, वह मैंने दूसरे ग्रंथ जो इसके योग्य थे, उनमें से लेकर रख दिया है। तथा ग्रंथ की समाप्ति के बाद मैंने परिशिष्ट में वज्रलेप जो प्राचीन समय में दीवाल आदि के ऊपर लेप किया जाता था, जिससे उन मकानों की हजारों वर्ष की स्थिति रहती थी। उसके पीछे जैन धर्म के तीर्थंकर देव और उनके शासन देव देवी तथा सोलह विद्यादेवी, नवग्रह, दश दिग्पाल इत्यादि का सचित्र स्वरूप मूल ग्रंथ के साथ दिया गया है। तथा अंत में प्रतिष्ठा सम्बन्धी मुहूर्त्त भी लिख दिया है। इत्यादि विषय लिखकर सर्वांग उपयोगी बना दिया है।

भाषान्तर में निम्न लिखित ग्रंथों से मदद ली है—

१ अपराजीत, २ ज्ञानप्रकाश का आयतत्त्वाधिकार, ३ क्षीरार्णव १५ अध्ययन, ४ दीपार्णव का जिनप्रासाद अध्ययन, ५ प्रासादमंडन, ६ रूपमंडन, ७ प्रतिमा मान लक्षण, ८ परिमाण मंजरी, ९ मयमतम् १० शिल्परत्न, ११ राजवल्लभ, १२ शिल्पदीपक, १३ समरांगण सूत्रधार, १४ युक्ति कल्पतरु, १५ विश्वकर्म प्रकाश, १६ लघु शिल्प संग्रह, १७ विश्वकर्म विद्या प्रकाश, १८ जिन संहिता, १९ बृहत्संहिता अ० ५२ से ५९, २० सुलभ वास्तु शास्त्र, २१ बृहत् शिल्प शास्त्र, इन शिल्प ग्रन्थों के अतिरिक्त–२२ निर्वाण कलिका, २३ प्रवचन सारोद्धार, २४ आचार दिनकर, २५ विवेक विलास, २६ प्रतिष्ठा सार, २७ प्रतिष्ठा कल्प, २८ आरंभ सिद्धि, २९ दिन शुद्धि, ३० लग्न शुद्धि, ३१ मुहूर्त्त चिन्तामणि, ३२ ज्योतिष रत्नमाला, ३३ नारचंद्र, ३४ त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, ३५ पद्मानंद महाकाव्य चतुर्विंशतिजिनचरित्र, ३६ जोइस हीर, ३९ स्तुति चतुर्विंशतिका सटीक (बप्पभट्टी शोभनमुनि और मेरुविजय कृत)।

प्रस्तुत ग्रंथ की हस्त लिखित प्रतिएँ निम्नलिखित ठिकाने से कोपी करने के लिये मिली थी

२ शासनसम्राट् जैनाचार्य श्री विजयनेमिसूरीश्वर ज्ञान भंडार, अहमदाबाद।

२ श्वेताम्बर जैन ज्ञान भंडार, जयपुर।

१ इतिहास प्रेमी मुनि श्री कल्याणविजयजी महाराज से प्राप्त।

१ मुनि श्री भक्तिविजयजी ज्ञान भंडार, भावनगर से मुनि श्री जसविजयजीमहाराज द्वारा प्राप्त।

१ जयपुर निवासी यतिवर्य्य पं० श्यामलालजी महाराज से प्राप्त।

उपरोक्त सातों ही प्रति बहुत शुद्ध न थीं जिससे भाषान्तर करने में बड़ी मुश्किल पड़ी, जिससे कहीं २ गाथा का अर्थ भी छोड़ा गया है विद्वान् सुधार कर पढ़ें और मेरे को भूल की सूचना करेंगे तो आगे सुधार कर दिया जायगा।

मेरी मातृभाषा गुजराती होने से भाषा दोष तो अवश्य ही रह गये होंगे, उनको सज्जन उपहास न करते हुए सुधार करके पढ़ें। किमधिकं सुज्ञेषु।

सं० १९९२ मार्गशीर्ष
शुक्ला २ गुरुवार

अनुवादक—

विषयानुक्रमणिका

दूसरा बिम्बपरीक्षा प्रकरण

तीसरा प्रासाद प्रकरण

परिशिष्ट

प्रतिष्ठादिक के मुहूर्त्त

* श्री वीतरागाय नमः *

परम जैन चन्द्राङ्गज ठक्कुर 'फेरु' विरचितम्—

सिरि-वत्थुसार-पयरणं

मंगलाचरण—

सयलसुरासुरविंदं दंसण[1]वरणाणगुणं पणमिऊणं[2] ।
गेहाइ-वत्थुसारं संखेवेणं भणिस्सामि ॥ १ ॥

सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान वाले ऐसे समस्त सुर और असुर के समूह को नमस्कार करके मकान आदि बनाने की विधि को जानने के लिये वास्तुसार नामक ग्रंथ को संक्षेप से मैं (ठक्कुर फेरु) कहता हूं ॥ १ ॥

द्वार गाथा—

इगवन्नसयं च गिहे बिंबपरिक्खस्स गाह तेवन्ना ।
तह सत्तरिपासाए दुगसय चउहुत्तरा सव्वे ॥ २ ॥

इस वास्तुसार नाम के ग्रंथ में तीन प्रकरण हैं, इनमें प्रथम गृहवास्तु नाम के प्रकरण में एकसौ इकावन (१५१), दूसरा बिंब परीक्षा नाम के प्रकरण में तेवन (५३)

---

१ 'दंसणनाणगुणं (?)' ऐसा पाठ युक्तिसंगत मालूम होता है ।

२ नमिऊणं ।

और तीसरा प्रासाद प्रकरण में सत्तर (७०) गाथा हैं। कुल दो सौ चौहुँत्तर (२७४) गाथा हैं ॥ २ ॥

भूमि परीक्षा—

चउवीसंगुलभूमी खणेवि पूरिज्ज पुण वि सा गत्ता।
तेणेव मट्टियाए हीणाहियसमफला नेया ॥ ३ ॥

मकान आदि बनाने की भूमि में २४ अंगुल गहरा खड्डा खोदकर निकली हुई मिट्टी से फिर उसही खड्डे को पूरे। यदि मिट्टी कम हो जाय, खड्डा पूरा भरे नहीं तो हीन फल, बढ़ जाय तो उत्तम और बराबर हो जाय तो समान फल जानना ॥३॥

अह सा भरिय जलेण य चरणसयं गच्छमाण जा सुसइ।
ति-दु-इग अंगुल भूमी अहम मज्झम उत्तमा जाण ॥ ४ ॥

अथवा उसी ही २४ अंगुल के खड्डे में बराबर पूर्ण जल भरे, पीछे एक सौ कदम दूर जाकर और वापिस लौटकर उसी ही जलपूर्ण खड्डे को देखे। यदि खड्डे में तीन अंगुल पानी सूख जाय तो अधम, दो अंगुल सूख जाय तो मध्यम और एक अंगुल पानी सूख जाय तो उत्तम भूमि समझना ॥ ४ ॥

वर्णानुकूल भूमि—

सियविप्पि अरुणखत्तिणि पीयवइसी अ कसिणसुद्दी अ।
मट्टियवण्णपमाणा भूमी निय निय वण्णसुक्खयरी ॥५॥

सफेद वर्ण की भूमि ब्राह्मणों को, लाल वर्ण की भूमि क्षत्रियों को, पीले वर्ण की भूमि वैश्यों को और काले वर्ण की भूमि शूद्रों को, इस प्रकार अपने २ वर्ण के सदृश रङ्गवाली भूमि सुखकारक होती है ॥ ५ ॥

दिक् साधन—

समभूमि दुकरवित्थरि दुरेह चक्कस्स मज्झि रविसंकं।
पढमंतछायगब्भे जमुत्तरा अद्धि-उदयत्थं ॥ ६ ॥

समतल भूमि पर दो हाथ के विस्तार वाला एक गोल चक्र करना और इस गोल के मध्य केन्द्र में बारह अंगुल का एक शंकु स्थापन करना। पीछे सूर्य के उदयार्द्ध में देखना, जहां शंकु की छाया का अंत्य भाग गोल की परिधि में लगे वहां एक चिह्न करना, इसको पश्चिम दिशा समझना। पीछे सूर्य के अस्त समय देखना, जहां शंकु की छाया का अंत्य भाग गोल की परिधि में लगे वहां दूसरा चिह्न करना, इसको पूर्व दिशा समझना। पीछे पूर्व और पश्चिम दिशा तक एक सरल रेखा खींचना। इस रेखा तुल्य व्यासार्द्ध मानकर एक पूर्व बिंदु से और दूसरा पश्चिम बिंदु से ऐसे दो गोल खींचने से पूर्व पश्चिम रेखा पर एक मत्स्याकृति (मछली की आकृति) जैसा गोल बनेगा। इसके मध्य बिंदु से एक सीधी रेखा खींची जाय जो गोल के संपात के मध्य भाग में लगे, जहां ऊपर के भाग में स्पर्श करे यह उत्तर दिशा और जहां नीचे भाग में स्पर्श करे यह दक्षिण दिशा समझना ॥६॥

दिशा साधन यंत्र
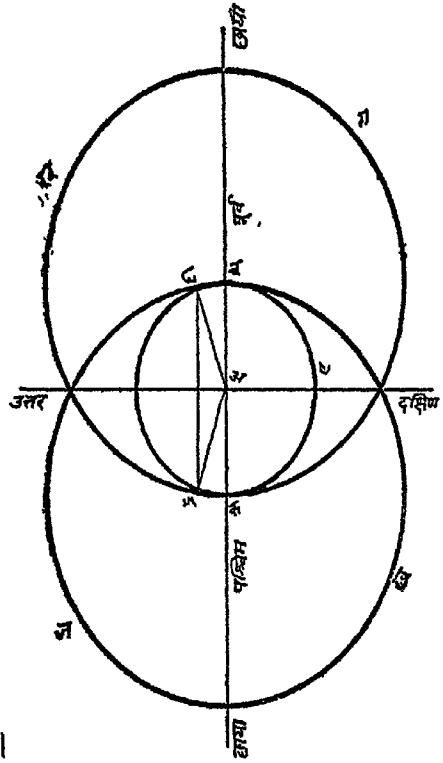
जैसे—'इ उ ए' गोल का मध्य बिन्दु 'अ' है, इस पर बारह अंगुल का शंकु स्थापन करके सूर्योदय के समय देखा तो शंकु की छाया गोल में 'क' बिन्दु के पास प्रवेश करती हुई मालूम पड़ती है, तो यह 'क' बिन्दु पश्चिम दिशा समझना और यही छाया मध्याह्न के बाद 'च' बिन्दु के पास गोल से बाहर निकलती मालूम होती है, तो यह 'च' बिन्दु पूर्व दिशा समझना। पीछे 'क' बिन्दु से 'च' बिन्दु तक एक सरल रेखा खींचना, यही पूर्वा पर रेखा होती है। यही पूर्वा पर रेखा के

बराबर व्यासार्द्ध मान कर एक 'क' बिन्दु से 'च छ ज' और दूसरा 'च' बिन्दु से 'क ख ग' गोल किया जाय तो मध्य में मच्छली के आकार का गोल बन जाता है। अब मध्य बिन्दु 'अ' से ऐसी एक लम्बी सरल रेखा खींची जाय, जो मच्छली के आकार वाले गोल के मध्य में होकर दोनों गोल के स्पर्श बिन्दु से बाहर निकले, यही उत्तर दक्षिण रेखा समझना।

मानलो कि शंकु की छाया तिरछी 'इ' बिन्दु के पास गोल में प्रवेश करती है, तो 'इ' पश्चिम बिन्दु और 'उ' बिन्दु के पास बाहर निकलती है, तो 'उ' पूर्व बिन्दु समझना। पीछे 'इ' बिन्दु से 'उ' बिन्दु तक सरल रेखा खींची जाय तो यह पूर्वा पर रेखा होती है। पीछे पूर्ववत् 'अ' मध्य बिन्दु से उत्तर दक्षिण रेखा खींचना।

चौरस भूमि साधन—

समभूमीति हीए वट्टंति अट्ठकोण कक्कडए।
कूणा दुदिसि[१]तरंगुल मज्झि तिरिय हत्थुचउरंसे ॥७॥

चौरस भूमि साधन यन्त्र

एक हाथ प्रमाण समतल भूमि पर आठ कोनों वाला त्रिज्या युक्त ऐसा एक गोल बनाओ कि कोने के दोनों तरफ सत्रह २ अंगुल के भुजा वाला एक तिरछा समचोरस हो जाय ॥ ७ ॥
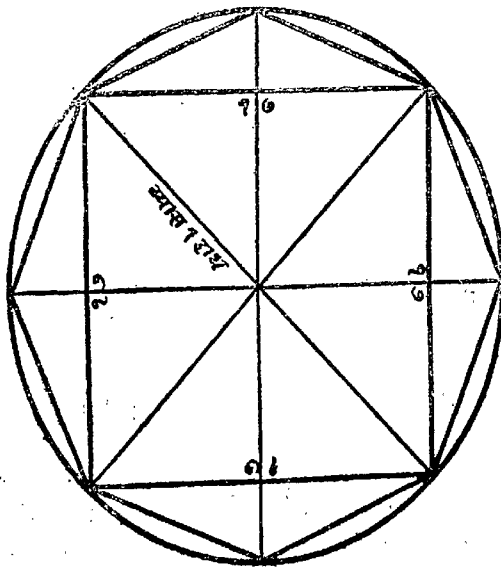
यदि एक हाथ के विस्तार वाले गोल में अष्टमांश बनाया जाय तो प्रत्येक भुजा का माप नव अंगुल होगा और चतुर्भुज बनाया जाय तो प्रत्येक भुजा का माप सत्रह अंगुल होगा।

१ 'सत्तरं' इति पाठः।

अष्टमांश भूमि स्थापना—

चउरंसि कि कि दिसे वारस भागाउ भाग पण मज्झे ।
कुणेहिं सड्ढ तिय तिय इय जायइ सुद्ध अट्ठंसं ॥ ८ ॥

अष्टमांश भूमि साधन यंत्र

सम चौरस भूमि की प्रत्येक दिशा में बारह २ भाग करना, इनमें से पांच भाग मध्य में और साढे तीन २ भाग कोने में रखने से शुद्ध अष्टमांश होता है ॥ ८ ॥

इस प्रकार का अष्टमांश मंदिरों के और राजमहलों के मंडपों में विशेष करके किया जाता है ।
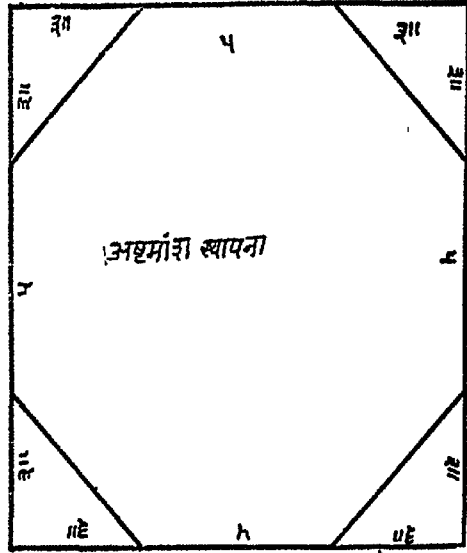
भूमि लक्षण फल—

दिणतिग वीयप्पसवा चउरंसाऽवम्मिणी[1] अफुट्टा य ।
अकल्लर[2] भू सुहया पुव्वेसाणुत्तरंबुवहा ॥ ९ ॥
वम्मइणी वाहिकरी ऊसर भूमीइ हवइ रोरकरी ।
अइफुट्टा मिच्चुकरी दुक्खकरी तह य ससल्ला ॥ १० ॥

जो भूमि बोये हुए बीजों को तीन दिन में उगाने वाली, सम चौरस, दीमक रहित, विना फटी हुई, शल्य रहित और जिसमें पानी का प्रवाह पूर्व ईशान या उत्तर तरफ जाता हो अर्थात् पूर्व ईशान या उत्तर तरफ नीची हो ऐसी भूमि सुख देने वाली

१ या । २ असल्ला ।

है ॥ ९ ॥ दीमक वाली व्याधि कारक है, खारी भूमि निर्धन कारक है, बहुत फटी हुई भूमि मृत्यु करने वाली और शल्य वाली भूमि दुःख करने वाली है ॥ १० ॥

समरांगणसूत्रधार में प्रशस्त भूमि का लक्षण इस प्रकार कहा है कि—

"घर्मागमे हिमस्पर्शा या स्यादुष्णा हिमागमे ।
प्रावृष्युष्णा हिमस्पर्शा सा प्रशस्ता वसुन्धरा ॥"

ग्रीष्म ऋतु में ठंडी, ठंडी ऋतु में गरम और चौमासे में गरम और ठंडी जो भूमि रहती हो वह प्रशंसनीय है ।

बृहत्संहिता में कहा है कि—

"शस्तौषधिद्रुमलता मधुरा सुगंधा,
स्निग्धा समा न सुषिरा च मही नराणाम् ।
अप्यध्वनि श्रमविनोदमुपागतानां,
धत्ते श्रियं किमुत शाश्वतमन्दिरेषु ॥"

जो भूमि अनेक प्रकार के प्रशंसनीय औषधि वृक्ष और लताओं से सुशोभित हो तथा मधुर स्वाद वाली, अच्छी सुगन्ध वाली, चिकनी, बिना खड्डे वाली हो ऐसी भूमि मार्ग में परिश्रम को शांत करने वाले मनुष्यों को आनन्द देती है ऐसी भूमि पर अच्छा मकान बनवाकर क्यों न रहें ।

वास्तुशास्त्र में कहा है कि—

"मनसश्चक्षुषोर्यत्र सन्तोषो जायते भुवि ।
तस्यां कार्यं गृहं सर्वै-रिति गर्गादिसम्मतम् ॥"

जिस भूमि के पर मन और आंख का सन्तोष हो अर्थात् जिस भूमि को देखने से उत्साह बढ़े उस भूमि पर घर करना ऐसा गर्ग आदि ऋषियों का मत है ।

शल्य शोधन विधि—

बकचतएहसपज्जा इअ नव वण्णा कमेण लिहियव्वा ।
पुव्वाइदिसासु तहा भूमिं काऊण नव भाए ॥ ११ ॥

अहिमंतिऊण खडियं विहिपुव्वं कन्नाया करे दाओ[१] ।
आणाविज्जइ पराहं पणहा इम अक्खरे सल्लं ॥ १२ ॥

जिस भूमि पर मकान आदि बनवाना हो, उसी भूमि में समान नव भाग करें। इन नव भागों में पूर्वादि आठ दिशा और एक मध्य में 'ब क च त ए ह स प और (जय)' ऐसे नव अक्षर क्रम से लिखें ॥ ११ ॥

पीछे 'ॐ ह्रीं श्रीं ऐं नमो वाग्वादिनि मम प्रश्ने अवतर २' इसी मंत्र से खड़ी (सफेद मट्टी) मंत्र करके कन्या के हाथ में देकर कोई प्रश्नाक्षर लिखवाना या बोलवाना। जो ऊपर कहे हुए नव अक्षरों में से कोई एक अक्षर लिखे या बोले तो उसी अक्षर वाले भाग में शल्य है ऐसा समझना। यदि उपरोक्त नव अक्षरों में से कोई अक्षर प्रश्न में न आवे तो शल्य रहित भूमि जानना ॥ १२ ॥

शल्य शोधन यंत्र

ईशान प	पूर्व ब	अग्नि क
उत्तर स	मध्य ज	दक्षिण च
वायव्य ह	पश्चिम ए	नैर्ऋत्य त

बप्पराहे नरसल्लं सड्ढकरे मिच्चुकारगं पुव्वे ।
कप्पराहे खरसल्लं अग्गीए दुकरि निवदंडं ॥ १३ ॥

यदि प्रश्नाक्षर 'ब' आवे तो पूर्व दिशा में घर की भूमि में डेढ़ हाथ नीचे नर शल्य अर्थात् मनुष्य के हाड़ आदि है, यह घर धणी को मरण कारक है। प्रश्नाक्षर में 'क' आवे तो अग्नि कोण में भूमि के भीतर दो हाथ नीचे गधे की हड्डी आदि हैं, यह घर की भूमि में रह जाय तो राज दंड होता है अर्थात् राजा से भय रहे ॥ १३ ॥

जामे चप्पराहेणं नरसल्लं कडितलम्मि मिच्चुकरं ।
तप्पराहे निरईए सड्ढकरे साणुसल्लु सिसुहाणी ॥ १४ ॥

जो प्रश्नाक्षर में 'च' आवे तो दक्षिण दिशा में गृह भूमि में कटी बराबर नीचे मनुष्य का शल्य है, यह गृहस्वामी को मृत्यु कारक है। प्रश्नाक्षर में 'त' आवे

१ दाऊं।

तो नैर्ऋत्य कोण में भूमि में डेढ़ हाथ नीचे कुत्ते का शल्य है यह बालक को हानि कारक है अर्थात् गृहस्वामी को सन्तान का सुख न रहे ॥ १४ ॥

पच्छिमदिसि एपण्हे सिसुसल्लं करदुगम्मि परएसं ।
वायवि हपण्हि चउकरि अंगारा मित्तनासयरा ॥ १५ ॥

प्रश्नाक्षर में यदि 'ए' आवे तो पश्चिम दिशा में भूमि में दो हाथ के नीचे बालक का शल्य जानना, इसी से गृहस्वामी परदेश रहे अर्थात् इसी घर में निवास नहीं कर सकता। प्रश्नाक्षर में 'ह' आवे तो वायव्य कोण में भूमि में चार हाथ नीचे अङ्गार (कोयले) हैं, यह मित्र (सम्बन्धी) मनुष्य को नाश कारक है ॥ १६ ॥

उत्तरदिसि सप्पण्हे दियवरसल्लं कडिम्मि रोरकरं ।
पप्पण्हे गोसल्लं सड्ढकरे धणविणासमीसाणे ॥ १६ ॥

प्रश्नाक्षर में यदि 'स' आवे तो उत्तर दिशा में भूमि के भीतर कमर बराबर नीचे ब्राह्मण का शल्य जानना, यह रह जाय तो गृहस्वामी को दरिद्र करता है। यदि प्रश्नाक्षर में 'प' आवे तो ईशान कोण में डेढ़ हाथ नीचे गौ का शल्य जानना, यह गृहपति के धन का नाश कारक है ॥ १६ ॥

जप्पण्हे मज्झगिहे अइच्छार-कवाल-केस बहुसल्ला ।
वच्छत्थलप्पमाणा पाएण य हुंति मिच्चुकरा ॥ १७ ॥

प्रश्नाक्षर में यदि 'ज' आवे तो भूमि के मध्य भाग में छाती बराबर नीचे अतिचार, कपाल, केश आदि बहुत शल्य जानना ये घर के मालिक को मृत्युकारक है ॥ १७ ॥

इय एवमाइ अन्निवि जे पुव्वगयाइं हुंति सल्लाइं ।
ते सव्वेवि य सोहिवि वच्छबले कीरए गेहं ॥ १८ ॥

इस प्रकार जो पहले शल्य कहे हैं वे और दूसरे जो कोई शल्य देखने में आवे उन सबको निकाल कर भूमि को शुद्ध करे, पीछे वत्स बल देखकर मकान बनवावे ॥ १८ ॥

विश्वकर्म प्रकाश में कहा है कि—

"जलान्तं प्रस्तरान्तं वा पुरुषान्तमथापि वा ।
क्षेत्रं संशोध्य चोद्धृत्य शल्यं सदनमारभेत् ॥"

जल तक या पत्थर तक या एक पुरुष प्रमाण खोदकर, शल्य को निकाल कर भूमि को शुद्ध करे, पीछे उस भूमि पर घर बनाना आरम्भ करे ।

वत्स चक्र—

तंजहा—कन्नाइतिगे पुव्वे वच्छो तहा दाहिणे धणाइतिगे ।
पच्छिमदिसि मीणातिगे मिहुणातिगे उत्तरे हवइ ॥१६॥

जब सूर्य कन्या, तुला और वृश्चिक राशि का हो तब वत्स का मुख पूर्व दिशा में; धन, मकर और कुंभ राशि का सूर्य हो तब वत्स का मुख दक्षिण दिशा में; मीन, मेष और वृष राशि का सूर्य हो तब वत्स का मुख पश्चिम दिशा में; मिथुन, कर्क और सिंह राशि का सूर्य हो तब वत्स का मुख उत्तर दिशा में रहता है ॥ १६ ॥

जिस दिशा में वत्स का मुख हो उस दिशा में खात प्रतिष्ठा द्वार प्रवेश आदि का कार्य करना शास्त्र में मना है, किन्तु वत्स प्रत्येक दिशा में तीन २ मास रहता है तो तीन २ मास तक उक्त कार्य रोकना ठीक नहीं, इसलिये विशेष स्पष्ट रूप से कहते हैं—

गिहभूमिसत्तभाए   पण-दह-तिहि-तीस-तिहि-दहक्खकमा ।
इय दिणसंखा चउदिसि सिरपुच्छसमंकि वच्छठिई ॥ २० ॥

घर की भूमि का प्रत्येक दिशा में सात २ भाग समान कीजे, इनमें क्रम से प्रथम भागमें पांच दिन, दूसरे में दश, तीसरे में पंद्रह, चौथे में तीस, पांचवें में पंद्रह, छट्ठे में दश और सातवें भाग में पांच दिन वत्स रहता है। इसी प्रकार दिन संख्या चारों ही दिशा में समझ लेना चाहिये और जिस अंक पर वत्स का शिर हो उसी के सामने का बराबर अंक पर वत्स की पूंछ रहती है इस प्रकार वत्स की स्थिति है॥२०॥

वत्स चक्र

ईशान	५ कन्या	१० कन्या	१५ कन्या	३० तुला	१५ वृश्चिक	१० वृश्चिक	५ वृश्चिक	अग्नि

पूर्व

उत्तर — घर या प्रासाद करनेकी भूमि — दक्षिण

पश्चिम

पूर्व दिशा में खात आदि का कार्य करना है उसमें यदि सूर्य कन्या राशि का हो तो प्रथम पांच दिन तक प्रथम भाग में ही खात आदि न करे, किन्तु और जगह अच्छा मुहूर्त देखकर कर सकते हैं। उसके आगे दश दिन तक दूसरे भाग को छोड़कर अन्य जगह उक्त कार्य कर सकते हैं। उसके आगे का पंद्रह दिन तीसरे भाग को छोड़कर काम करे। यदि तुला राशि का सूर्य हो तो पूरे तीस दिन मध्य भाग में द्वार आदि का शुभ काम नहीं करे। वृश्चिक राशि के सूर्य का प्रथम पंद्रह दिन पांचवां भाग को, आगे का दश दिन छट्ठा भाग को और अन्तिम पांच दिन सातवां भाग को छोड़कर अन्य जगह कार्य कर सकते हैं। इसी प्रकार चारों ही दिशा के भाग की दिन संख्या समझ लेना चाहिये।

वत्सफल—

अग्गिमओ आउहरो धणक्खयं कुणइ पच्छिमो वच्छो।
वामो य दाहिणो वि य सुहावहो हवइ नायव्वो॥२१॥

सम्मुख वत्स हो तो आयुष्य का नाशकारक है, पश्चिम (पछाड़ी) वत्स हो तो धन का क्षय करता है, बांयी ओर या दाहिनी ओर वत्स हो तो सुख-कारक जानना ॥ २१ ॥

प्रथम खात करने के समय शेषनाग चक्र (राहुचक्र) को देखते हैं, उसको भी प्रसंगोपात लिखता हूं। इसको विश्वकर्मा ने इस प्रकार बतलाया है—

"ईशानतः सर्पति कालसर्पो, विहाय सृष्टिं गणयेद् विदिक्षु ।
शेषस्य वास्तोर्मुखमध्यपुच्छं, त्रयं परित्यज्य खनेच्च तुर्यम् ॥

प्रथम ईशान कोण से शेषनाग (राहु) चलता है। *सृष्टि मार्ग को छोड़ कर विपरीत विदिशा में उसका मुख, मध्य (नाभि) और पूंछ रहता है अर्थात् ईशान कोण में नाग का मुख, वायव्य कोण में मध्य भाग (पेट) और नैर्ऋत्य कोण में पूंछ रहता है। इन तीनों कोण को छोड़कर चौथा अग्नि कोण जो खाली है, इसमें प्रथम खात करना चाहिये। मुख नाभि और पूंछ के स्थान पर खात करे तो हानिकारक है, दैवज्ञवल्लभ ग्रन्थ में कहा है कि—

"शिरः खनेद् मातृपितॄन् निहन्यात्, खनेच्च नाभौ भयरोगपीड़ाः ।
पुच्छं खनेत् स्त्रीशुभगोत्रहानिः स्त्रीपुत्ररत्नान्नवसूनि शून्ये ॥"

---

* राजवल्लभ में अन्य प्रकार से कहा है—

"कन्यादौ रवितस्त्रये फणिमुखं पूर्वादिसृष्टिक्रमात् ।"

अर्थात् सूर्य कन्या आदि तीन राशियों में हो तब शेषनाग का मुख पूर्व दिशा में रहता है। बाद सृष्टि क्रम से धन आदि तीन राशियों में दक्षिण में, मीन आदि तीन राशियों में पश्चिम में और मिथुन आदि तीन राशियों में उत्तर में नाग का मुख रहता है।

"पूर्वास्येऽनिलखातनं यममुखे खातं शिवे कारयेत् ।
शीर्षे पश्चिमगे च वह्निखननं सौम्ये खनेद् नैर्ऋते ॥"

अर्थात् नाग का मुख पूर्व दिशा में हो तब वायुकोण में खात करना दक्षिण में मुख हो तब ईशान कोण मे खात करना, पश्चिम में मुख हो तब अग्नि कोण में खात करना और उत्तर में मुख हो तब नैर्ऋत्य कोण में खात करना।

यदि प्रथम खात मस्तक पर करे तो माता पिता का विनाश, मध्य भाग नाभि के स्थान पर करे तो राजा आदि का भय और अनेक प्रकार के रोग आदि की पीड़ा हो। पूंछ के स्थान पर खात करे तो स्त्री, सौभाग्य और वंश (पुत्रादि) की हानि हो और खाली स्थान पर करे तो स्त्री पुत्र रत्न अन्न और द्रव्य की प्राप्ति हो।

यह शेष नाग चक्र बनाने की रीति इस प्रकार है—मकान आदि बनाने की भूमि के ऊपर बराबर समचोरस आठ आठ कोठे प्रत्येक दिशा में बनावे अर्थात् क्षेत्र-

र	सो	मं	बु	गु	शु	श	र
सो	मं	बु	गु	शु	श	र	सो
मं	बु	गु	शु	श	र	सो	मं
बु	गु	शु	श	र	सो	मं	बु
गु	शु	श	र	सो	मं	बु	गु
शु	श	र	सो	मं	बु	गु	शु
श	र	सो	मं	बु	गु	शु	श
र	सो	मं	बु	गु	शु	श	र
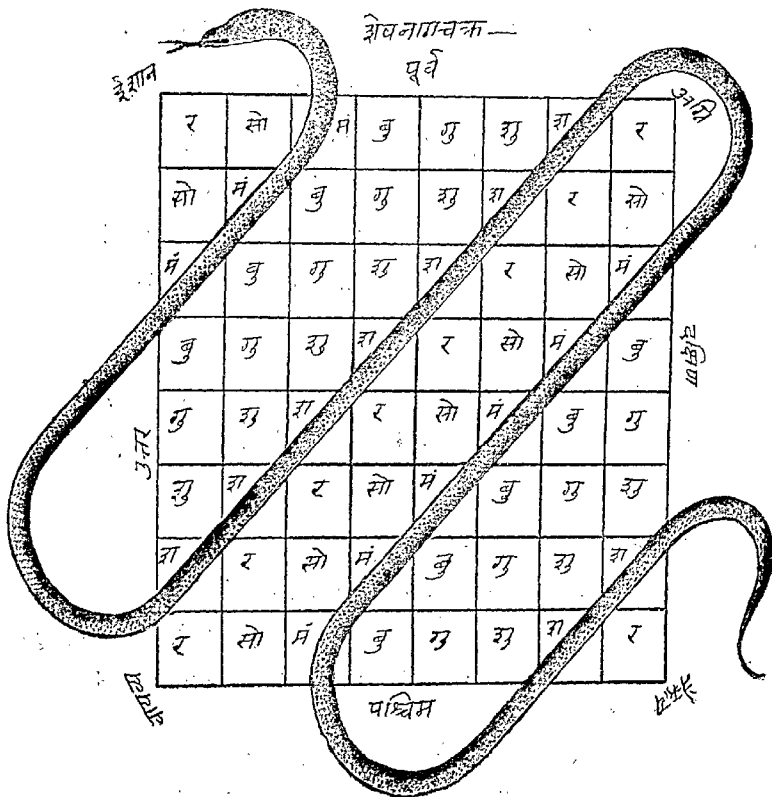
फल ६४ कोठे बनावे। पीछे प्रत्येक कोठे में रविवार आदि वार लिखे। और अंतिम कोठे में आद्य कोठे का वार लिखे। पीछे इनमें इस प्रकार नाग की आकृति बनावे कि शनिवार और मंगलवार के प्रत्येक कोठे में स्पर्श करती हुई मालूम पड़े, जहां २

नाग की आकृति मालूम पड़े अर्थात् जहां २ शनि मंगलवार के कोठे हों वहां खात आदि न करे।

नाग के मुख को जानने के लिये मुहूर्त्तचिन्तामणि में इस प्रकार कहा है कि—

"देवालये गेहविधौ जलाशये, राहोर्मुखं शंभुदिशो विलोमतः।
मीनार्कसिंहार्कमृगार्कतस्त्रिभे, खाते मुखात् पृष्ठविदिक् शुभा भवेत्॥"

देवालय के प्रारम्भ में राहु (नाग) का मुख, मीन मेष और वृषभ राशि के सूर्य में ईशान कोण में, मिथुन कर्क और सिंह राशि के सूर्य में वायव्य कोण में, कन्या तुला और वृश्चिक राशि के सूर्य में नैर्ऋत्य कोण में, धन मकर और कुंभ राशि के सूर्य में आग्नेय दिशा में रहता है।

घर के प्रारम्भ में राहु (नाग) का मुख, सिंह कन्या और तुला राशि के सूर्य में ईशान कोण में, वृश्चिक धन और मकर राशि के सूर्य में वायव्य कोण में, कुंभ मीन और मेष के सूर्य में नैर्ऋत्य कोण में, वृष मिथुन और कर्क राशि के सूर्य में अग्नि कोण में रहता है।

कुआं वावड़ी तलाव आदि जलाशय के आरम्भ में राहु का मुख, मकर कुम्भ और मीन के सूर्य में ईशान कोण में, मेष वृष और मिथुन के सूर्य में वायव्य कोण में, कर्क सिंह और कन्या के सूर्य में नैर्ऋत्य कोण में, तुला वृश्चिक और धन के सूर्य में अग्नि कोण में रहता है।

मुख के पिछले भाग में खात करना। मुख ईशान कोण में हो तब उसका पिछला कोण अग्नि कोण में प्रथम खात करना चाहिये। यदि मुख वायव्य कोण में हो तो खात ईशान कोण में, नैर्ऋत्य कोण में मुख हो तो खात वायव्य कोण में और मुख अग्नि कोण में हो तो खात नैर्ऋत्य कोण में करना चाहिये।

हीरकलश मुनि ने कहा है कि—

"वसहाइ गिणिय वेई चेइअगिणाइं गेहसिंहाइं।
जलमयर दुग्गि कन्ना कम्मेण ईसानकुणालियं॥

विवाह आदि में जो वेदी बनाई जाती है उसके प्रारम्भ में वृषभ आदि,

चैत्य (देवालय) के प्रारम्भ में मीन आदि, गृहारंभ में सिंह आदि, जलाशय में मकर आदि और किला (गढ़) के आरम्भ में कन्या आदि तीन २ संक्रांतियों में राहु का मुख ईशान आदि विदिशा में विलोम क्रम से रहता है।

शेष नाग (राहु) मुख जानने का यंत्र—

	ईशान कोण	वायव्य कोण	नैर्ऋत्य कोण	अग्निकोण
देवालय	मीन, मेष, वृष, के सूर्य में राहु मुख	मिथुन, कर्क, सिंह के सूर्य में राहु मुख	कन्या, तुला, वृश्चिक के सूर्य में राहु मुख	धन, मकर, कुंभ के सूर्य में राहु मुख
घर	सिंह, कन्या, तुला के सूर्य में राहु मुख	वृश्चिक, धन, मकर के सूर्य में राहु मुख	कुम्भ मीन, मेष के सूर्य में राहु मुख	वृष, मिथुन, कर्क के सूर्य में राहु मुख
जलाशय	मकर, कुम्भ, मीन के सूर्य में राहु मुख	मेष, वृष, मिथुन के सूर्य में राहु मुख	कर्क सिंह, कन्या के सूर्य में राहु मुख	तुला, वृश्चिक, धन, के सूर्य में राहु मुख
वेदी	वृष, मिथुन, कर्क के सूर्य में राहु मुख	सिंह कन्या, तुला के सूर्य में राहु मुख	वृश्चिक, धन, मकर के सूर्य में राहु मुख	कुम्भ, मीन, मेष के सूर्य में राहु मुख
किला	कन्या, तुला, वृश्चिक के सूर्य में राहु मुख	धन, मकर, कुंभ के सूर्य में राहु मुख	मीन, मेष, वृष के सूर्य में राहु मुख	मिथुन, कर्क, सिंह के सूर्य में राहु मुख

गृहारंभ में वृषभ वास्तु चक्र—

"गेहारंभेऽर्कभाद्वत्सशीर्षे, रामैर्दाहो वेदभिरग्रपादे ।
शून्यं वेदैः पृष्ठपादे स्थिरत्वं, रामैः पृष्ठे श्रीयुगैर्दक्षकुक्षौ ॥ १ ॥

लाभो रामैःपुच्छगैःस्वामिनाशो, वेदैर्नैःस्व्यं वामकुक्षौ मुखस्थैः ।
रामैःपीडा संततं चार्कधिष्ण्या-द्भैरुद्रैर्दिग्भिरुक्तं ह्यसत्सत् ॥ २ ॥"

गृह और प्रासाद आदि के आरम्भ में वृषवास्तु चक्र देखना चाहिये । जिस नक्षत्र पर सूर्य हो उस नक्षत्र से चन्द्रमा के नक्षत्र तक गिनती करना । प्रथम तीन नक्षत्र वृषभ के शिर पर समझना, इन नक्षत्रों में गृहादिक का आरम्भ करे तो अग्नि का उपद्रव हो । इनके आगे चार नक्षत्र वृषभ के अगले पाँव पर, इन में आरम्भ करे तो मनुष्यों का वास न रहे, शून्य रहे । इनके आगे चार नक्षत्र पिछले पाँव पर, इनमें आरंभ करे तो गृह स्वामी का स्थिर वास रहे । इनके आगे तीन नक्षत्र पीठ भाग पर, इनमें आरंभ करे तो लक्ष्मी की प्राप्ति हो । इनके आगे चार नक्षत्र दक्षिण कोख (पेट) पर, इनमें आरम्भ करे तो अनेक प्रकार का लाभ और शुभ हो । इनके आगे तीन नक्षत्र पूंछ पर, इनमें आरम्भ करे तो स्वामी का विनाश हो, इनके आगे चार नक्षत्र बांयी कोख (पेट) पर, इनमें आरम्भ करे तो गृह स्वामी को दरिद्र बनावे । इनके आगे तीन नक्षत्र मुख पर, इनमें आरम्भ करे तो निरन्तर कष्ट रहे । सामान्य रूप से कहा है कि—सूर्य नक्षत्र से चन्द्रमा के नक्षत्र तक गिनना, इनमें प्रथम सात नक्षत्र अशुभ हैं, इनके आगे ग्यारह अर्थात् आठ से अठारह तक शुभ हैं और इनके आगे दश अर्थात् उन्नीस से अट्ठाइस तक के नक्षत्र अशुभ हैं ।

वृष वास्तु चक्र—

स्थान	नक्षत्र	फल
मस्तके	३	अग्निदाह
अ पादे	४	शून्यता
पृ. पादे	४	स्थिरता
पृष्ठे	३	लक्ष्मी प्राप्ति
द. कुक्षौ	४	लाभ
पुच्छे	३	स्वामिनाश
वा कुक्षौ	४	निर्धनता
मुखे	३	पीड़ा

गृहारंभे राशिफल—

धनमीणमिहुणकण्णा संकंतीए न कीरए गेहं ।
तुलविच्छियमेसविसे पुव्वावर सेस-सेस दिसे ॥२२॥

धन मीन मिथुन और कन्या इन राशियों के पर सूर्य हो तब घर का आरंभ नहीं करना चाहिए। तुला वृश्चिक मेष और वृष इन चार राशियों में से किसी भी राशि का सूर्य हो तब पूर्व और पश्चिम दिशा के द्वारवाला घर न बनवावे, किन्तु दक्षिण या उत्तर दिशा के द्वारवाले घर का आरम्भ करे। तथा बाकी की राशियों (कर्क, सिंह, मकर और कुंभ) के पर सूर्य हो तब दक्षिण और उत्तर दिशा के द्वार वाला घर न बनावें, किन्तु पूर्व और पश्चिम दिशा के द्वार वाले घर का आरम्भ करें ।।२२।।

नारद मुनि ने बारह राशियों का फल इस प्रकार कहा है —

"गृहसंस्थापनं सूर्ये मेषस्थे शुभदं भवेत् ।
वृषस्थे धनवृद्धिः स्याद् मिथुने मरणं ध्रुवम् ॥

कर्कटे शुभदं प्रोक्तं सिंहे भृत्यविवर्द्धनम् ।
कन्या रोगं तुला सौख्यं वृश्चिके धनवर्द्धनम् ॥

कार्मुके तु महाहानि-र्मकरे स्याद् धनागमः ।
कुंभे तु रत्नलाभः स्याद् मीने सद्मभयावहम् ॥

घर की स्थापना यदि मेष राशि के सूर्य में करे तो शुभदायक है, वृष राशि के सूर्य में धन वृद्धि कारक है, मिथुन के सूर्य में निश्चय से मृत्यु कारक है, कर्क के सूर्य में शुभदायक कहा है, सिंह के सूर्य में सेवक-नौकरों की वृद्धि कारक, कन्या के सूर्य में रोगकारक, तुला के सूर्य में सुखकारक, वृश्चिक के सूर्य में धन वृद्धिकारक, धन के सूर्य में महाहानिकारक, मकर के सूर्य में धन की प्राप्ति कारक, कुंभ के सूर्य में रत्न का लाभ, और मीन के सूर्य भयदायक है।

गृहारम्भे मास फल—

सोय-धण-मिच्चु-हाणि अत्थं सुन्नं च कलह-उव्वसियं ।
पूया-संपय-अग्गी सुहं च चित्ताइमासफलं ॥२३॥

घर का आरम्भ चैत्र मास में करे तो शोक, वैशाख में धन प्राप्ति, ज्येष्ठ में मृत्यु, आषाढ़ में हानि, श्रावण में अर्थ प्राप्ति, भाद्रपद में गृह शून्य, आश्विन में कलह, कार्तिक में उजाड़, मागसिर में पूजा-सन्मान, पौष में सम्पदा प्राप्ति, माघ में अग्नि भय और फाल्गुन में किया जाय तो सुखदायक है ॥२३॥

हीरकलश मुनि ने कहा है कि—

"कत्तिय-माह-भद्दवे चित्त आसो य जिट्ठ आसाढे ।
गिहआरम्भ न कीरइ अवरे कल्लाणमंगलं ॥"

कार्तिक, माघ, भाद्रपद, चैत्र, आसोज, जेठ और आषाढ़ इन सात महिनों में नवीन घर का आरम्भ न[1] करे और बाकी के—मार्गशिर, पौष, फाल्गुण, वैशाख और श्रावण इन पांच महीनों में घर का आरम्भ करना मंगल-दायक है ।

वइसाहे मग्गसिरे सावणि फग्गुणि मयंतरे पोसे ।
सियपक्खे सुहदिवसे कए गिहे हवइ सुहरिद्धी ॥२४॥

वैशाख, मार्गशिर, श्रावण, फाल्गुण और मतान्तर से पौष भी इन पांच महीनों में शुक्ल पक्ष और अच्छे दिनों में घर का आरम्भ करे तो सुख और ऋद्धि की प्राप्ति होती है ॥ २४ ॥

पीयूषधारा टीका में जगन्मोहन का कहना है कि—

"पाषाणेष्टयादिगेहादि निंद्यमासे न कारयेत् ।
तृणदारुगृहारंभे मासदोषो न विद्यते ॥"

पत्थर ईंट आदि के मकान आदि को निंदनीय मास में नहीं करना चाहिये। किन्तु घास लकड़ी आदि के मकान बनाने में मास आदि का दोष नहीं है ।

---

[1] मुहूर्तचिन्तामणि में लिखा है कि—चैत्र में मेष, ज्येष्ठ में वृषभ, आषाढ में कर्क, भाद्रवे में सिंह, आश्विन में तुला, कार्तिक में वृश्चिक, पौष में मकर और माघ में मकर या कुंभ का सूर्य हो तब घर का आरंभ करना अच्छा माना है ।

गृहारम्भे नक्षत्र फल—

सुहलग्गे चंदबले खणिज्ज नीमीउ अहोमुहे रिक्खे ।
उड्ढमुहे नक्खत्ते चिणिज्ज सुहलग्गि चंदबले ॥२५॥

शुभ लग्न और चंद्रमा का बल देख कर अधोमुख नक्षत्रों में खात मुहूर्त करना तथा शुभ लग्न और चंद्रमा बलवान देखकर ऊर्ध्व संज्ञक नक्षत्रों में शिला का रोपण करना चाहिये ॥२५॥

पीयूषधारा टीका में माण्डव्य ऋषि ने कहा है कि—

"अधोमुखैर्भैर्विदधीत खातं, शिलास्तथा चोर्ध्वमुखैश्च पट्टम् ।
तिर्यङ्मुखैर्द्वारकपाटयानं, गृहप्रवेशो मृदुभिर्ध्रुवर्क्षैः ॥"

अधोमुख नक्षत्रों में खात करना, ऊर्ध्वमुख नक्षत्रों में शिला तथा पाटड़ा का स्थापन करना, तिर्यङ्मुख नक्षत्रों में द्वार, कपाट, सवारी (वाहन) बनवाना तथा मृदुसंज्ञक (मृगशिर, रेवती, चित्रा और अनुराधा) तथा ध्रुवसंज्ञक (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा और रोहिणी) नक्षत्रों में घर में प्रवेश करना ।

नक्षत्रों की अधोमुखादि संज्ञा—

सवण-द्द-पुस्सु-रोहिणि तिउत्तरा-सय-धणिट्ठ उड्ढमुहा ।
भरणिऽसलेस-तिपुव्वा मू-म-वि-कित्ती अहोवयणा ॥२६॥

श्रवण, आर्द्रा, पुष्य, रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, शतभिषा और धनिष्ठा ये नक्षत्र ऊर्ध्वमुख संज्ञक हैं । भरणी, आश्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मूल, मघा, विशाखा और कृत्तिका ये नक्षत्र अधोमुख संज्ञक हैं ॥ २६ ॥

आरंभसिद्धि ग्रंथ के अनुसार नक्षत्रों की अधोमुखादि संज्ञा—

'अधोमुखानि पूर्वाः स्युर्मूलाश्लेषामघास्तथा ।
भरणीकृत्तिकाराधाः सिद्धयै खातादिकर्मणाम् ॥

तिर्यङ्मुखानि चादित्यं मैत्रं ज्येष्ठा करत्रयम् ।
अश्विनी चान्द्रपौष्णानि कृषियात्रादिसिद्धये ॥
ऊर्ध्वास्यास्त्र्युत्तराः पुष्यो रोहिणी श्रवणत्रयम् ।
आर्द्रा च स्युर्ध्वजछत्राभिषेकतरुकर्मसु ॥"

पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मूल, आश्लेषा, मघा, भरणी, कृत्तिका और विशाखा ये नव अधोमुख संज्ञक नक्षत्र खात आदि कार्य की सिद्धि के लिये हैं।

पुनर्वसु, अनुराधा, ज्येष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाति, अश्विनी, मृगशिर और रेवती ये नव तिर्यक्मुख संज्ञक नक्षत्र खेती यात्रा आदि की सिद्धि के लिये हैं।

उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, पुष्य, रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा और आर्द्रा ये नव ऊर्ध्वमुख संज्ञक नक्षत्र ध्वजा छत्र राज्याभिषेक और वृक्ष-रोपन आदि कार्य के लिये शुभ हैं।

नक्षत्रों के शुभाशुभ योग मुहूर्त्त चिन्तामणि में कहा है कि—

"पुष्यध्रुवेन्दुहरिसर्पजलैः सजीवै—स्तद्वासरेण च कृतं सुतराज्यदं स्यात् ।
द्वीशाश्वितक्षवसुपाशिशिवैः सशुक्रै—र्वारे सितस्य च गृहं धनधान्यदं स्यात् ॥"

पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, मृगशिरा, श्रवण, आश्लेषा और पूर्वाषाढा इन नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र पर गुरु हो तब, या ये नक्षत्र और गुरुवार के दिन घर का आरम्भ करे तो यह घर पुत्र और राज्य देने वाला होता है।

विशाखा, अश्विनी, चित्रा, धनिष्ठा, शतभिषा और आर्द्रा इन नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र पर शुक्र हो तब, या ये नक्षत्र और शुक्रवार हो उस दिन घर का आरम्भ करे तो धन और धान्य की प्राप्ति हो।

"सारैः करेज्यान्त्यमघाम्बुमूलैः, कौजेऽह्नि वेश्माग्नि सुतार्दितं स्यात् ।
सज्ञैः कदास्रार्यमतक्षहस्तै—र्ज्ञस्यैव वारे सुखपुत्रदं स्यात् ॥"

हस्त, पुष्य, रेवती, मघा, पूर्वाषाढा और मूल इन नक्षत्रों पर मंगल हो तब, या ये नक्षत्र और मंगलवार के दिन घर का आरम्भ करे तो घर अग्नि से जल जाय और पुत्र को पीड़ा कारक होता है।

रोहिणी, अश्विनी, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा और हस्त इन नक्षत्रों पर बुध हो तब, या ये नक्षत्र और बुधवार के दिन घर का आरम्भ करे तो सुख कारक और पुत्रदायक होता है।

"अजैकपादाहिर्बुध्न्य-शक्रमित्रानिलान्तकैः ।
समन्दैर्मन्दवारे स्याद् रक्षोभूतयुतं गृहम् ॥"

पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, ज्येष्ठा, अनुराधा, स्वाती और भरणी इन नक्षत्रों पर शनि हो तब, या ये नक्षत्र और शनिवार के दिन घर का आरंभ करे तो वह घर राक्षस और भूत आदि के निवास वाला हो।

"अग्निनक्षत्रगे सूर्ये चन्द्रे वा संस्थिते यदि ।
निर्मितं मंदिरं नूनं-मग्निना दह्यतेऽचिरात् ॥"

कृत्तिका नक्षत्र के ऊपर सूर्य या चन्द्रमा हो तब घर का आरंभ करे तो शीघ्र ही वह घर अग्नि से भस्म हो जाय।

प्रथम शिला की स्थापना—

पुव्वुत्तर-नीमतले घिय-अक्खय-रयणपंचगं ठविउं ।
सिलानिवेसं कीरइ सिप्पीण सम्माणणापुव्वं ॥२७॥

पूर्व और उत्तर के मध्य ईशान कोण में नीम (खात) में प्रथम घी अक्षत (चावल) और पांच जाति के रत्न रख करके (वास्तु पूजन करके), तथा शिल्पियों का सन्मान करके, शिला की स्थापना करनी चाहिये ॥२७॥

अन्य शिल्प ग्रंथों में प्रथम शिला की स्थापना अग्नि कोण में या ईशान कोण में करने को भी कहा है।

गृह लग्न विचार:—

भिगु लग्गे बुहु दसमे दिणयरु लाहे विहप्फई किंदे ।
जइ गिहनीमारंभे ता वरिससयाउयं हवइ ॥२८॥

शुक्र लग्न में, बुध दशम स्थान में, सूर्य ग्यारहवें स्थान में और बृहस्पति केन्द्र (१-४-७-१० स्थान) में हो, ऐसे लग्न में यदि नवीन घर का खात करे तो सौ वर्ष का आयु उस घर का होता है ॥२८॥

दसमचउत्थे गुरुससि सणिकुजलाहे अ लच्छि वरिस असी।
इग ति चउ छ मुणि कमसो गुरुसणिभिगुरविबुहम्मि सयं ॥२९॥

दसवें और चौथे स्थान में बृहस्पति और चन्द्रमा हो, तथा ग्यारहवें स्थान में शनि और मंगल हो, ऐसे लग्न में गृह का आरंभ करे तो उस घर में लक्ष्मी अस्सी (८०) वर्ष स्थिर रहे। बृहस्पति लग्न में (प्रथम स्थान में), शनि तीसरे, शुक्र चौथे, रवि छट्ठे और बुध सातवें स्थान में हो, ऐसे लग्न में आरंभ किये हुए घर में सौ वर्ष लक्ष्मी स्थिर रहे ॥ २९ ॥

सुक्कुदए रवितइए मंगलि छट्ठे अ पंचमे जीवे।
इअ लग्गकए गेहे दो वरिससयाउयं रिद्धी ॥३०॥

शुक्र लग्न में, सूर्य तीसरे, मंगल छट्ठे और गुरु पांचवें स्थान में हो, ऐसे लग्न में घर का आरंभ किया जाय तो दो सौ वर्ष तक यह घर समृद्धियों से पूर्ण रहे ॥ ३० ॥

सगिहत्थो ससि लग्गे गुरुकिंदे बलजुओ सुविद्धिकरो।
कूरट्ठम-अइअसुहा सोमा मज्झिम गिहारंभे ॥३१॥

स्वगृही चंद्रमा लग्न में हो अर्थात् कर्क राशि का चंद्रमा लग्नमें हो और बृहस्पति केन्द्र (१-४-७-१० स्थान) में बलवान होकर रहा हो, ऐसे लग्न के समय घरका आरंभ करे तो उस घर की प्रतिदिन वृद्धि हुआ करे। गृहारंभ के समय लग्न से आठवें स्थान में क्रूर ग्रह हो तो बहुत अशुभ कारक है और सौम्यग्रह हो तो मध्यम है ॥ ३१ ॥

इक्केवि गहे णिच्छइ परगेहि परंसि सत्त-बारसमे ।
गिहसामिवरणनाहे अबले परहत्थि होइ गिहं ॥३२॥

यदि कोई भी एक ग्रह नीच स्थान का, शत्रु स्थान का या शत्रु के नवांशक का होकर सातवें स्थान में या बारहवें स्थान में रहा हो तथा गृहपति के वर्णका स्वामी निर्बल हो, ऐसे समय में प्रारंभ किया हुआ घर दूसरे शत्रु के हाथ में निश्चय से चला जाता है ॥३२॥

गृहपति के वर्णपति—

बंभण-सुक्कबिहप्फइ रविकुज-खत्तिय मयंकवइसो अ ।
बुहु सुद्द मिच्छ सणितमु गिहसामियवरणनाह इमे ॥३३॥

ब्राह्मण वर्ण के स्वामी शुक्र और बृहस्पति, क्षत्रिय वर्ण के स्वामी रवि और मंगल, वैश्य वर्ण का स्वामी चन्द्रमा, शूद्र वर्ण का स्वामी बुध तथा म्लेच्छ वर्ण के स्वामी शनि और राहु हैं। ये गृहस्वामी के वर्ण के स्वामी हैं ॥३३॥

गृह प्रवेश विचार—

सयलसुहजोयलग्गे नीमारंभे य गिहपवेसे अ ।
जइ अट्ठमो अ कूरो अवस्स गिहसामि मारेइ ॥३४॥

खात के आरंभ के समय और नवीन गृह प्रवेश (घर में प्रवेश) करते समय लग्न में समस्त शुभ योग होने पर भी आठवें स्थान में यदि क्रूर ग्रह हो तो घर के स्वामी का अवश्य विनाश होता है ॥३४॥

चित्त-अणुराह-तिउत्तर रेवइ-मिय-रोहिणी अ विद्धिकरो ।
मूल-द्दा-असलेसा-जिट्ठा-पुत्तं विणासेइ ॥३५॥

चित्रा, अनुराधा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, मृगशिर और रोहिणी इन नक्षत्रों में घर का आरंभ या घर में प्रवेश करे तो वृद्धि

कारक है। मूल, आर्द्रा, आश्लेषा ज्येष्ठा इन नक्षत्रों में गृहारंभ या गृह प्रवेश करे तो पुत्र का विनाश करे ॥३५॥

पुव्वतिगं महभरणी गिहसामिवहं विसाहत्थीनासं ।
कित्तिय अग्गि समत्ते गिहप्पवेसे अ ठिइ समए ॥३६॥

यदि घरका आरंभ तथा घर में प्रवेश तीनो पूर्वा (पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा), मघा और भरणी इन नक्षत्रों में करे तो घर के स्वामी का विनाश हो। विशाखा नक्षत्र में करे तो स्त्री का विनाश हो और कृत्तिका नक्षत्र में करे तो अग्नि का भय हो ॥३६॥

तिहिरित्त वारकुजरवि चरलग्ग विरुद्धजोअ दिणचंदं ।
वज्जिज्ज गिहपवेसे सेसा तिहि-वार-लग्ग-सुहा ॥३७॥

रिक्ता तिथि, मंगल या रविवार, चर लग्न (मेष कर्क तुला और मकर लग्न), कंटकादि विरुद्ध योग, क्षिण चन्द्रमा या नीच का या क्रूरग्रह युक्त चन्द्रमा ये सब घर में प्रवेश करने में या प्रारंभ में छोड़ देना चाहिये। इनसे दूसरे बाकी के तिथि वार लग्न शुभ हैं ॥३७॥

किंदुदुअडंतकूरा असुहा तिछगारहा सुहा भणिया ।
किंदुतिकोणतिलाहे सुहया सोमा समा सेसे ॥३८॥

यदि क्रूरग्रह केन्द्र (१-४-७-१०) स्थान में, तथा दूसरे आठवें या बारहवें स्थान में हो तो अशुभ फलदायक हैं। किन्तु तीसरे छट्ठे या ग्यारहवें स्थान में हो तो शुभ फल दायक हैं। शुभग्रह केन्द्र (१-४-७-१०) स्थान में, त्रिकोण (नवम-पंचम) स्थान में, तीसरे या ग्यारहवें स्थान में हो तो शुभ कारक हैं, किन्तु बाकि के (२-६-८-१२) स्थान में हो तो समान फलदायक हैं ॥३८॥

गृह प्रवेश या गृहारंभ में शुभाशुभग्रह यंत्र—

वार	उत्तम	मध्यम	जघन्य
रवि	३-६-११	६-५	१-४-७-१०-२-८-१२
सोम	१-४-७-१०-६-५-३-११	८-२-६-१२	०
मंगल	३-६-११	६-५	१-४-७-१०-२-८-१२
बुध	१-४-७-१०-६-५-३-११	२-६-८-१२	०
गुरु	१-४-७-१०-६-५-३-११	२-६-८-१२	०
शुक्र	१-४-७-१०-६-५-३-११	२-६-८-१२	०
शनि	३-६-११	६-५	१-४-७-१०-२-८-१२
राहु केतु	३-६-११	६-५	१-४-७-१०-२-८-१२

गृहों की संज्ञा—

सूरगिहत्थो गिहिणी चंदो धणं सुक्कु सुरगुरु सुक्खं ।
जो सबलु तस्स भावो सबलु भवे नत्थि संदेहो ॥३१॥

सूर्य गृहस्थ, चन्द्रमा गृहिणी (स्त्री), शुक्र धन और बृहस्पति सुख है। इन में जो बलवान् ग्रह हो वह उनके भावों का अधिक फल देता है, इसमें संदेह नहीं

है। अर्थात् सूर्य बलवान् हो तो घर के स्वामी को और चन्द्रमा बलवान् हो तो स्त्री को फलदायक है। शुक्र बलवान् हो तो धन और गुरु बलवान् हो तो सुख देता है ॥३९॥

राजा आदि के पांच प्रकार के घरों का मान—

राया सेणाहिवई अमच-जुवराय-अणुज-रणीणं ।
नेमित्तिय-विज्जाण य पुरोहियाण इह पंचगिहा ॥४०॥

एगसयं अठहियं चउसट्ठि सट्ठि असी अ चालीसं ।
तीसं चालीसतिगं कमेण करसंखवित्थारा ॥४१॥

अड छह चउ छह चउ छह चउ चउ चउ हीणाया कमेणेव ।
मूलगिहवित्थराओ सेसाण गिहाण वित्थारा ॥४२॥

चउ छच्च अट्ठ तिय तिय अड छ छ छ भागजुत्त वित्थरओ ।
सेस गिहाण य कमसो माणं दीहत्तणे नेयं ॥४३॥

राजा, सेनापति, मंत्री (प्रधान), युवराज, अनुज (छोटा भाई-सामंत), राणी, नैमित्तिक (ज्योतिषी), वैद्य और पुरोहित, इन प्रत्येक के उत्तम, मध्यम, विमध्यम, जघन्य और अतिजघन्य आदि भेदों से पांच पांच प्रकार के गृह बनते हैं। उनके उत्तम गृहों का विस्तार क्रमशः—१०८, ६४, ६०, ८०, ४०, ३०, ४०, ४०, और ४० हाथ प्रमाण है। और इन प्रत्येक में से ८, ६, ४, ६, ४, ६, ४, ४, और ४ हाथ क्रम से बार बार घटाया जाय तो मध्यम, विमध्यम, कनिष्ठ और अति कनिष्ठ घर का विस्तार बन जाता है। यह विस्तार सब मुख्य गृह का समझना चाहिये। तथा विस्तार का चौथा, छट्ठा, आठवां तीसरा, तीसरा, आठवां, छट्ठा, छट्ठा और छट्ठा भाग क्रम से विस्तार में जोड़ देवें, तो सब गृहों की लंबाई का प्रमाण हो जाता है ॥४० से ४३॥

राजा आदि के पांच प्रकार के घरों का मान यंत्र—

संख्या	माप हाथ	राजा	सेना-पति	मंत्री	युवराज	अनुज	राणी	नैमित्तिक	वैद्य	पुरोहित
उत्तम १	विस्तार	१०८	६४	६०	८०	४०	३०	४०	४०	४०
	लंबाई	१३५	७५-१६"	६७-१२"	१०६-१६"	५३-८"	३३-१८"	४६-१६"	४६-१६"	४६-१६"
मध्यम २	विस्तार	१००	५८	५६	७४	३६	२४	३६	३६	३६
	लंबाई	१२५	६७-१६"	६३	६८-१६"	४८	२७	४२	४२	४२
विमध्यम ३	विस्तार	९२	५२	५२	६८	३२	१८	३२	३२	३२
	लंबाई	११५	६०-१६"	५८-१२"	९०-१६"	४२-१६"	२०-६"	३७-८"	३७-८"	३७-८"
कनिष्ठ ४	विस्तार	८४	४६	४८	६२	२८	१२	२८	२८	२८
	लंबाई	१०५	५३-१६"	५४	८२-१६'	३७-८"	१३-१२"	३२-१६"	३२-१६"	३२-१६"
अतिकनि. ५	विस्तार	७६	४०	४४	५६	२४	६	२४	२४	२४
	लंबाई	९५	४६-१६"	५१-१२"	७४-१६"	३२	६-१८"	२८	·८	२८

चारों वर्णों के गृहमान—

वंभणखत्तियवइसासुद्दगिहेसु बत्तीस कराइ-वित्थरो भणिओ ।
चउ चउ हीणो कमसो जा सोलस अंतजाईणं ॥४४॥
दससंस-अट्ठमंसं सडंस-चउरंस-वित्थरम्महियं ।
दीहं सव्वगिहाणं य दिय-खत्तिय-वइस-सुद्दाणं ॥४५॥

प्रथम ३२ हाथ के विस्तारवाले ब्राह्मण के घर में से चार २ हाथ सोलह हाथ तक घटावें तो क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अंत्यज के घर का विस्तार होता है। अर्थात् ब्राह्मण के घर का विस्तार ३२ हाथ, क्षत्रिय जाति के घर का

विस्तार २८ हाथ, वैश्य जाति के घर का विस्तार २४ हाथ, शूद्र जाति के घर का विस्तार २० हाथ और अंत्यज के घर का विस्तार १६ हाथ है। इन वर्णों के घरों के विस्तार का दशवां, आठवां, छट्ठा और चौथा भाग क्रम से विस्तार में जोड़ देवें तो सब घरों की लंबाई हो जाती है। अर्थात् ब्राह्मण के घर के विस्तार का दशवां भाग ३ हाथ और ४।।। अंगुल जोड़ देवें तो ३५ हाथ और ४।।। अंगुल ब्राह्मण के घर की लंबाई हुई। इसी प्रकार सब समझ लेना चाहिये। विशेष यंत्र से जानना ॥४४—४५॥

चारों वर्णों के घरों का मान यंत्र—

	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	अंत्यज
विस्तार	३२	२८	२४	२०	१६
लंबाई	३५-४।।।	३१-१२	२८	२५	२०

घर के उदय का प्रमाण समरांगण में कहा है कि—

"विस्तारात् षोडशो भागश्चतुर्हस्तसमन्वितः।
तलोच्छ्रयः प्रशस्तोऽयं भवेद् विदितवेश्मनाम् ॥
सप्तहस्तो भवेज्ज्येष्ठे मध्यमे षड् करोन्मितः।
पञ्चहस्तः कनिष्ठे तु विधातव्यस्तथोदयः ॥"

घर के विस्तार के सोलहवें भाग में चार हाथ जोड़ देने से जो संख्या हो, उतनी प्रथम तल की ऊंचाई करना अच्छा है। अथवा घर का उदय सात हाथ हों तो ज्येष्ठ मान का, छह हाथ हो तो मध्यम मान का और पांच हाथ हों तो कनिष्ठ मान का उदय जानना।

मुख्य घर और अलिंद की पहिचान—

जं दीहवित्थराई भणियं तं सयल मूलगिहमाणं ।
सेसमलिंदं जाणह जहत्थियं जं बहीकम्मं ॥४६॥
ओवरयसालकक्खोवराईयं मूलगिहमिणं सव्वं ।
अह मूलसालमज्झे जं वट्टइ तं च मूलगिहं ॥४७॥

मकान की जो लंबाई और विस्तार कहा है, वह सब मुख्य घर का माप समझना चाहिये । बाकी जो द्वार के बाहर भाग में दालान आदि हो वह सब अलिंद समझना चाहिये । दीवार के भीतर पट्टशाला (मुख्य शाला) और कक्षा शाला (मुख्य शाला के बगल की शाला) आदि सब मूल घर जानना अर्थात् मूलशाला के मध्य में जो हों वे सब मूल घर ही जानना चाहिये ॥४६—४७॥

अलिंद का प्रमाण—

अंगुलसत्तहियसयं उदए गब्भे य हवइ पणसीई ।
गणियाणुसारिदीहं इक्किक्कगईइं इय परिमाणं ॥४८॥

उदय (ऊंचाई) में एक सौ सात अंगुल, गर्भ में पिचासी अंगुल और क्षेत्र जितना ही लंबाई में यह प्रत्येक अलिंद का माप समझना चाहिये ॥४८॥

शाला और अलिंद का प्रमाण राजवल्लभ में कहा है कि—

"व्यासे सप्ततिहस्तवियुक्ते, शालामानमिदं मनुभक्ते ।
पंचत्रिंशत्पुनरपि तस्मिन्, मानमुशन्ति लघोरिति वृद्धाः ॥"

घर का विस्तार जितने हाथ का हो, उसमें ७० हाथ जोड़ कर चौदह से भाग दो, जो लब्धि आवे उतने हाथ का शाला का विस्तार करना चाहिये । शाला का विस्तार जितने हाथ का हो, उसमें ३५ जोड़ कर चौदह से भाग दो, जो लब्धि आवे उतने हाथ का अलिंद का विस्तार करना ।

समरांगण सूत्रधार में कहा है कि—

"शालाव्यासार्द्धतोऽलिन्दः सर्वेषामपि वेश्मनाम् ।"

शाला के विस्तार से आधा अलिंद का विस्तार समस्त घरों में समझना चाहिये ।

गज (हाथ) का स्वरूप—

पव्वंगुलि चउवीसहिं छत्तीसिं करंगुलेहिं कंबिआ ।
अट्ठहिं जवमज्झेहिं पव्वंगुलु इक्कु जाणेह ॥४६॥

चौवीस पर्व अंगुलियों से या छत्तीस कर अंगुलियों से एक कंबिया (गज=२४ इंच) होता है । आठ यवोदर से एक पर्व्व अंगुल होता है ॥ ४६ ॥

पासाय-रायमंदिर-तडाग-पायार-वत्थभूमी य ।
इअ कंबीहिं गणिज्जइ गिहसामिकरेहिं गिहवत्थू ॥५०॥

देवमंदिर, राजमहल, तालाव, प्राकार (किला) और वस्त्र इनकी भूमि आदि का मान कंबिया (गज) से करें । तथा सामान्य लोग अपने मकान का नाप अपने हाथ से करें ॥ ५० ॥

अन्य समरांगण सूत्रधार आदि ग्रन्थों में गज तीन प्रकार के माने हैं— आठ यवोदर का एक अंगुल, ऐसे चौवीस अंगुल का एक गज, यह ज्येष्ठ गज १ । सात यवोदर का एक अंगुल, ऐसे चौवीस अंगुल का एक गज, यह मध्यम गज २ । छह यवोदर का एक अंगुल, ऐसे चौवीस अंगुल का एक गज, यह कनिष्ठ गज ३ । इसमें तीन २ अंगुल पर एक २ पर्वरेखा करने से आठ पर्वरेखा होती हैं । चौथी पर्व-रेखा पर आधा गज होता है । प्रत्येक पर्वरेखा पर फूल का चिन्ह करना चाहिये । गज के मध्य भाग से आगे की पांचवीं अंगुल का दो भाग, आठवीं अंगुल का तीन भाग और बारहवीं अंगुल का चार भाग करना चाहिये । गज के नव देवता के नाम—

"रुद्रो वायुर्विश्वकर्मा हुताशो, ब्रह्मा कालस्तोयपः सोमविष्णू ।"

गज के अग्र भाग का देवता रुद्र, प्रथम फूल का देव वायु, दूसरे फूल का देव विश्वकर्मा, तीसरे फूल का देव अग्नि, चौथे फूल का देव ब्रह्मा, पांचवें फूल का

देव यम, छठे फूल का देव वरुण, सातवें फूल का देव सोम* और आठवें फूल का देव विष्णु है। इनको गज के अग्र भाग से लेकर प्रत्येक पर्वरेखा पर स्थापन करना। इनमें से कोई भी एक देव शिल्पी के हाथ से गज उठाते समय दब जाय तो अनेक प्रकार के अशुभ फल को देनेवाला होता है। इसलिये नवीन घर आदि का आरंभ करते समय सूत्रधार को गज के दो फूलों के मध्य भाग से ही उठाना चाहिये। गज उठाते समय यदि हाथ से गिर जाय तो कार्य में विघ्न होता है।

गज को प्रथम ब्रह्मा और अग्नि देव के मध्य भाग से उठावे तो पुत्र का लाभ और कार्य की सिद्धि हो। ब्रह्मा और यम देव के मध्य भाग से उठावे तो शिल्पकार का विनाश हो। विश्वकर्मा और अग्नि देव के मध्य भाग से उठावे तो कार्य अच्छी तरह पूर्ण हो। यम और वरुण देव के मध्य भाग से उठावे तो मध्यम फल दायक है। वायु और विश्वकर्मा देव के मध्य भाग से उठावे तो सब तरह इच्छित फल दायक हो। वरुण और सोम देव के मध्य भाग से धारण करे तो मध्यम फल दायक है रुद्र और वायुदेव के मध्यम भाग से उठावे तो धन की प्राप्ति और कार्य की सिद्धि हो इसमें संदेह नहीं। विष्णु और सोमदेव के मध्य भाग से उठावे तो अनेक प्रकार की सुख समृद्धि प्राप्त हो।

शिल्पी के योग्य आठ प्रकार के सूत्र—

"सूत्राष्टकं दृष्टिनृहस्तमौञ्जं, कार्पासकं स्यादवलम्बसञ्ज्ञम्।
काष्ठं च सृष्ट्याख्यमतो विलेख्य-मित्यष्टसूत्राणि वदन्ति तज्ज्ञाः॥"

सूत्र को जाननेवालों ने आठ प्रकार के सूत्र माने हैं—प्रथम दृष्टिसूत्र १, गज (हाथ) २, तीसरा मुंज की डोरी ३, चौथा सूत का डोरा ४, पाँचवाँ अवलम्ब ५, छठा गुणिया (काठकोना) ६, सातवाँ साधणी (रेवल) ७ और आठवाँ विलेख्य (प्रकार) ८ ये आठ प्रकार के सूत्र शिल्पी के हैं।

माप का ज्ञान—

गिहसामिणो करेणं भित्तिविणा मिणसु वित्थरं दीहं।
गुणि अट्ठहिं विहत्तं सेस धयाई भवे आया॥५१॥

* धनद (कुबेर) भी कहते हैं।
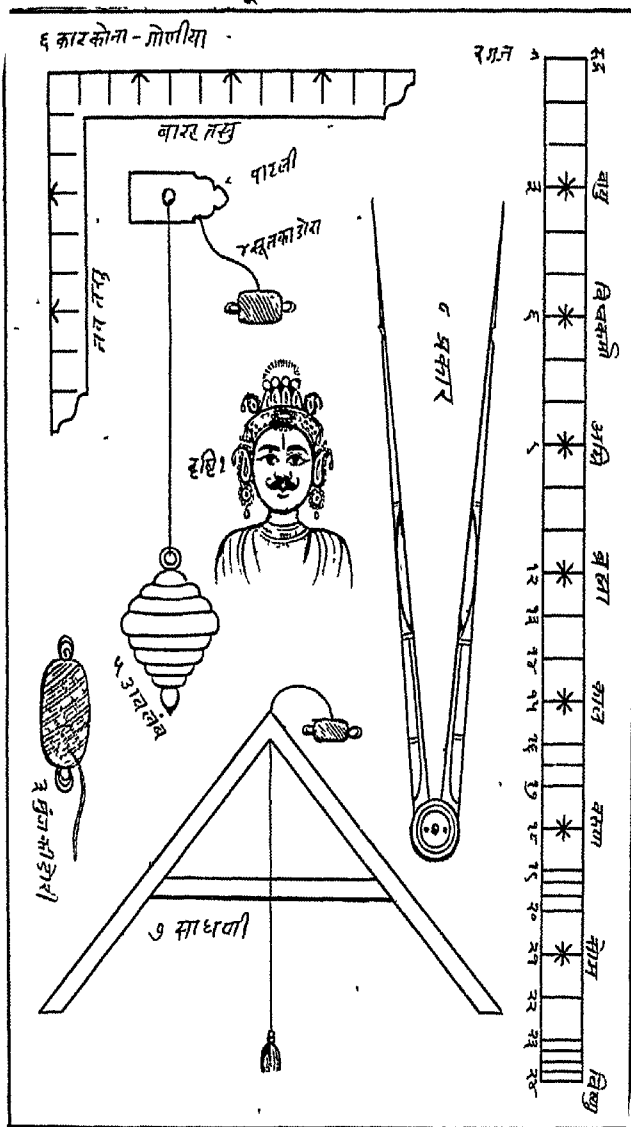
आठ प्रकार के दृष्टिसूत्र-

चारों तरफ खात (नीम) की भूमि को अर्थात् दीवार करने की भूमि को छोड़कर मध्य में जो लंबी और चौड़ी भूमि हो, उसको अपने घर के स्वामी के हाथ से नाप कर जो लंबाई चौड़ाई आवे, उन दोनों का परस्पर गुणा करने से भूमि का क्षेत्रफल हो जाता है। पीछे इस क्षेत्रफल को आठ से भाग देना, जो शेष बचे वह ध्वज आदि आय जानना। राजवल्लभ में कहा है कि—

"मध्ये पर्यंकासने मंदिरे च, देवागारे मण्डपे भित्तिबाह्ये ॥"

अर्थात् पलंग आसन और घर इनमें मध्य भूमि को नाप कर आय लाना। किन्तु देवमंदिर और मंडप में दीवार करने की भूमि सहित नाप कर आय लाना ॥ ५१ ॥

आठ आय के नाम—

धय-धूम-सीह-साणा विस-खर-गय-धंख अट्ठ आय इमे ।
पूव्वाइ-धयाइ-ठिई फलं च नामाणुसारेण ॥५२॥

ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वान, वृष, खर, गज और ध्वांक्ष ये आठ आय हैं। वे पूर्वादि दिशा में सृष्टि क्रम से अर्थात् पूर्व में ध्वज, अग्निकोण में धूम्र, दक्षिण में सिंह इत्यादि क्रम से रखें। वे उनके नाम के सदृश फलदायक हैं। अर्थात् विषम आय–ध्वज सिंह, वृष और गज ये श्रेष्ठ हैं और समआय–धूम्र, श्वान, खर और ध्वांक्ष ये अशुभ हैं ॥ ५२ ॥

आय चक्र—

संख्या	१	२	३	४	५	६	७	८
आया	ध्वज	धूम्र	सिंह	श्वान	वृष	खर	गज	ध्वांक्ष
दिशा	पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान

आय पर से द्वार की समभ: पीयूषधारा टीका में कहा है कि—

"सर्वद्वार इह ध्वजो वरुणदिग्द्वारं च हित्वा हरिः ।
प्राग्द्वारो वृषभो गजो यमसुरे-शाशामुखः स्याच्छुभः ॥"

ध्वज आय आवे तो पूर्वादि चारों दिशा में द्वार रख सकते हैं । सिंह आय आवे तो पश्चिम दिशा को छोड़ कर पूर्व दक्षिण और उत्तर इन तीन दिशा में द्वार रक्खे । वृषभ आय आवे तो पूर्व दिशा में द्वार रक्खें और गज आय आवे तो पूर्व और दक्षिण दिशा में द्वार रखें ।

एक आय के ठिकाने दूसरा कोई आय आ सकता है या नहीं ? इसका खुलासा आरंभसिद्धि में इस प्रकार किया है—

"ध्वजः पदे तु सिंहस्य तौ गजस्य वृषस्य ते ।
एवं निवेशमर्हन्ति स्वतोऽन्यत्र वृषस्तु न ॥"

समस्त आय के स्थानों में ध्वज आय दे सकते हैं । तथा सिंह आय के स्थान में ध्वज आय, गज आय के स्थान में ध्वज, और सिंह ये दोनों में से कोई आय और वृष आय के स्थान में ध्वज, सिंह और गज ये तीनों में से कोई आय आ सकता है । अर्थात् सिंह आय जिस स्थान में देने का है, उसी स्थान में सिंह आय के अभाव में ध्वज आय भी दे सकते हैं, इसी प्रकार एक के अभाव में दूसरे आय स्थापन कर सकते हैं । किन्तु वृष आय अपने स्थान से दूसरे आय के स्थान में नहीं देना चाहिये । अर्थात् वृष आय वृष आय के स्थान में ही देना चाहिये ।

कौन २ ठिकाने कौन २ आय देना यह बतलाते हैं—

विप्पे धयाउ दिज्जा खित्ते सीहाउ वइसि वसहाओ ।
सुद्दे अ कुंजराओ धंखाउ मुणीण नायव्वं ॥५३॥

ब्राह्मण के घर में ध्वज आय, क्षत्रिय के घर में सिंह आय, वैश्य के घर में वृषभ आय, शूद्र के घर में गज आय और मुनि (सन्यासी) के आश्रम में ध्वांक्ष आय लेना चाहिये ॥५३॥

धय-गय-सीहं दिज्जा संते ठाणे धयो अ सव्वत्थ ।
गय-पंचाणण-वसहा खेडय तह कव्वडाईसु ॥५४॥

ध्वज, गज और सिंह ये तीनों आय उत्तम स्थानों में, ध्वज आय-सब जगह, गज सिंह और वृष ये तीनों आय गांव किला आदि स्थानों में देना चाहिये ॥५४॥

वावी-कूव-तडागे सयणे अ गओ अ आसणे सीहो ।
वसहो भोअणपत्ते छत्तालंवे धओ सिट्ठो ॥५५॥

बावड़ी, कूआं, तालाव, और शयन (शय्या) इन स्थानों में गज आय श्रेष्ठ है। सिंहासनादि आसन में सिंह आय श्रेष्ठ है। भोजन के पात्र में वृष आय और छत्र तोरण आदि में ध्वज आय श्रेष्ठ है।

विस-कुंजर-सीहाया नयरे पासाय-सव्वगेहेसु ।
साणं मिच्छाईसुं धंखं कारु अगिहाईसु ॥५६॥

वृष गज और सिंह ये तीनों आय नगर, प्रासाद (देवमंदिर या राजमहल) और सब प्रकार के घर इन स्थानों में देना चाहिये। श्वान आय म्लेच्छ आदि के घरों में और ध्वांक्ष आय अगृहादि (तपस्वियों के स्थान उपाश्रय-मठ झोंपड़ी आदि) में देना चाहिये ॥५६॥

धूमं रसोइठाणे तहेव गेहेसु वण्हिजीवाणं ।
रासहु विसाणगिहे धय-गय-सीहाउ रायहरे ॥५७॥

भोजन पकाने के स्थान में तथा अग्नि से आजीविका करनेवाले के घरों में धूम्र आय देना चाहिये। वेश्या के घर में खर आय देना चाहिये। राजमहल में ध्वज गज और सिंह आय देना अच्छा है ॥५७॥

घर के नक्षत्र का ज्ञान—

दीहं वित्थरगुणियं जं जायइ मूलरासि तं नेयं ।
अट्ठगुणं उडुभत्तं गिहनक्खत्तं हवइ सेसं ॥५८॥

घर बनाने की भूमि की लंबाई और चौडाई का गुणाकार करे, जो गुणनफल आवे उसको घरका मूलराशि (क्षेत्रफल) जानना। पीछे इस क्षेत्रफल को आठ से गुणा करके सत्ताइस से भाग दे, जो शेष बचे वह घर का नक्षत्र होता है ॥५८॥

घर के राशि का ज्ञान—

गिहरिक्खं चउगुणियं नवभत्तं लद्धु भुत्तरासीओ।
गिहरासि सामिरासी सड ट्ठ दु दुवालसं असुहं ॥५९॥

घर के नक्षत्र को चार से गुणा कर नौ से भाग दो, जो लब्धि आवे वह घर की भुक्तराशि समझना चाहिये। यह घर की भुक्तराशि और घर के स्वामी की राशि परस्पर छट्ठी और आठवीं हो या दूसरी और बारहवीं हो तो अशुभ है ॥५९॥

वास्तुशास्त्र में राशि का ज्ञान इस प्रकार कहा है—

"अश्विन्यादित्रयं मेषे सिंहे प्रोक्तं मघात्रयम्।
मूलादित्रितयं चापे शेषभेषु द्वयं द्वयम् ॥"

अश्विनी आदि तीन नक्षत्र मेषराशि के, मघा आदि तीन नक्षत्र सिंह राशि के और मूल आदि तीन नक्षत्र धनराशि के हैं। अन्य नौ राशियों के दो दो नक्षत्र हैं। वास्तुशास्त्र में नक्षत्र के चरण भेद से राशि नहीं मानी है। विशेष नीचे के गृहराशि यंत्र में देखो।

गृह राशि यंत्र—

मेष १	वृष २	मिथुन ३	कर्क ४	सिंह ५	कन्या ६	तुला ७	वृश्चिक ८	धन ९	मकर १०	कुंभ ११	मीन १२
अश्विनी	रोहिणी	आर्द्रा	पुष्य	मघा	हस्त	स्वाति	अनुराधा	मूल	श्रवण	शतभिषा	उत्तराभाद्र०
भरणी	मृगशिर	पुनर्वसु	आश्लेषा	पूर्वाफा०	चित्रा	विशाखा	ज्येष्ठा	पूर्वाषाढा	धनिष्ठा	पूर्वाभा०	रेवती
कृत्तिका	०	०		उत्तराफा	०	०	०	उत्तराषाढा	०	•	•

व्यय का ज्ञान—

वसुभत्तरिक्खसेसं वयं तिहा जक्ख-रक्खस-पिसाया ।
आउअंकाउ कमसो हीणाहियसमं मुणेयव्वं ॥६०॥

घर के नक्षत्र की संख्या को आठ से भाग देना, जो शेष बचे वह व्यय जानना । यह व्यय यक्ष राक्षस और पिशाच ये तीन प्रकार के हैं । आय की संख्या से व्यय की संख्या कम हो तो यक्ष व्यय, अधिक हो तो राक्षस व्यय और बराबर हो तो पिशाच व्यय समझना ॥६०॥

व्यय का फल—

जक्खवओ विद्धिकरो धणनासं कुणइ रक्खसवओ अ ।
मज्झिमवओ पिसाओ तह य जमंसं च वज्जिज्जा ॥६१॥

यदि घर का यक्ष व्यय हो तो धन धान्यादि की वृद्धि करनेवाला है । राक्षस व्यय हो तो धन धान्यादि का नाश करनेवाला है और पिशाच व्यय हो तो मध्यम है । तथा नीचे बतलाये हुए त्रण अंशों में से यमअंश को छोड़ देना चाहिये ॥६१॥

अंश का ज्ञान—

मूलरासिस्स अंकं गिहनामक्खरवयंकसंजुत्तं ।
तिविहुत्तु सेस अंसा [1]इदंस-जमंस-रायंसा ॥६२॥

घर की मूलराशि (क्षेत्र फल) की संख्या, ध्रुवादि घर के नामाक्षर अंक और व्यय संख्या इन तीनों को मिला कर तीन से भाग देना, जो शेष रहे वह अंश जानना । यदि एक शेष रहे तो इन्द्रांश, दो शेष रहे तो यमांश और शून्य शेष रहे तो राजांश जानना चाहिये ॥६२॥

घर के तारे का ज्ञान—

गेहभसामिभपिंडं नवभत्तं सेस छ चउ नव सुहया ।
मज्झिम दुग इग अट्ठा ति पंच सत्तहमा तारा ॥६३॥

---

[1] 'इंदं जमा तह य रायत्थो' इति पाठान्तरे ।

घर के नक्षत्र से घर के स्वामी के नक्षत्र तक गिने, जो संख्या आवे उसको नौ से भाग दे, जो शेष रहे यह तारा समझना। इन ताराओं में छट्ठी, चौथी और नववीं तारा शुभ है। दूसरी, पहली और आठवीं तारा मध्यम है। तीसरी पांचवीं और सातवीं तारा अधम है ॥६३॥

आयादि जानने के लिए उदाहरण—

जैसे घर बनाने की भूमि ७ हाथ और ९ अंगुल लंबी तथा ५ हाथ और ७ अंगुल चौड़ी है। इन दोनों के अंगुल बनाने के लिये हाथ को २४ से गुणा कर अंगुल मिला दो तो ७×२४=१६८+९=१७७ अंगुल की लंबाई और ५×२४=१२०+७=१२७ अंगुल की चौड़ाई हुई। इन दोनों अंगुलात्मक लंबाई चौड़ाई को गुणा किया तो १७७×१२७=२२४७९ यह क्षेत्रफल हुआ। इसको आठ से भाग दिया तो २२४७९÷८ तो शेष सात रहेंगे। यह सातवां गज आय हुआ।

अब घर का नक्षत्र जानने के लिये क्षेत्रफल को आठ से गुणा किया तो २२४७९×८=१७९८३२ गुणनफल हुआ, इसको २७ से भाग दिया १७९८३२÷२७ तो शेष बारह बचे, यह अश्विनी आदि से गिनने से बारहवां उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र हुआ।

अब घर की अक्त राशि जानने के लिये—नक्षत्र उत्तराफाल्गुनी बारहवां है तो १२ को ४ से गुणा किया तो ४८ हुए, इनको ९ से भाग दिया तो लब्धि ५ आई, यह पांचवीं सिंह राशि हुई। यह नियम सर्वत्र लागु नहीं होता, इसलिये गृहराशि यंत्र में कहे अनुसार राशि समझना चाहिये।

व्यय जानने के लिये—घर का नक्षत्र उत्तराफाल्गुनी बारहवां है, इसलिये १२ को आठ से भाग दिया १२÷८ तो शेष ४ बचे। यह आय ७ वें से कम है, इसलिये यक्ष व्यय हुआ अच्छा है।

अंश जानने के लिये—घरका क्षेत्रफल २२४७९ में जिस जाति का घर हो उसके वर्ण के अक्षर जोड़ दो, मान लो कि विजय जाति का घर है तो इसके वर्णाक्षर के अंक ३ हुए, यह और व्यय के अंक ४ मिला दिये तो २२४८६ हुए, इनको तीन से भाग दिया तो शेष १ बचता है, इसलिये घर का अंश इन्द्रांश हुआ।

तारा जानने के लिये घर का नक्षत्र उत्तराफाल्गुनी है और मालिक का नक्षत्र रेवती है। इसलिये उत्तराफाल्गुनी से रेवती तक गीनने से १६ संख्या होती है, इसको ६ से भाग दिया तो शेष ७ बचे, इसलिये सातवीं तारा हुई।

आयादिक का अपवाद विश्वकर्मप्रकाश में कहा है कि—

"एकादशयवादूर्ध्वं यावद् द्वात्रिंशहस्तकम्।
तावदायादिकं चिन्त्यं तदूर्ध्वं नैव चिन्तयेत्॥
आयव्ययौ मासशुद्धिं न जीर्णे चिन्तयेद् गृहे।"

जिस घर की लंबाई ग्यारह यव से अधिक बत्तीस हाथ तक हो तो उसमें आय व्यय आदि का विचार करना चाहिये। परन्तु बत्तीस हाथ से अधिक लंबाई वाला घर हो तो उसमें आय आदि का विचार नहीं करना चाहिये। तथा जीर्ण घर के उद्धार के समय भी आय व्यय और मास शुद्धि आदि का विचार नहीं करना चाहिये।

मुहूर्तमार्त्तण्ड में भी कहा है कि—

"द्वात्रिंशाधिकहस्तमब्धिवदनं तार्णं त्वलिन्दादिकं।
नैष्वायादिकमीरितं तृणगृहं सर्वेषु मास्वदितम्॥"

जो घर बत्तीस हाथ से अधिक बड़ा हो, चार द्वारवाला हो, घास का घर हो तथा अलिंद निर्व्यूह (मादल) इत्यादि ठिकाने आय आदि का विचार न करें। तृण का घर तो सब महीनों में बना सकते हैं।

घर के साथ मालिक का शुभाशुभ लेन देन का विचार—

जह कण्णावरपीई गणिज्जए तह य सामियगिहाण।
जोणि-गण-रासिपमुहा [1]नाडीवेहो य गणियव्वो॥६४॥

जैसे ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कन्या और वर के आपस में प्रेम भाव का मिलान किया जाता है। उसी प्रकार घर और घर के स्वामी के लेन देन आदि का विचार, [2]योनि गण राशि और नाडी वेध द्वारा अवश्य करना चाहिये॥६४॥

---

[1] 'तज्जाणह जोइसाओ अ' इति पाठान्तरे।

[2] योनि गण राशि नाडीवेध इत्यादि का खुलासा प्रतिष्ठा संबंधी मुहूर्त के परिशिष्ट में देखो।

परिभाषा—

> ओवरय [1]नाम साला जेणेग दुसालु भणए गेहं ।
> गइनामं च अलिंदो इग दु तिऽलिंदोइ पटसालो ॥६५॥
> पटसालबार[2]दुहु दिसि जालियभित्तीहिं मंडवो हवइ ।
> पिट्ठी दाहिणवामे अलिंदनामेहिं गुजारी ॥६६॥
> जालियनामं मूसा थंभयनामं च हवइ खडदारं ।
> भारपट्टो य तिरिओ पीढ कडी धरण एगट्ठा ॥६७॥
> ओवरय पट्टसाला पज्जंतं मूलगेह नायव्वं ।
> एअस्स चेव गणियं रंधणगेहाइ गिहभूसा ॥६८॥

ओरडे (कमरे) का नाम शाला है । जिसमें एक दो शालायें हों उसको घर कहते हैं । गइ नाम अलिंद (गृहद्वार के आगे का दालान) का है । जहां एक दो या तीन अलिंद हों उसको पटशाला कहते हैं ॥६५॥

पटशाला के द्वार के दोनों तरफ खिड़की (झरोखा) युक्त दीवार और मंडप होता है । पिछले भाग में तथा दाहिनी और बायीं तरफ जो अलिन्द हो उसको गुजारी कहते हैं ॥६६॥

जालिय नाम मूषा (छोटा दरवाजा) का है । खंभे का नाम खड्दारु है । स्तंभ के उपर तीच्छों जो मोटा काष्ट रहता है उसको भारवट कहते हैं । पीठ कडी और धरण ये तीनों एक अर्थवाची नाम हैं ॥६७॥

ओरडे से पटशाला तक मुख्य घर जानना चाहिये और बाकी जो रसोई घर आदि हैं वे सब मुख्य घर के आभूषण हैं ॥६८॥

घरों के भेदों का प्रकार—

> ओवरय-अलिंद-गइ गुजारि-भित्तीण-पट्ट-थंभाण ।
> जालियमंडवाणय भेएण गिहा उवज्जंति ॥६१॥

---

१ '[illegible]' । २ 'दिहु' । इति पाठान्तरे ।

शाला, अलिन्द (गति), गुजारी, दीवार, पट्टे, स्तंभ, झरोखे और मंडप आदि के भेदों से अनेक प्रकार के घर बनते हैं ॥६९॥

चउदस गुरुपत्थारे लहुगुरुभेएहिं सालमाईणि ।
जायंति सव्वगेहा सोलसहस्स-तिसय-चुलसीआ ॥७०॥

जिस प्रकार लघु गुरु के भेदों से चौदह गुरु अक्षरों का प्रस्तार बनता है, उसी प्रकार शाला अलिंद आदि के भेदों से सोलह हजार तीन सौ चोरासी (१६३८४) प्रकार के घर बनते हैं ॥ ७० ॥

तत्तो य जिंकिवि संपइ वट्टंति धुवाइ-संतणाईणि ।
ताणं चिय नामाइं लक्खणचिण्हाइं वुच्छामि ॥७१॥

इसलिये आधुनिक समय में जो कुछ भी ध्रुवादि और शांतनादि घर हैं, उनके नाम आदि को इकट्ठे करके उनके लक्षण और चिह्नों को मैं (ठक्कुर 'फेरू') कहता हूं ॥ ७१ ॥

ध्रुवादि घरों के नाम—

धुव-धन्न-जया नंद-खर-कंत-मणोरमा सुमुह-दुमुहा ।
कूर-सुपक्ख-धणद-खय-आक्कंद-विउल-विजया गिहा ॥७२॥

ध्रुव, धान्य, जय, नंद, खर, कान्त, मनोरम, सुमुख, दुर्मुख, क्रूर, सुपक्ष*, धनद, क्षय, आक्रंद, विपुल और विजय ये सोलह घरों के नाम हैं ॥ ७२ ॥

प्रस्तार विधि—

चत्तारि गुरू ठविउं लहुओ गुरुहिट्ठि सेस उवरिसमा ।
ऊणेहिं गुरू एवं पुणो पुणो जाव सव्व लहू ॥७३॥

चार गुरु अक्षरों का प्रस्तार बनावे । प्रथम पंक्ति में चारों अक्षर गुरु लिखे ।

* कोई ग्रन्थ में 'विपक्ष' नाम दिया है ।

पीछे नीचे की दूसरी पंक्ति में प्रथम गुरु के स्थान के नीचे एक लघु अक्षर लिखकर बाकी ऊपर के बराबर लिखना चाहिये, पीछे नीचे की तीसरी पंक्ति में ऊपर के लघु अक्षर के नीचे गुरु और गुरु अक्षर के नीचे एक लघु अक्षर लिखकर बाकी ऊपर के समान लिखना चाहिये। इसी प्रकार सब लघु अक्षर हो जाय वहां तक क्रिया करें। लघु गुरु जानने के लिये लघु अक्षर का (।) ऐसा और गुरु अक्षर का (ऽ) ऐसा चिह्न करें। विशेष देखो नीचे की प्रस्तार स्थापना—

१	ऽ ऽ ऽ ऽ	९	ऽ ऽ ऽ ।
२	। ऽ ऽ ऽ	१०	। ऽ ऽ ।
३	ऽ । ऽ ऽ	११	ऽ । ऽ ।
४	। । ऽ ऽ	१२	। । ऽ ।
५	ऽ ऽ । ऽ	१३	ऽ ऽ । ।
६	। ऽ । ऽ	१४	। ऽ । ।
७	ऽ । । ऽ	१५	ऽ । । ।
८	। । । ऽ	१६	। । । ।

ध्रुवादि सोलह घरों का प्रस्तार—

तं धुव धन्नाईणं पुव्वाइ-लहुहिं सालनायव्वा ।
गुरुठाणि मुणह भित्ती नाम समं हवइ फलमेसिं ॥७४॥

जैसे चार गुरु अक्षरवाले छंद के सोलह भेद होते हैं, उसी प्रकार घर के प्रदक्षिण क्रम से लघुरूप शाला द्वारा ध्रुव धान्य आदि सोलह प्रकार के घर बनते हैं। लघु के स्थान में शाला और गुरु के स्थान में दीवार जानना चाहिये। जैसे प्रथम चारों ही गुरु अक्षर हैं तो इसी तरह घर के चारों ही दिशा में दीवार है अर्थात् घर की कोई दिशा में शाला नहीं है। प्रस्तार के दूसरे भेद में प्रथम लघु है, तो यहां दूसरा धान्य नाम के घर की पूर्व दिशा में शाला समझना चाहिये। तीसरे भेद में दूसरा लघु है, तो तीसरे जय नाम के घर के दक्षिण में शाला और चौथे भेद में प्रथम दो लघु है तो चौथा नंद नामक घर के पूर्व और दक्षिण में एक २ शाला है,

इसी प्रकार सब समझना चाहिये। इन ध्रुवादि गृहों का फल नाम सदृश जानना चाहिये। विशेष सोलह घरों का प्रस्तार देखो।

ध्रुवादिक घरों का फल समरांगण में कहा है कि—

"ध्रुवे जयमाप्नोति धन्ये धान्यागमो भवेत्।
जये सपत्नाञ्जयति नन्दे सर्वाः समृद्धयः ॥

खरमायासदं वेश्म कान्ते च लभते श्रियम् ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं तथा वित्तस्य सम्पदः ॥
मनोरमे मनस्तुष्टि-र्गृहभर्तुः प्रकीर्त्तिता ।
सुमुखे राजसन्मानं दुर्मुखे कलहः सदा ॥
क्रूरव्याधिभयं क्रूरे सुपक्षे गोत्रवृद्धिकृत् ।
धनदे हेमरत्नादि गाश्चैव लभते पुमान् ॥
क्षयं सर्वक्षयं गेह-माक्रन्दं ज्ञातिमृत्युदम् ।
आरोग्यं विपुले ख्याति-र्विजये सर्वसम्पदः ॥"

ध्रुव नाम का प्रथम घर जयकारक है । धन्य नाम का घर धान्यवृद्धि कारक है जय नाम का घर शत्रु को जीतनेवाला है । नंद नाम का घर सब प्रकार की समृद्धि दायक है । खर नाम का घर क्लेश कारक है । कान्त नाम के घर में लक्ष्मी की प्राप्ति तथा आयुष, आरोग्य, ऐश्वर्य और सम्पदा की वृद्धि होती है । मनोरम नाम का घर घर के स्वामी के मन को संतुष्ट करता है । सुमुख नाम का घर राजसन्मान देने वाला है । दुर्मुख नाम का घर सदा क्लेशदायक है क्रूर नाम का घर भयंकर व्याधि और भय को करनेवाला है । सुपक्ष नाम का घर कुटुम्ब की वृद्धि करता है । धनद नाम के घर में सोना रत्न गौ इनकी प्राप्ति होती है । क्षय नाम का घर सब क्षय करनेवाला है । आक्रंद नाम का घर ज्ञातिजन की मृत्यु करनेवाला है । विपुल नाम का घर आरोग्य और कीर्त्तिदायक है । विजय नाम का घर सब प्रकार की सम्पदा देनेवाला है ।

शान्तनादि चौसठ द्विशाल घरों के नाम—

संतण संतिद वड्ढमाण कुक्कुडा सत्थियं च हंसं च ।
वद्धण कब्बुर संता हरिसण विउला करालं च ॥७५॥
वित्तं चित्तं धन्नं कालदंडं तहेव बंधुदं ।
पुत्तद सव्वंगा तह वीमइमं कालचक्कं (च) ॥७६॥

A 'संतय' इति पाठान्तरं ।

तिपुरं सुंदर नीला कुडिलं सासय य सत्थदा सीलं ।
कुट्टर सोम सुभद्दा तह भद्दमाणं च कूरक्कं ॥७७॥
सीहिर य सव्वकामय पुट्ठिद तह कित्तिनासणा नामा ।
सिणगार सिरीवासा सिरीसोभ तह कित्तिसोहणाया ॥७८॥
जुगसीहर बहुलाहा लच्छिनिवासं च कुविय उज्जोया ।
बहुतेयं च सुतेयं कलहावह तह विलासा य ॥७९॥
बहूनिवासं पुट्ठिद कोहसन्निहं महंत महिता य ।
दुक्खं च कुलच्छेयं पयाववद्धण य दिव्वा य ॥८०॥
बहुदुक्ख कंठच्छेयण [A] जंगम तह सीहनाय हत्थीजं ।
कंटक इइ नामाइं लक्खण-भेयं [B] अओ वुच्छं ॥८१॥

शान्त्वन (शांतन) १, शान्तिद २, वर्द्धमान ३, कुक्कुट ४, स्वस्तिक ५, हंस ६, वर्द्धन ७, कर्बूर ८, शान्त ९, हर्षण १०, विपुल ११, कराल १२, वित्त १३, चित्त (चित्र) १४, धन १५, कालदंड १६, बंधुद १७, पुत्रद १८, सर्वांग १९, कालचक्र २०, त्रिपुर २१, सुन्दर २२, नील २३, कुटिल २४, शाश्वत २५, शास्त्रद २६, शील २७, कोटर २८, सौम्य २९, सुभद्र ३०, भद्रमान ३१, क्रूर ३२, श्रीधर ३३, सर्वकामद ३४, पुष्टिद ३५, कीर्त्तिनाशक ३६, शृंगार ३७, श्रीवास ३८, श्रीशोभ ३९, कीर्तिशोभन ४०, युग्मशिखर (युग्मश्रीधर) ४१, बहुलाभ ४२, लक्ष्मीनिवास ४३, कुपित ४४, उद्योत ४५, बहुतेज ४६, सुतेज ४७, कलहावह ४८, विलाश ४९, बहुनिवास ५०, पुष्टिद ५१, क्रोधसन्निभ ५२, महंत ५३, महित ५४, दुःख ५५, कुलच्छेद ५६, प्रतापवर्द्धन ५७, दिव्य ५८ बहुदुःख ५९, कंठछेदन ६०,

A 'जंगज'। B 'बुद'।

जंगम ६१, सिंहनाद ६२, हस्तिज ६३ और कंटक ६४ इत्यादि ६४ घरों के नाम कहे हैं। अब इनके लक्षण और भेदों को कहता हूं ॥ ७५ से ८१ ॥

द्विशाल घर के लक्षण राजवल्लभ में इस प्रकार कहा है—

"अथ द्विशालालयलक्षणानि, पदैस्त्रिभिः कोष्टकरंध्रसंख्या ।
तन्मध्यकोष्टं परिहृत्य युग्मं, शालाश्चतस्रो हि भवन्ति दिक्षु ॥"

दो शाला वाले घर इस प्रकार बनाये जाते हैं कि–द्विशाल घर वाली भूमि की लम्बाई और चौड़ाई के तीन २ भाग करने से नौ भाग होते हैं। इनमें से मध्य भाग को छोड़ कर बाकी के आठ भागों में से दो २ भागों में शाला बनानी चाहिये। और बाकी की भूमि खाली रखना चाहिये। इसी प्रकार चार दिशाओं में चार प्रकार की शाला होती है।

"याम्याग्निगा च करिणी धनदाभिवक्त्रा, पूर्वानना च महिषी पितृवारुणस्था ।
गावी यमाभिवदनापि च रोगसोमे, छागी महेन्द्रशिवयोर्वरुणाभिवक्त्रा ॥"

दक्षिण और अग्निकोण के दो भागों में दो शाला हों और इनके मुख उत्तर दिशा में हों तो उन शालाओं का नाम करिणी (हस्तिनी) शाला है। नैऋत्य और पश्चिम दिशा के दो भागों में पूर्व मुखवाली दो शाला हों उन का नाम 'महिषी' शाला है। वायव्य और उत्तर दिशा के दो भागों में दक्षिण मुखवाली दो शाला हों उनका नाम 'गावी' शाला है। पूर्व और ईशानकोण के दो भागों में पश्चिम मुखवाली दो शाला हों उनका नाम 'छागी' शाला है।

करिणी (हस्तिनी) और महिषी ये दो शाला इकट्ठी हों ऐसे घर का नाम 'सिद्धार्थ' है, यह नाम सदृश शुभफलदायक है। गावी और महिषी ये दो शाला इकट्ठी हों ऐसे घर का नाम 'यमसूर्य' है, यह मृत्यु कारक है। छागी और गावी ये दो शाला इकट्ठी हों ऐसे घर का नाम 'दंड' है, यह धन की हानि करनेवाला है। हस्तिनी और छागी ये दो शाला इकट्ठी हों ऐसे घर का नाम 'काच' है, यह हानि कारक है। गावी और हस्तिनी ये दो शाला इकट्ठी हों ऐसे घर का नाम 'चुल्हि' है, यह घर अच्छा नहीं है। इस प्रकार

अनेक तरह के घर बनते हैं, विशेष जानने के लिये समरांगण और राजवल्लभ आदि ग्रंथ देखना चाहिये।

शान्तनादि घरों के लक्षण—

केवल ओवरयदुगं संतणनामं मुणेह तं गेहं।
तस्सेव मज्झि पट्टं मुहेगऽलिंदं च सत्थियगं ॥८२॥

फक्त दो शालावाले घर को 'शान्तन' नाम का घर कहते हैं। अर्थात् जिस घर में उत्तर दिशा के मुखवाली दो शाला (हस्तिनी) हो वह 'शान्तन' नाम का घर जानना चाहिये। पूर्व दिशा के मुखवाली दो शाला (महिषी) हो वह 'शान्तिद' नाम का घर है। दक्षिण मुखवाली दो शाला (गावी) हो वह 'वर्द्धमान' घर है। पश्चिम मुखवाली दो शाला (छागी) हो यह 'कुक्कुट' घर है।

इसी प्रकार शान्तनादि चार द्विशाल वाले घरों के मध्य में पीढ़ा (पट्टदारु दो पीढ़े और चार स्तंभ) हो और द्वार के आगे एक २ अलिन्द हो तो स्वस्तिकादि चार प्रकार के घर बनते हैं। जैसे—शान्तन नामके द्विशाल घर के मध्य में पटदारु और मुख के आगे एक अलिन्द हो तो यह 'स्वस्तिक' नाम का घर कहा जाता है। शान्तिद नाम के द्विशाल घर के मध्य में पटदारु और मुख के आगे एक अलिन्द हो तो यह 'हंस' नाम का घर कहा जाता है। वर्द्धमान नाम के द्विशाल घर के मध्य में पटदारु और मुख के आगे एक अलिन्द हो तो यह 'वर्द्धन' नाम का घर कहा जाता है। कुक्कुट नाम के द्विशाल घर के मध्य में पटदारु और मुख के आगे एक अलिन्द हो तो यह 'कर्बूर' नाम का घर कहा जाता है ॥८२॥

सत्थियगेहस्सग्गे अलिंदु बीओ अ तं भवे संतं।
संते गुजारिदाहिण थंभसहिय तं हवइ वित्तं ॥८३॥

स्वस्तिक घर के आगे दूसरा एक अलिन्द हो तो यह 'शान्त' नाम का घर कहा जाता है। हंस घर के आगे दूसरा अलिन्द हो तो यह 'हर्षण' घर कहा जाता है। वर्द्धन घर के आगे दूसरा अलिन्द हो तो यह 'विपुल घर कहा जाता है। कर्बूर घर के आगे दूसरा अलिन्द हो तो यह 'कराल' घर कहा जाता है।

शान्त घर के दक्षिण तरफ स्तंभवाला एक अलिन्द हो तो यह 'वित्त'

घर कहा जाता है । हर्षण घर के दक्षिण तरफ स्तंभवाला अलिन्द हो तो यह 'चित्त' (चित्र) घर कहा जाता है । विपुल घर के दक्षिण ओर स्तंभवाला एक अलिन्द हो तो यह 'धन' घर कहा जाता है । कराल घर के दक्षिण ओर स्तंभवाला अलिन्द हो तो यह 'कालदंड' घर कहा जाता है ।
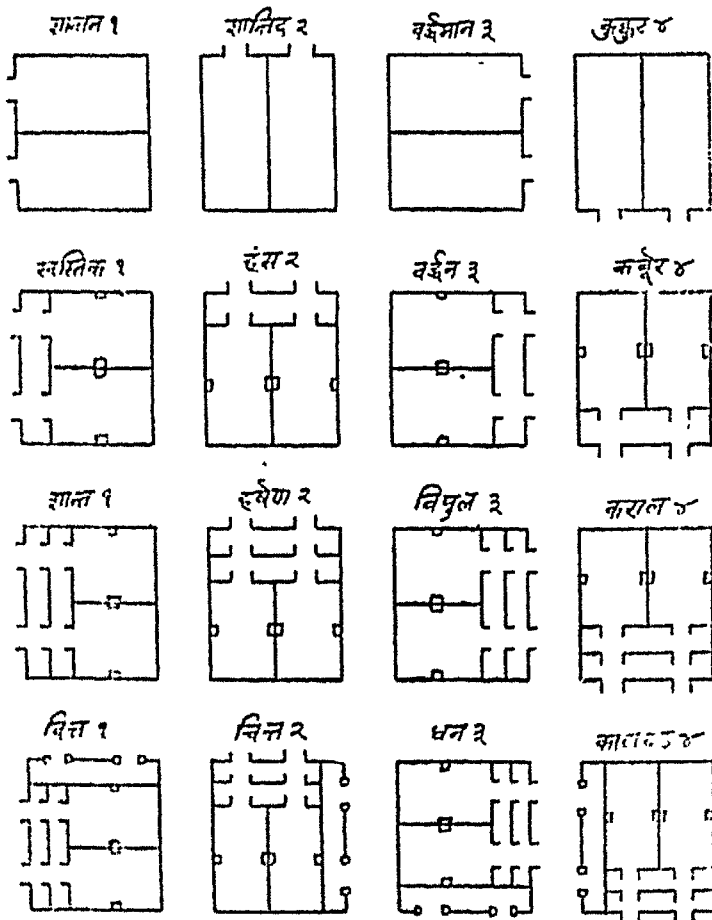
वित्तगिहं वामदिसे जइ हवइ गुजारि ताव बंधुदं ।
गुजारि पिट्ठि दाहिण पुरओ दु अलिंद तं तिपुरं ॥८४॥

चित्त घर के बांयी ओर यदि एक अलिन्द हो तो यह 'बंधुद' घर कहा जाता है। चित्त घर के बांयी ओर एक अलिन्द हो तो यह 'पुत्रद' घर कहा जाता है। धन घर के बांयी ओर एक अलिन्द हो तो यह 'सर्वांग' घर कहा जाता है। कालदंड घर के बांयी ओर एक अलिंद हो तो यह 'कालचक्र' घर कहा जाता है।

शान्तन घर के पिछले भाग में और दाहिनी तरफ एक २ अलिंद तथा आगे दो अलिन्द हो तो यह 'त्रिपुर' घर कहा जाता है। शान्तिद घर के पिछले भाग में और दाहिनी तरफ एक २ अलिन्द तथा आगे दो अलिन्द हो तो यह 'सुंदर' घर कहा जाता है। वर्द्धमान घर के पीछे और दाहिनी तरफ एक २ अलिन्द तथा आगे दो अलिन्द हो तो यह 'नील' घर कहा जाता है। कुक्कुट घर के पीछे और दाहिनी तरफ एक २ अलिन्द तथा आगे दो अलिन्द हो तो यह 'कुटिल' घर कहा जाता है ॥८४॥

पिट्ठी दाहिणवामे इगेग गुंजारि पुरउ दु अलिंदा।
तं सासयं आवासं सव्वाण जणाण संतिकरं ॥८५॥

शान्तन घर के पीछे दाहिनी और बांयी तरफ एक २ अलिन्द हो तथा आगे की तरफ दो अलिन्द हो तो यह 'शाश्वत' घर कहा जाता है, यह घर समस्त मनुष्यों को शान्तिकारक है। शान्तिद घर के पीछे दाहिनी और बांयी तरफ एक २ अलिन्द हो तथा आगे दो अलिन्द हो तो यह 'शास्त्रद' घर कहा जाता है। वर्द्धमान घर के पीछे दाहिनी और बांयी तरफ एक २ अलिन्द हो तथा आगे दो अलिन्द हो तो यह 'शील' नामक घर कहा जाता है। कुक्कुट घर के पीछे दाहिनी और बांयी तरफ एक २ अलिन्द हो तथा आगे की तरफ दो अलिन्द हो तो यह 'कोटर' घर कहा जाता है ॥८५॥

दाहिणवाम इगेगं अलिंद जुअलस्स मंडवं पुरओ।
*ओवरयमज्झि थंभो तस्स य नामं हवइ सोमं ॥८६॥

शान्तन घर के दाहिनी और बांयी तरफ एक २ अलिन्द तथा आगे दो अलिन्द मंडप सहित हो, एवं शाला के मध्य में स्तंभ हो तो यह 'सौम्य' घर

* 'ववरयमज्झे थंभय' इति पाठान्तरे।

कहा जाता है। शान्तिद घर के दाहिनी और बांयी तरफ एक २ अलिन्द और आगे दो अलिन्द मंडप सहित हो तथा शाला के मध्यमें स्तंभ हो तो यह 'सुभद्र' घर कहा जाता है। वर्द्धमान घर के दाहिनी और बांयी तरफ एक २ अलिन्द हो तथा आगे दो अलिन्द मंडप सहित हो और शाला के मध्य में स्तंभ हो तो यह 'भद्रमान' घर कहा जाता है। कुक्कुट घर के दाहिनी और बांयी तरफ एक २ अलिन्द हो तथा आगे दो अलिन्द मंडप सहित हो साथ ही शाला के मध्य में स्तंभ हो तो यह 'क्रूर' घर कहा जाता है ॥८६॥
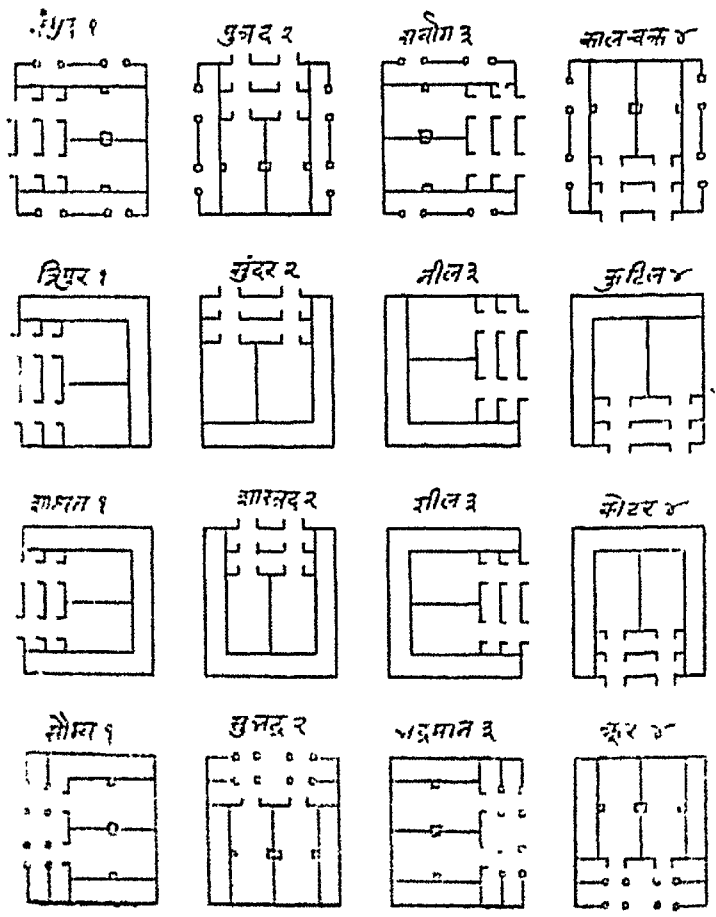
पुरओ अलिंदतियगं तिदिसिं इक्किक हवइ गुंजारी।
थंभयपट्टसमेयं सीधरनामं च तं गेहं ॥ ८७ ॥

संतत घर के मुख आगे तीन अलिन्द और बाकी की तीनों दिशाओं में एक २ गुंजारी (अलिन्द) हो, तथा शाला में पद्दारु (स्तंभ और पीढे) भी हो तो यह 'श्रीधर' घर कहा जाता है। शांतिद घर के मुख आगे तीन अलिन्द और तीनों दिशाओं में एक २ गुंजारी, स्तंभ और पीढे सहित हो ऐसे घर का नाम 'सर्वकामद' कहा जाता है। वर्द्धमान घर के मुख आगे तीन अलिन्द और तीनों दिशाओं में एक २ अलिन्द, स्तंभ और पीढे सहित हो तो यह 'पुष्टिद' घर कहा जाता है। कुक्कुट घर के मुख आगे तीन अलिन्द और तीनों दिशाओं में एक २ अलिन्द पद्दारु समेत हो तो यह 'कीर्तिविनाश' घर कहा जाता है ॥८७॥

गुंजारिजुअल तिहुं दिसि दुलिंद मुहे य थंभपरिकलियं।
मंडवजालियसहिया सिरिसिंगारं तयं बिंति ॥ ८८ ॥

जिस द्विशाल घर की तीनों दिशाओं में दो २ गुंजारी और मुख के आगे दो अलिन्द, मध्य में पद्दारु और अलिन्द के आगे खिड़की युक्त मंडप हो ऐसे घर का मुख यदि उत्तर दिशा में हो तो यह 'श्रीशृंगार', पूर्व दिशा में मुख हो तो यह 'श्रीनिवास', दक्षिण दिशा में मुख हो तो यह 'श्रीशोभ' और पश्चिम दिशा में मुख हो तो यह 'कीर्तिशोभन' घर कहा जाता है ॥८८॥

तिन्नि अलिंदा पुरओ तस्सग्गे भद्दु सेसपुव्वुव्व।
तं नाम जुग्गसीधर बहुमंगलरिद्धि-आवासं ॥ ८९ ॥

जिस द्विशाल घर के मुख आगे तीन अलिन्द हों और इनके आगे भद्र हो बाकी सब पूर्ववत् अर्थात् तीनों दिशा में दो २ गुंजारी, बीच में पद्दारु (स्तंभ-पीढे) और अलिन्द के आगे खिड़की युक्त मंडप हो ऐसे घर का मुख यदि उत्तर दिशा में हो तो यह 'युग्मश्रीधर' घर कहा जाता है, यह घर बहुत मंगलदायक और ऋद्धियों का स्थान है। इसी घर का मुख यदि पूर्व दिशा में हो तो 'बहुलाभ,' दक्षिण दिशा में हो तो 'लक्ष्मीनिवास' और पश्चिम में मुख हो तो 'कुपित' घर कहा जाता है ॥८९॥

दु अलिंद-मंडवं तह जालिय पिट्ठेग दाहिणे दु गई।
भित्तितरिथंभजुआ उज्जोयं नाम धणनिलयं ॥ ९० ॥

जिस द्विशाल घर के मुख आगे दो अलिन्द और खिड़की युक्त मंडप हो तथा पीछे एक अलिन्द और दाहिनी तरफ दो अलिन्द हों, एवं स्तंभयुक्त दीवार भी हो ऐसे घर का मुख यदि उत्तर दिशा में हो तो यह 'उद्योत' घर कहा जाता है। यह घर धन का स्थान रूप है। इसी घर का मुख यदि पूर्व दिशा में हो तो 'बहुतेज', दक्षिण दिशा में हो तो 'सुतेज' और पश्चिम में मुख हो तो 'कलहावह' घर कहा जाता है ॥९०॥
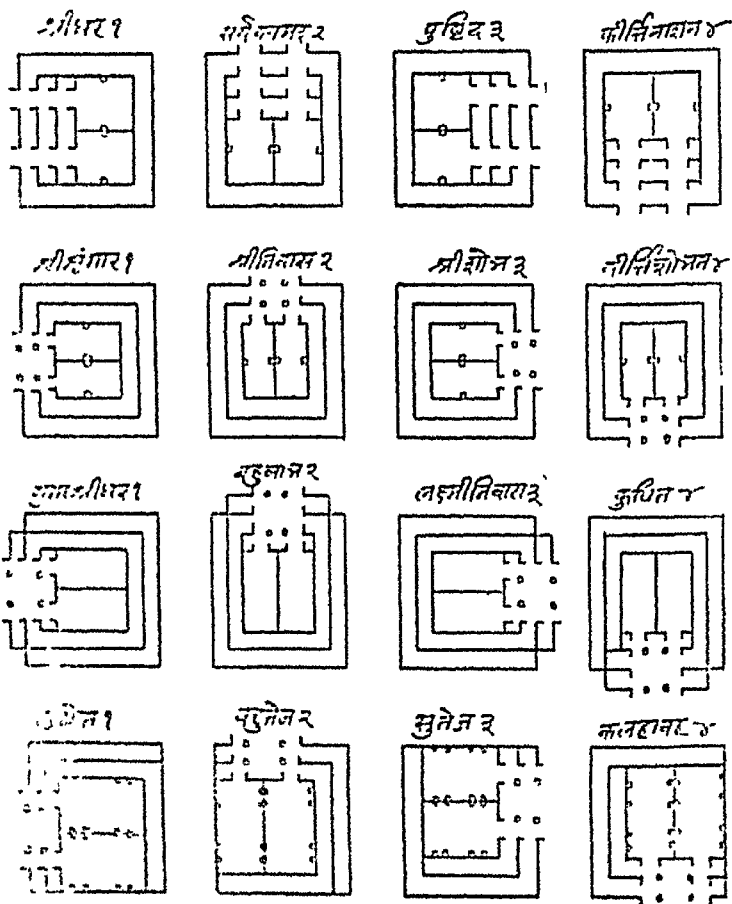
उज्जोअगेहपच्छइ दाहिणए दु गइ भित्तिअंतरए।
जइ हुंति दो भमंती विलासनामं हवइ गेहं ॥ ९१ ॥

उद्योत घर के पीछे और दाहिनी तरफ दो २ अलिन्द दीवार के भीतर हो जैसे घर के चारों ओर घूम सके ऐसे दो प्रदक्षिणा मार्ग हो ऐसे घर का मुख यदि उत्तर में हो तो वह 'विलाश' नाम का घर कहा जाता है। इसी घर का मुख यदि पूर्व दिशा में हो तो 'बहुनिवास,' दक्षिण दिशा में हो तो 'पुष्टिद' और पश्चिम में मुख हो तो 'क्रोधसन्निभ' घर कहा जाता है ॥९१॥

ति अलिंद मुहस्सग्गे मंडवयं सेसं विलासुव्व।
तं गेहं च महंतं कुणइ महड्ढि वसंताणं ॥ ९२ ॥

विलास घर के मुख आगे तीन अलिन्द और मंडप हो तो यह 'महान्त' घर कहा जाता है। इसमें रहनेवाले को यह घर महा ऋद्धि करनेवाला है। इसी घर का मुख यदि पूर्व दिशा में हो तो 'माहित', दक्षिण दिशा में हो तो 'दुःख' और पश्चिम दिशा में हो तो 'कुलच्छेद' घर कहा जाता है ॥९२॥

मुहि ति अलिंद समंडव जालिय तिदिसेहि दु दु य गुजारी।
मज्झि वलयगयभित्ती जालिय य पयाववद्धणयं ॥ ९३ ॥

जिस विशाल घर के मुख आगे तीन अलिन्द, मंडप और खिड़की हों तथा तीनों दिशाओं में दो २ गुंजारी (अलिन्द) हों तथा मध्य वलय के दीवार में खिड़की हो, ऐसे घर का मुख यदि उत्तर दिशा में हो तो 'प्रतापवर्द्धन', पूर्व दिशा में हो तो 'दिव्य', दक्षिण दिशा में हो तो 'बहुदुःख' और पश्चिम दिशा में मुख हो तो 'कंठछेदन' घर कहा जाता है ॥९३॥

पयाववद्धणो जइ थंभय ता हवइ जंगमं[1] सुजसं।
इअ सोलसगेहाइं सव्वाइं उत्तरमुहाइं ॥ ९४ ॥

---

१ 'जंगजं'। इति पाठान्तरे।

प्रतापवर्द्धन घर में यदि पट्टदारु (स्तंभ-पीढा) हो तो यह 'जंगम' नाम का घर कहा जाता है, यह अच्छा यश फैलानेवाला है। इसी घर का मुख यदि पूर्व दिशा में हो तो 'सिंहनाद', दक्षिण दिशा में हो तो 'हस्तिज' और पश्चिम दिशा में हो तो 'कंटक' घर कहा जाता है। इसी तरह शांतनादि ये सोलह घर सब उत्तर मुखवाले हैं ॥६४॥
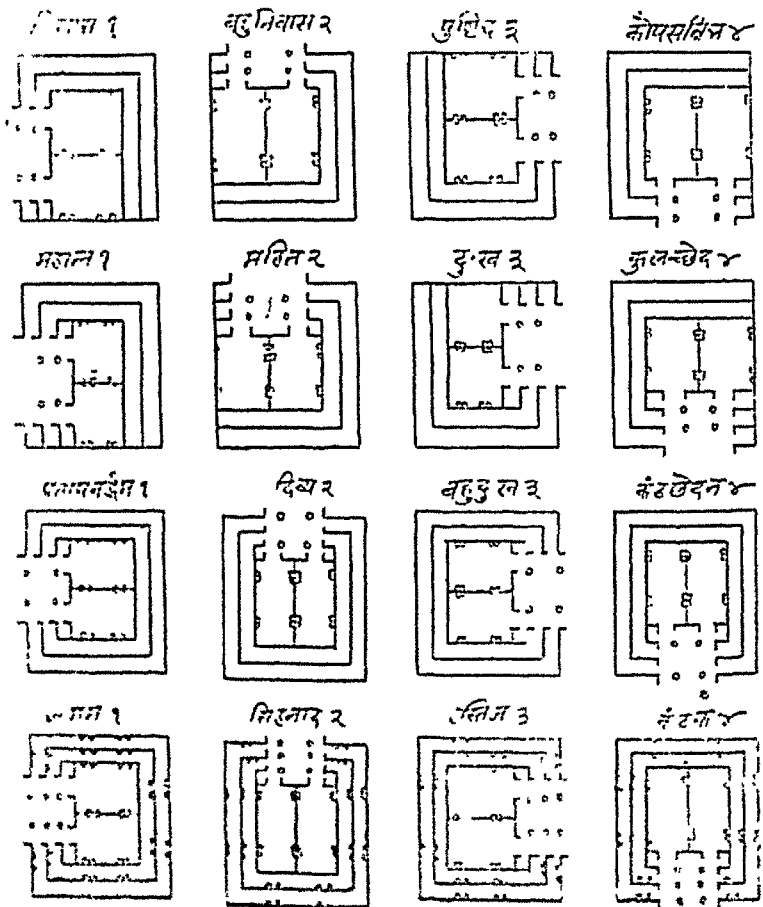
एयाइं चिय पुव्वा दाहिणपच्छिमसुहेण बारेण।
नामंतरेण अन्नाइं तिन्नि मिलियाणि चउसट्ठी ॥ १५ ॥

ऊपर जो शांतनादि क्रमसे सोलह घर कहे हैं, उन प्रत्येक के पूर्व दक्षिण और पश्चिम मुख के द्वार भेदों को दूसरे तीन २ घरों के नाम क्रमशः इनमें मिलाने से प्रत्येक के चार २ रूप होते हैं। इस तरह इन सब को जोड़ लेने से कुल चौसठ नाम घर के होते हैं ॥६५॥

दिशाओं के भेदों से द्वार को स्पष्ट बतलाते हैं—

तथाहि—संतणमुत्तरबारं तं चिय पुव्वमुहु संतदं भणिअं।
जम्ममुहवड्ढमाणं अवरमुहं कुक्कुडं तहन्नेसु ॥ १६ ॥

जैसे—शांतन नाम के घर का मुख उत्तर दिशा में, शान्तिद घर का मुख पूर्व दिशा में, वर्द्धमान घर का मुख दक्षिण दिशा में और कुक्कुट घर का मुख पश्चिम दिशा में है। इसी तरह दूसरे भी चार २ घरों के मुख समझ लेना चाहिये। ये मैंने पहिले से ही खुलासा पूर्वक लिख दिये हैं ॥६६॥

अब सूर्य आदि आठ घरों का स्वरूप—

यथा—अग्गे* अलिंदतियगं इक्किक्कं वामदाहिणोवरयं।
थंभजुअं च दुसालं तस्स य नामं हवइ सूरं ॥ १७ ॥

जिस द्विशाल घर के आगे तीन अलिन्द हो, तथा बांयी और दाहिनी तरफ एक २ शाला स्तंभयुक्त हो तो यह 'सूर्य' नाम का घर कहा जाता है ॥६७॥

वयणे य चउ अलिंदा उभयदिसे इक्कु इक्कु ओवरओ।
नामेण वासवं तं जुगअंतं जाव वसइ धुवं ॥ १८ ॥

जिस द्विशाल घर के आगे चार अलिन्द हो, तथा बांयी और दाहिनी तरफ एक २ शाला हो तो यह 'वासव' नाम का घर कहा जाता है। इस में रहने वाले युगान्त तक स्थिर रहते हैं ॥६८॥

---

* 'आए' इति पाठान्तरे।

मुहि ति अलिंद दुपच्छइ दाहिणवामे अ हवइ इक्किक्कं ।
तं गिहनामं वीयं हियच्छियं चउसु वन्नाणं ॥ ९९ ॥

जिस द्विशाल घर के आगे तीन अलिन्द, पीछे की तरफ दो अलिन्द, तथा दाहिनी और बांयी तरफ एक २ अलिन्द हों तो उस घर का नाम 'वीर्य' कहा जाता है। यह चारों वर्णों का हितचिन्तक है ॥९९॥

दो पच्छइ दो पुरओ अलिंद तह दाहिणे हवइ इक्को ।
कालक्खं तं गेहं अकालिदंडं कुणइ नूणं ॥ १०० ॥

जिस द्विशाल घर के आगे और पीछे दो २ अलिन्द तथा दाहिनी ओर एक अलिन्द हो तो यह 'काल' नाम का घर कहा जाता है। यह निश्चय से अकाल-दंड (दुर्भिक्षता) करता है ॥१००॥

अलिंद तिन्नि वयणे जुअलं जुअलं च वामदाहिणए ।
एगं पिट्ठि दिसाए बुद्धी संबुद्धिवड्ढणायं ॥ १०१ ॥

जिस द्विशाल घर के आगे तीन अलिन्द तथा बांयी और दक्षिण तरफ दो २ अलिंद और पीछे की तरफ एक अलिन्द हो ऐसे घर को 'बुद्धि' नाम का घर कहा जाता है। यह सद्बुद्धि को बढानेवाला है ॥१०१॥

दु अलिंद चउदिसेहिं सुव्वयनामं च सव्वसिद्धिकरं ।
पुरओ तिन्नि अलिंदा तिदिसि दुगं तं च पासायं ॥ १०२ ॥

जिस द्विशाल घर के चारों ओर दो दो अलिन्द हों तो यह 'सुव्रत' नाम का घर कहा जाता है, यह सब तरह से सिद्धिकारक है। जिस द्विशाल घर के आगे तीन अलिन्द और तीनों दिशाओं में दो २ अलिन्द हो तो यह 'प्रासाद' नाम का घर कहा जाता है ॥१०२॥

चउरि अलिंदा पुरओ पिट्ठि तिगं तं गिहं दुवेहक्खं ।
इह सूराई गेहा अट्ठ वि नियनामसरिसफला ॥ १०३ ॥

जिस द्विशाल घर के आगे चार अलिन्द और पीछे की तरफ तीन अलिन्द हों उसको 'द्विवेध' नाम का घर कहा जाता है। ये सूर्य आदि आठ घर कहे हैं वे उनके नाम सदृश फलदायक हैं ॥१०३॥
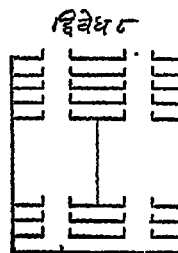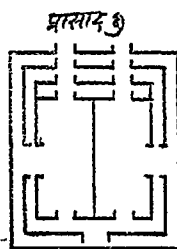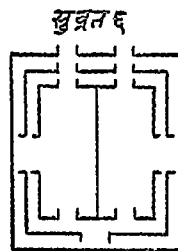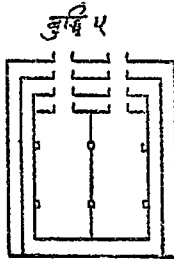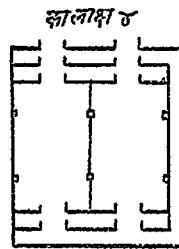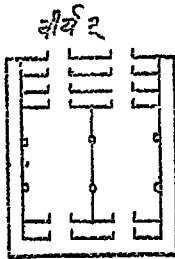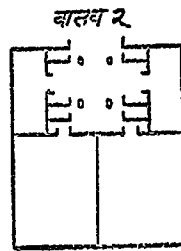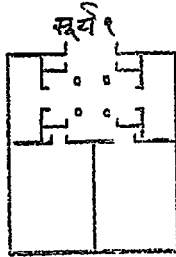
विमलाइ सुंदराई हंसाइ अलंकियाइ पभवाई ।
पम्मोय सिरिभवाई चूडामणि कलसमाई य ॥ १०४ ॥
एमाइआसु सव्वे सोलस सोलस हवंति गिहतत्तो ।
इक्किक्काओ चउ चउ दिसिभेअ-अलिंदभेएहिं ॥ १०५ ॥
तिअलोयसुंदराई चउसट्ठि गिहाइ हुंति रायाणो ।
ते पुण अवट्ट संपइ मिच्छा ण च रज्जभावेण ॥ १०६ ॥

विमलादि, सुंदरादि, हंसादि, अलंकृतादि, प्रभवादि, प्रमोदादि, सिरिभवादि चूडामणि और कलश आदि ये सब ध्रुवादि घर के एक से चार चार दिशाओं के और अलिन्द के भेदों से सोलह २ भेद होते हैं । त्रैलोक्यसुन्दर आदि चौसठ घर राजाओं के लिए हैं । इस समय गोल घर बनाने का रिवाज नहीं है, किन्तु राज्यभाव से मना नहीं है अर्थात् राजा लोग गोल मकान भी बना सकते हैं ॥१०४ से १०६॥

घर में कहां २ किस २ का स्थान करना चाहिये यह बतलाते हैं—

पुव्वे सीहदुवारं अग्गीइ रसोइ दाहिणे सयणं ।
नेरइ नीहारठिइ भोयणठिइ पच्छिमे भणियं ॥ १०७ ॥
वायव्वे सव्वाउह कोसुत्तर धम्मठाणु ईसाणे ।
पुव्वाइ विणिद्देसो मूलग्गिहदारविक्खाए ॥ १०८ ॥

मकान की पूर्व दिशा में सिंह द्वार बनाना चाहिये, अग्निकोण में रसोई बनाने का स्थान, दक्षिण में शयन (निद्रा) करने का स्थान, नैऋत्य कोण में निहार (पाखाने) का स्थान, पश्चिम में भोजन करने का स्थान, वायव्य कोण में सब प्रकार के आयुध का स्थान, उत्तर में धन का स्थान और ईशान में धर्म का स्थान बनाना चाहिये । इन सब का घर के मूलद्वार की अपेक्षा से पूर्वादिक दिशा का विभाग करना चाहिये अर्थात् जिस दिशा में घर का मुख्य द्वार हो उसी ही दिशा को पूर्व दिशा मान कर उपरोक्त विभाग करना चाहिये ॥१०७ से १०८॥

द्वार विषय—

पुव्वाइ विजयबारं जमबारं दाहिणाइ नायव्वं ।
अवरेण मयरबारं कुबेरबारं उईचीए ॥१०९॥
नामसमं फलमेसिं बारं न कयावि दाहिणे कुज्जा ।
जइ होइ कारणेणं ताउ चउदिसि अट्ठ भाग कायव्वा ॥११०॥
सुहबारु अंसमज्झे चउसुं पि दिसासु अट्ठभागासु ।
चउ तिय दुन्नि छ पण तिय पण तिय पुव्वाइ सुकम्मेण ॥१११॥

पूर्व दिशा के द्वार को विजय द्वार, दक्षिण द्वार को यमद्वार, पश्चिम द्वार को मगर द्वार और उत्तर के द्वार को कुबेर द्वार कहते हैं। ये सब द्वार अपने नाम के अनुसार फल देनेवाले हैं। इसलिये दक्षिण दिशा में कभी भी द्वार नहीं बनाना चाहिये। कारणवश दाक्षिण में द्वार बनाना ही पड़े तो मध्य भाग में नहीं बना कर नीचे बतलाये हुये भाग के अनुसार बनाना सुखदायक होता है। जैसे मकान बनाये जानेवाली भूमि की चारों दिशाओं में आठ २ भाग बनाना चाहिये। पीछे पूर्व दिशा के आठों भागों में से चौथे या तीसरे भाग में, दक्षिण दिशा के आठों भागों में से दूसरे या छट्ठे भाग में, पश्चिम दिशा के आठों भागों में से तीसरें या पांचवें भाग में तथा उत्तर दिशा के आठों भागों में से तीसरे या पांचवें भाग में द्वार बनाना अच्छा होता है॥ १०९ से १११॥

बाराउ गिहपवेसं सोवाण करिज्ज सिट्ठिमग्गेणं ।
* पयठाणं सुरमुहं जलकुंभ रसोइ आसन्नं ॥११२॥

द्वार से घर में जाने के लिये सृष्टिमार्ग से अर्थात् दाहिनी ओर से प्रवेश हो, उसी प्रकार सीढ़ियें बनवाना चाहिये.........॥ ११२ ॥

समरांगण में शुभाशुभ गृहप्रवेश इस प्रकार कहा है कि—

"उत्सङ्गो हीनबाहुश्च पूर्णबाहुस्तथापरः ।
प्रत्यक्षायश्चतुर्थश्च निवेशः परिकीर्त्तितः ॥"

* उत्तरार्द्ध गाथा विद्वानों को विचारणीय है।

गृहद्वार में प्रवेश करने के लिये प्रथम 'उत्संग' प्रवेश, दूसरा 'हीनबाहु' अर्थात् 'सव्य' प्रवेश, तीसरा 'पूर्णबाहु' अर्थात् 'अपसव्य' प्रवेश और चौथा 'प्रत्यक्ष' अर्थात् 'पृष्ठभंग' प्रवेश ये चार प्रकार के प्रवेश माने हैं। इनका शुभाशुभ फल क्रमशः अब कहते हैं।

"उत्संग एकदिक्काभ्यां द्वाराभ्यां वास्तुवेश्मनोः।
स सौभाग्यप्रजावृद्धि-धनधान्यजयप्रदः॥"

वास्तुद्वार अर्थात् मुख्य घर का द्वार और प्रवेश द्वार एक ही दिशा में हो अर्थात् घर के सम्मुख प्रवेश हो, उसको 'उत्संग' प्रवेश कहते हैं। ऐसा प्रवेश द्वार सौभाग्य कारक, संतान वृद्धि कारक, धनधान्य देनेवाला और विजय करनेवाला है।

"यत्र प्रवेशतो वास्तु-गृहं भवति वामतः।
तद्धीनबाहुकं वास्तु निन्दितं वास्तुचिन्तकैः॥
तस्मिन् वसन्नल्पवित्तः स्वल्पमित्रोऽल्पबांधवः।
स्त्रीजितश्च भवेन्नित्यं विविधव्याधिपीडितः॥"

यदि मुख्य घर का द्वार प्रवेश करते समय बांयी ओर हो अर्थात् प्रथम प्रवेश करने के बाद बांयी ओर जाकर मुख्य घर में प्रवेश हो, उसको 'हीनबाहु' प्रवेश कहते हैं। ऐसे प्रवेश को वास्तुशास्त्र जाननेवाले विद्वानों ने निन्दित माना है। ऐसे प्रवेश वाले घर में रहने वाला मनुष्य अल्प धनवाला तथा थोड़े मित्र बांधव वाला और स्त्रीजित होता है तथा अनेक प्रकार की व्याधियों से पीड़ित होता है।

'वास्तुप्रवेशतो यत् तु गृहं दक्षिणतो भवेत्।
प्रदक्षिणप्रवेशत्वात् तद् विद्यात् पूर्णबाहुकम्॥
तत्र पुत्रांश्च पौत्रांश्च धनधान्यसुखानि च।
प्राप्नुवन्ति नरा नित्यं वसन्तो वास्तुनि ध्रुवम्॥"

यदि मुख्य घर का द्वार प्रवेश करते समय दाहिनी ओर हो, अर्थात् प्रथम प्रवेश करने के बाद दाहिनी ओर जाकर मुख्य घर में प्रवेश हो तो उसको 'पूर्णबाहु' प्रवेश कहते हैं। ऐसे प्रवेश वाले घर में रहनेवाला मनुष्य पुत्र, पौत्र, धन, धान्य और सुख को निरंतर प्राप्त करता है।

"गृहपृष्ठं समाश्रित्य वास्तुद्वारं यदा भवेत् ।
प्रत्यच्चायस्त्वसौ निन्द्यो वामावर्त्तप्रवेशवत् ॥"

यदि मुख्य घर की दीवार घूमकर मुख्य घर के द्वार में प्रवेश होता हो तो 'प्रत्यच्च' अर्थात् 'पृष्ठ भंग' प्रवेश कहा जाता है। ऐसे प्रवेशवाला घर, हीनबाहु प्रवेश की तरह निंदनीय है।

घर और दुकान कैसे बनाना चाहिये—

सगडमुहा वरगेहा कायव्वा तह य हट्ट वग्घमुहा ।
बाराउ गिहकमुच्चा हट्टुच्चा पुरउ मज्झ समा ॥११३॥

गाड़ी के अग्र भाग के समान घर हो तो अच्छा है, जैसे गाड़ी के आगे का हिस्सा सकड़ा और पीछे चौड़ा होता है, उसी प्रकार घर द्वार के आगे का भाग सकड़ा और पीछे चौड़ा बनाना चाहिये। तथा दुकान के आगे का भाग सिंह के मुख जैसे चौड़ा बनाना अच्छा है। घर के द्वार भाग से पीछे का भाग ऊंचा होना अच्छा है। तथा दुकान के आगे का भाग ऊंचा और मध्य में समान होना अच्छा है ॥११३॥

द्वार के उदय (ऊंचाई) और विस्तार (चौड़ाई) का मान राजवल्लभ में इस प्रकार कहा है—

षष्ट्या वाथ शतार्द्धसप्ततियुतैर्व्यासस्य हस्ताङ्गुलै-
द्वारस्योदयको भवेच्च भवने मध्यः कनिष्ठोत्तमौ ।
दैर्घ्यार्द्धेन च विस्तरः शशिकला-भागोधिकः शस्यते,
दैर्घ्यात् त्र्यंशविहीनमर्द्धरहितं मध्यं कनिष्ठं क्रमात् ॥"

घर की चौड़ाई जितने हाथ की हो, उतने ही अंगुल मानकर उसमें साठ अंगुल और मिला देना चाहिये। ये कुल मिलकर जितने अंगुल हों उतनी ही द्वार की ऊंचाई बनाना चाहिये, यह ऊंचाई मध्यम नाप की है। यदि उसी संख्या में पचास अंगुल मिला दिये जांय और उतने द्वार की ऊंचाई हो तो वह कनिष्ठ मान की ऊंचाई जानना चाहिये। यदि उसी संख्या में सत्तर ७० अंगुल मिला देने से जो संख्या होती है उतनी दरवाजे की ऊंचाई हो तो वह ज्येष्ठ मान का उदय जानना चाहिये।

दरवाजे की ऊंचाई जितने अंगुल की हो उसके आधे भाग में ऊंचाई के सोलहवें भाग की संख्या को मिला देने से जो कुल नाप होती है, उतनी ही दरवाजे की चौड़ाई की जाय तो वह श्रेष्ठ है। दरवाजे की कुल ऊंचाई के तीन भाग बराबर करके उसमें से एक भाग अलग कर देना चाहिये। बाकी के दो भाग जितनी दरवाजे की चौड़ाई की जाय तो वह मध्यम द्वार कहा जाता है। यदि दरवाजे की ऊंचाई के आधे भाग जितनी चौड़ाई की जाय तो वह कनिष्ठ मानवाला द्वार जानना चाहिये।

द्वार के उदय का दूसरा प्रकार—

"गृहोत्सेधेन वा त्र्यंशहीनेन स्यात् समुच्छ्रितिः।
तदर्द्धेन तु विस्तारो द्वारस्येत्यपरो विधिः॥"

घर की ऊंचाई के तीन भाग करना, उसमें से एक भाग अलग करके बाकी दो भाग जितनी द्वार की ऊंचाई करना चाहिये। और ऊंचाई से आधे द्वार का विस्तार करना चाहिये। यह द्वार के उदय और विस्तार का दूसरा प्रकार है।

घर की ऊंचाई का फल—

पुव्वुच्चं अत्थहरं दाहिण उच्चघरं धणसमिद्धं।
अवरुच्चं विद्धिकरं उव्वसियं उत्तराउच्चं॥११४॥

*पूर्व दिशा में घर ऊंचा हो तो लक्ष्मी का नाश, दक्षिण दिशा में घर ऊंचा हो तो धन समृद्धियों से पूर्ण, पश्चिम दिशा में घर ऊंचा हो तो धन धान्यादि की वृद्धि करने वाला और उत्तर तरफ घर ऊंचा हो तो उजाड़ (वस्ती रहित) होता है॥११४॥

घर का आरम्भ प्रथम कहां से करना चाहिये यह बतलाते हैं—

मूलाओ आरंभो कीरइ पच्छा कमे कमे कुज्जा।
सव्वं गणिय-विसुद्धं वेहो सव्वत्थ वज्जिज्जा॥११५॥

सब प्रकार के भूमि आदि के दोषों को शुद्ध करके जो मुख्य शाला (घर) है, वहां से प्रथम काम का आरम्भ करना चाहिये। पश्चात् क्रम से दूसरी दूसरी

---

* यहां पूर्वादि दिशा घर के द्वार की अपेक्षा से समझना चाहिये अर्थात् घर के द्वार को पूर्व दिशा मानकर सब दिशा समझ लेना चाहिये।

जगह कार्य शुरू करना चाहिये। किसी जगह आय व्यय आदि के क्षेत्रफल में दोष नहीं आना चाहिये, एवं वेध तो सर्वथा छोड़ना ही चाहिये ॥११५॥

सात प्रकार के वेध—

तलवेह–कोणवेहं तालुयवेहं कवालवेहं च ।
तह थंभ–तुलावेहं दुवारवेहं च सत्तमयं ॥११६॥

तलवेध, कोणवेध, तालुवेध, कपालवेध, स्तंभवेध, तुलावेध और द्वारवेध, ये सात प्रकार के वेध हैं ॥११६॥

समविसमभूमि कुंभि अ जलपुरं परगिहस्स तलवेहो ।
कूणसमं जइ कूणं न हवइ ता कूणवेहो अ ॥११७॥

घर की भूमि कहीं सम कहीं विषम हो, द्वार के सामने कुंभी (तेल निकालने की घानी, पानी का अरहट या ईख पीसने का कोल्हू) हो, कूए या दूसरे के घर का रास्ता हो तो 'तलवेध' जानना चाहिये। तथा घर के कोने बराबर न हों तो 'कोण-वेध' समझना। ११७॥

इक्कखणे नीचुच्चं पीढं तं मुणह तालुयावेहं ।
बारस्सुवरिमपट्टे गब्भे पीढं च सिरवेहं ॥११८॥

एक ही खंड में पीढे नीचे ऊंचे हों तो उसको 'तालुवेध' समझना चाहिए। द्वार के ऊपर की पटरी पर गर्भ (मध्य) भाग में पीढा आवे तो 'शिरवेध' जानना चाहिये ॥११८॥

गेहस्स मज्झि भाए थंभेगं तं मुणेह उरसल्लं ।
अह अनलो विनलाइं हविज्ज जा थंभवेहो सो ॥११९॥

घर के मध्य भाग में एक खंभा हो अथवा अग्नि या जल का स्थान हो तो यह हृदय शल्य अर्थात् स्तंभवेध जानना चाहिये ॥११९।

हिट्ठिम उवरि खणाणं हीणाहियपीढ तं तुलावेहं ।
*पीढा समसंखाओ हवंति जइ तत्थ नहु दोसो ॥१२०॥

घर के नीचे या ऊपर के खंड में पीढे न्यूनाधिक हों तो 'तुलावेध' होता है। परन्तु पीढ की संख्या समान हो तो दोष नहीं है ॥१२०॥

दुम–कूव–थंभ–कोणय–किलाविद्धे दुवारवेहो य ।
गेहुच्चबिउणभूमी तं न विरुद्धं बुहा विंति ॥१२१॥

जिस घर के द्वार के सामने या बीच में वृक्ष, कूआ, खंभा, कोना या कीला (खूंटा) हो तो 'द्वारवेध' होता है । किन्तु घर की ऊंचाई से द्विगुनी (दूनी) भूमि छोड़ने के बाद उपरोक्त कोई वेध हो तो विरुद्ध नहीं अर्थात् वेधों का दोष नहीं है, ऐसा पंडित लोग कहते हैं ॥१२१॥

वेध का परिहार आचारदिनकर में कहा है कि—

"उच्छ्रायभूमिं द्विगुणां त्यक्त्वा चैत्ये चतुर्गुणाम् ।
वेधादिदोषो नैवं स्याद् एवं त्वष्टृमतं यथा ॥"

घर की ऊंचाई से दुगुनी और मन्दिर की ऊंचाई से चारगुणी भूमि को छोड़ कर कोई वेध आदि का दोष हो तो वह दोष नहीं माना जाता है, ऐसा विश्वकर्मा का मत है ॥

वेधफल—

तलवेहि कुट्ठरोगा हवंति उच्चेय कोणवेहम्मि ।
तालुअवेहेण भयं कुलक्खयं थंभवेहेण ॥१२२॥
कावालु तुलावेहे धणनासो हवइ रोरभावो अ ।
इअ वेहफलं नाउं सुद्धं गेहं करेयव्वं ॥१२३॥

तलवेध से कुष्ठरोग, कोनवेध से उच्चाटन, तालुवेध से भय, स्तंभवेध से कुल का क्षय, कपाल (शिर) वेध और तुलावेध से धन का विनाश और क्लेश होता है । इस प्रकार वेध के फल को जानकर शुद्ध घर बनाना चाहिये ॥१२२।१२३॥

---

* 'पीढं पंचसम समं हवइ जइ तत्थ नहु दोसो' इति पाठान्तरे ।

वाराही संहिता में द्वारवेध बतलाते हैं—

"रथ्याविद्धं द्वारं नाशाय कुमारदोषदं तरुणा ।
पंकद्वारे शोको व्ययोऽम्बुनिःस्राविणि प्रोक्तः ॥
कूपेनापस्मारो भवति विनाशश्च देवताविद्धे ।
स्तंभेन स्त्रीदोषाः कुलनाशो ब्रह्मणाभिमुखे ॥"

दूसरे के घर का रास्ता अपने द्वार से जाता हो ऐसे रास्ते का वेध विनाश कारक होता है। वृक्ष का वेध हो तो बालकों के लिये दोषकारक है। कादे वा कीचड़ का हमेशा वेध रहता हो तो शोककारक है। पानी निकलने के नाले का वेध हो तो धन का विनाश होता है। कूए का वेध हो तो अपस्मार का रोग (वायु विकार) होता है। महादेव सूर्य आदि देवों का वेध हो तो गृहस्वामी का विनाश करने वाला है। स्तंभ का वेध हो तो स्त्री को दोष रूप है और ब्रह्मा के सामने द्वार हो तो कुल का नाश करनेवाला है।

इगवेहेण य कलहो कमेण हाणिं च जत्थ दो हुंति ।
तिहु भूआणनिवासो चउहिं खओ पंचहिं मारी ॥१२४॥

एक वेध से कलह, दो वेध से क्रमशः हानि, तीन वेध हो तो घर में भूतों का वास, चार वेध हो तो घर का क्षय और पांच वेध हो तो महामारी का रोग होता है ॥ १२४ ॥

वास्तुपुरुष चक्र—

अट्ठुत्तरसउ भाया पडिमारूवुव्व करिवि भूमितओ ।
सिरि हियइ नाहि सिहिणो थंभं वज्जेह जत्तेणं ॥१२५॥

घर बनाने की भूमि के तलभाग का एक सौ आठ* भाग कर के इसमें एक मूर्ति के आकार जैसा वास्तुपुरुष का आकार बनाना, जहां जहां इस वास्तुपुरुष के मस्तक, हृदय, नाभि और शिखा का भाग आवे, उसी स्थान पर स्तंभ नहीं रखना चाहिये ॥१२५॥

* एकसौ आठ भाग की कल्पना की गई है, इसमें से सौ भाग वास्तुमंडल के और आठ भाग वास्तुमंडल के बाहर कोने में चरकी आदि आठ राक्षसणी के समझना चाहिये ऐसा प्रासाद मंडन में कहा है।

वास्तु नर का अंग विभाग इस प्रकार है—

"ईशो मूर्ध्नि समाश्रितः श्रवणयोः पर्जन्यनामादिति—
रापस्तस्य गले तदंशयुगले प्रोक्तो जयश्चादितिः ।
उक्तावर्यमभूधरौ स्तनयुगे स्यादापवत्सो हृदि,
पञ्चेन्द्रादिसुराश्च दक्षिणभुजे वामे च नागादयः ॥
सावित्रः सविता च दक्षिणकरे वामे द्वयं रुद्रतो,
मृत्युर्मैत्रगणस्तथोरुविषये स्यान्नाभिपृष्ठे विधिः ।
मेढ्रे शक्रजयौ च जानुयुगले तौ वह्निरोगौ स्मृतौ,
पूषानंदिगणाश्च सप्तविबुधा नल्योः पदोः पैतृकाः ॥"

ईशानकोने में वास्तुपुरुष का सिर है, इसके ऊपर ईशदेव को स्थापित करना चाहिये । दोनों कान के ऊपर पर्जन्य और दिति देव को, गले के ऊपर आपदेव को, दोनों कंधे पर जय और अदिति देव को, दोनों स्तनों पर क्रम से अर्यमा और पृथ्वीधर को, हृदय के ऊपर आपवत्स को, दाहिनी भुजा के ऊपर इंद्रादि पांच (इंद्र, सूर्य, सत्य, भृश और आकाश) देवों को, बायीं भुजा के ऊपर नागादि पांच (नाग,

वास्तु पुरुष चक्र—

मुख्य, भल्लाट, कुबेर और शैल) देवों को, दाहिने हाथ पर सावित्र और सविता को, बांये हाथ पर रुद्र और रुद्रदास को, जंघा के ऊपर मृत्यु और मैत्र देव को, नाभि के *पृष्ठ भाग पर ब्रह्मा को, गुह्येन्द्रिय स्थान पर इंद्र और जय को, दोनों घुटनों पर क्रम से अग्नि और रोग देव को, दाहिने पग की नली पर पूषादि सात (पूषा, वितथ, गृहक्षत, यम, गंधर्व, भृंग और मृग) देवों को, बांये पग की नली पर नंदी आदि सात (नंदी, सुग्रीव, पुष्पदंत, वरुण असुर, शेष और पापयक्ष्मा) देवों को और पांव पर पितृदेव को स्थापित करना चाहिये ।

इस वास्तु पुरुष के मुख, हृदय, नाभि, मस्तक, स्तन इत्यादि मर्मस्थान के ऊपर दीवार स्तंभ या द्वार आदि नहीं बनाना चाहिये । यदि बनाया जाय तो घर के स्वामी की हानि करनेवाला होता है ।

वास्तुपद के ४५ देवों के नाम और उनके स्थान—

"ईशस्तु पर्जन्यजयेन्द्रसूर्याः, सत्यो भृशाकाशक एव पूर्वे ।
वह्निश्च पूषा वितथाभिधानो, गृहक्षतः प्रेतपतिः क्रमेण ॥
गन्धर्वभृङ्गौ मृगपितृसंज्ञौ, द्वारस्थसुग्रीवकपुष्पदन्ताः ।
जलाधिनाथोप्यसुरश्च शेषः सपापयक्ष्मापि च रोगनागौ ॥
मुख्यश्च भल्लाटकुबेरशैला-स्तथैव बाह्ये ह्यदितिर्दितिश्च ।
द्वात्रिंशदेवं क्रमतोऽर्चनीया-स्त्रयोदशैव त्रिदशाश्च मध्ये ॥"

ईशान कोने में ईश देव को, पूर्व दिशा के कोठे में क्रमशः पर्जन्य, जय, इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश और आकाश इन सात देवों को; अग्निकोण में अग्निदेव को, दक्षिण दिशा के कोठे में क्रमशः पूषा, वितथ, गृहक्षत, यम, गंधर्व, भृंगराज और मृग इन सात देवों को; नैऋत्य कोण में पितृदेव को; पश्चिम दिशा के कोठे में क्रमशः नंदी, सुग्रीव, पुष्पदंत, वरुण, असुर, शेष और पापयक्ष्मा इन सात देवों को; वायु-कोण में रोगदेव को; उत्तर दिशा के कोठे में अनुक्रम से नाग, मुख्य, भल्लाट, कुबेर, शैल, अदिति और दिति इन सात देवों को स्थापन करना चाहिये । इस

* नाभि के पृष्ठ भाग पर, इसका मतलब यह है कि वास्तुपुरुष की आकृति, औंधे सोये हुए पुरुष की आकृति के समान है ।

प्रकार बत्तीस देव ऊपर के कोठे में पूजना चाहिये। और मध्य के कोठे में तेरह देव पूजना चाहिये।

"प्रागर्यमा दक्षिणतो विवस्वान्, मैत्रोऽपरे सौम्यदिशो विभागे।
पृथ्वीधरोऽर्च्यस्त्वथ मध्यतोऽपि, ब्रह्मार्चनीयः सकलेषु नूनम् ॥"

ऊपर के कोठे के नीचे पूर्व दिशा के कोठे में अर्यमा, दक्षिण दिशा के कोठे में विवस्वान्, पश्चिम दिशा के कोठे में मैत्र और उत्तर दिशा के कोठे में पृथ्वीधर देव को स्थापित कर पूजन करना चाहिये और सब कोठे के मध्य में ब्रह्मा को स्थापित कर पूजन करना चाहिये।

"आपापवत्सौ शिवकोणमध्ये, सावित्रकोऽग्नौ सविता तथैव।
कोणे महेन्द्रोऽथ जयस्तृतीये, रुद्रोऽनिलेऽर्च्योऽप्यथ रुद्रदासः ॥"

ऊपर के कोने के कोठे के नीचे ईशान कोण में आप और आपवत्स को, अग्नि कोण में सावित्र और सविता को, नैऋत्य कोण में इन्द्र और जय को, वायु कोण में रुद्र और रुद्रदास को स्थापन करके पूजन करना चाहिये।

"ईशानबाह्ये चरकी द्वितीये, विदारिका पूतनिका तृतीये।
पापाभिधा मारुतकोणके तु, पूज्याः सुरा उक्तविधानकैस्तु ॥"

वास्तुमंडल के बाहर ईशान कोण में चरकी, अग्निकोण में विदारिका, नैऋत्य कोण में पूतना और वायुकोण में पापा इन चार राक्षसनियों की पूजन करना चाहिये।

प्रासाद मंडन में वास्तुमंडल के बाहर कोणे में आठ प्रकार के देव बतलाये हैं। जैसे—

"ऐशान्ये चरकी बाह्ये पीलीपीछा च पूर्ववत्।
विदारिकाग्नौ कोणे च जंभा याम्यदिशाश्रिता ॥
नैर्ऋत्ये पूतना स्कन्दा पश्चिमे वायुकोणके।
पापा राक्षसिका सौम्येऽर्यमैवं सर्वतोऽर्चयेत् ॥"

ईशान कोने के बाहर उत्तर में चरकी और पूर्व में पीली पीछा, अग्नि कोण के बाहर पूर्व में विदारिका और दक्षिण में जंभा, नैऋत्य कोण के बाहर दक्षिण में पूतना और पश्चिम में स्कंदा, वायु कोण के बाहर पश्चिम में पापा और उत्तर में अर्यमा की पूजन करना चाहिये।

कौनसे वास्तु की किस जगह पूजन करना चाहिये यह बतलाते हैं—

"ग्रामे भूपतिमंदिरे च नगरे पूज्यश्चतुःषष्टिकै—
रेकाशीतिपदैः समस्तभवने जीर्णे नवाऽघ्यंशकैः ।
प्रासादे तु शतांशकैस्तु सकले पूज्यस्तथा मण्डपे,
कूपे षरणवचन्द्रभागसहितै–र्वाप्यां तडागे वने ॥"

गाँव, राजमहल और नगर में चौसठ पद का वास्तु, सब प्रकार के घरों में इक्यासी पद का वास्तु, जीर्णोद्धार में उनपचास पद का वास्तु, समस्त देवप्रासाद में और मंडप में सौ पद का वास्तु, कूए बावड़ी, तालाब और वन में एकसौ छिआनवे पद के वास्तु की पूजन करना चाहिए।

चौसठ पद के वास्तु का स्वरूप—

चतुःषष्टिपदैर्वास्तु–र्मध्ये ब्रह्मा चतुष्पदः ।
अर्यमाद्याश्चतुर्भागा द्विद्व्यंशा मध्यकोणगाः ॥
बहिष्कोणेष्वर्द्धभागाः शेषा एकपदाः सुराः ।"

चौसठ पद के वास्तु में चार पद का ब्रह्मा, अर्यमादि चार देव भी चार २ पद के, मध्य कोने के आप आपवत्स आदि आठ देव दोदो पद के, उपर के कोने के आठ देव आधे २ पद के और बाकी के देव एक २ पद के हैं।

६४ चौसठपदका वास्तुचक्र—

दि / रु	प	ज	इ	सू	स	भृ	आ / अ
अ	आप		अर्यमा		सावित्र		पू
शो	आपवत्स				सविता		वि
ऊ							गृ
भ	पृथ्वीधर		ब्रह्मा		विवस्वान		य
मु	रुद्र				इन्द्र		ग
ना	रुद्रदास		मैत्रगण		जय		भृं
रो / पा	शो	अ	व	पु	सु	नं	म / पि
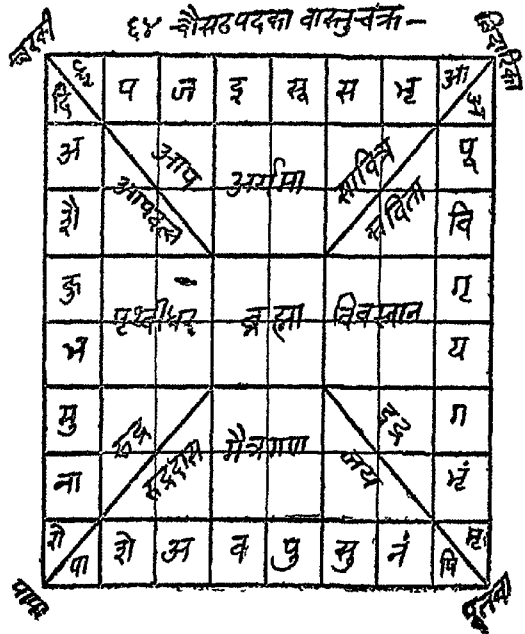
इक्यासी पद के वास्तु का स्वरूप—

"एकाशीतिपदे ब्रह्मा नवार्यमाद्यास्तु षट्पदाः ॥
द्विपदा मध्यकोणेऽष्टौ बाह्ये द्वात्रिंशदेकशः ।"

८१ इक्यासी पद का वास्तु चक्र —

ई	प	ज	इं	स	स	भृ	आ	अ
दि								पू
अ			अर्यमा				सविता	वि
शो								गृ
अ	पृथ्वीधर			ब्रह्मा			विवस्वान	य
भ								ग
मु								भृ
ना								मृ
रो	पा	शो	अ	व	पु	सु	नं	पि

इक्यासी पद के वास्तु में नव पद का ब्रह्मा, अर्यमादि चार देव छः छः पद के मध्य कोने के आप आपवत्स आदि आठ देव दो दो पद के और ऊपर के बत्तीस देव एक २ पद के हैं।

सौ पद के वास्तु का स्वरूप—

"शते ब्रह्माष्टिसंख्यांशो बाह्यकोणेषु सार्द्धगाः ॥
अर्यमाद्यास्तु वस्वंशाः शेषास्तु पूर्ववास्तुवत् ।"

सौ पद के वास्तु में ब्रह्मा सोलह पद का, ऊपर के कोने के आठ देव डेढ़ २ पद के, अर्यमादि चार देव आठ आठ पद के और मध्य कोने के आप आपवत्स आदि आठ देव दो २ पद के, तथा बाकी के देव एक २ पद के हैं ।

उनपचास पद के वास्तु का स्वरूप—

"वेदांशो विधिरर्यमप्रभृतयस्त्र्यंशा नव त्वष्टकं,
कोणेतोऽष्टपदार्द्धकाः परसुराः षड्भागहीने पदे।
वास्तोर्नन्दयुगांश एवमधुनाष्टांशैश्चतुःषष्टिके,
सन्धेः सूत्रमितान् सुधीः परिहरेद् भित्तिं तुलां स्तंभकान् ॥"

उनपचास पद के वास्तु में चार पद का ब्रह्मा, अर्यमादि चार देव तीन २ पद के, आप आदि आठ देव नव पद के, कोने के आठ देव आधे २ पद के और बाकी के चौबीस देव बीस पद में स्थापन करना चाहिये। बीस पद में प्रत्येक के छः २ भाग किये तो १२० पद हुए, इसको २४ से भाग दिया तो प्रत्येक देव के पांच २ भाग आते हैं। चौसठ पद में वास्तुपुरुष की कल्पना करना चाहिये। पीछे वास्तुपुरुष के संधि भाग में दिवाल तुला या स्तंभ को बुद्धिमान् नहीं रक्खें।

वसुनंदिकृत प्रतिष्ठासार में इक्यासी पद का वास्तुपूजन इस प्रकार बतलाया है कि—

"विधाय मसृणं चेत्रं वास्तुपूजां विधापयेत् ॥
रेखाभिस्तिर्यगूर्ध्वाभि—र्वज्राग्राभिः सुमण्डलम् ।
चूर्णेन पंचवर्णेन सैकाशीतिपदं लिखेत् ॥
तन्मध्यष्टदलपद्मानि लिखित्वा मध्यकोष्टके ।
अनादिसिद्धमंत्रेण पूजयेत् परमेष्ठिनः ॥
तद्बहिःस्याष्टकोष्टेषु जयाद्या देवता यजेत् ।
ततः षोडशपत्रेषु विद्यादेवीश्च संयजेत् ॥
चतुर्विंशतिकोष्टेषु यजेच्छासनदेवताः ।
द्वात्रिंशत्कोष्टपङ्क्तेषु देवेन्द्रान् क्रमशो यजेत् ॥

स्वमंत्रोचारणं कृत्वा गन्धपुष्पाक्षतं वरं ।
दीपधूपफलार्घाणि दत्वा सम्यक् समर्चयेत् ॥
लोकपालांश्च यक्षांश्च समभ्यर्च्य यथाविधि ।
जिनबिम्बाभिषेकं च तथाष्टविधमर्चनम् ॥"

प्रथम भूमि को पवित्र करके पीछे वास्तुपूजा करना चाहिये। अग्र भाग में वज्राकृतिवाली तिरछी और खड़ी दश २ रेखाएँ खींचना चाहिये। उसके ऊपर पंचवर्ण के चूर्ण से इक्यासी पद वाला अच्छा मंडल बनाना चाहिये। मध्य के नव कोठे में आठ पांखड़ीवाला कमल बनाना चाहिये। कमल के मध्य में परमेष्ठी अरिहंतदेव को नमस्कार मंत्र पूर्वक स्थापित करके पूजन करना चाहिये। कमल की पांखड़ियों में जया आदि देवियों की पूजा करना अर्थात् कमल के कोनेवाली चार पांखड़ियों में जया, विजया, जयंता और अपराजिता इन चार देवियों को स्थापित करके चार दिशावाली पांखड़ियों में सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु को स्थापन कर पूजन करना चाहिये। कमल के ऊपर के सोलह कोठे में सोलह विद्या देवियों को, इनके ऊपर चौवीस कोठे में शासन

देवता को और इनके ऊपर बत्तीस कोठे में [1]इन्द्रों को क्रमशः स्थापित करना चाहिये। तदनन्तर अपने २ देवों के मंत्राक्षर पूर्वक गंध, पुष्प, अक्षत, दीप, धूप, फल और नैवेद्य आदि चढ़ा कर पूजन करना चाहिये। दश दिग्पाल और चौवीस यक्षों की भी यथाविधि पूजा करना चाहिये। जिनबिंब के ऊपर अभिषेक और अष्टप्रकारी पूजा करना चाहिये।

द्वार कोने स्तंभ आदि किस प्रकार रखना चाहिये यह बतलाते हैं—

वारं वारस्स समं अह वारं वारमज्झि कायव्वं।
अह वज्जिऊण वारं कीरइ वारं तहालं च ॥१२६॥

मुख्य द्वार के बराबर दूसरे सब द्वार बनाना चाहिये अर्थात् हरएक द्वार के उत्तरंग समसूत्र में रखना या मुख्य द्वार के मध्य में आजाय ऐसा सकड़ा दरवाजा बनाना चाहिये। यदि मुख्य द्वार को छोड़ कर एक तरफ खिड़की बनाई जाय तो वह अपनी इच्छानुसार बना सकता है ॥१२६।

कूणं कूणस्स समं आलय आलं च कीलए कीलं।
थंभे थंभं कुज्जा अह वेहं वज्जि कायव्वा ॥१२७॥

कोने के बराबर कोना, आले के बराबर आला, खूँटे के बराबर खूँटा और खंभे के बराबर खंभा ये सब वेध को छोड़ कर रखना चाहिये ॥१२७॥

आलयसिरम्मि कीला थंभो वारुवरि वारु थंभुवरे।
वारद्विवार समखण विसमा थंभा महाअसुहा ॥१२८॥

आले के ऊपर कीला (खूँटा), द्वार के ऊपर स्तंभ, स्तंभ के ऊपर द्वार, द्वार के ऊपर दो द्वार, समान खंड और विषम स्तंभ ये सब बड़े अशुभ कारक हैं ॥१२८॥

थंभहीणं न कायव्वं पासायं *मठमंदिरं।
कूणकक्खंतरेऽवस्सं देयं थंभं पयत्तओ ॥१२९॥

---

1 दिगम्बराचार्य कृत प्रतिष्ठा पाठ में बत्तीस इन्द्रों के पूजन का अधिकार है।

* 'गह' पाठान्तरे।

प्रासाद (राजमहल या हवेली) मठ और मंदिर ये बिना स्तंभ के नहीं करने चाहिये। कोने के बगल में अवश्य करके स्तंभ रखना चाहिये ॥१२९॥

स्तंभ का नाप परिमाण मंजरी में कहा है कि—

"उच्छ्रये नवधा भक्ते कुंभिका भागतो भवेत्।
स्तम्भः षड्भाग उच्छ्राये भागार्द्धं भरणं स्मृतम् ॥
शारं भागार्द्धतः प्रोक्तं पट्टोच्चभागसम्मितम्" ॥

घर की ऊंचाई का नौ भाग करना, उसमें से एक भाग के प्रमाण की 'कुंभी' बनाना, छः भाग जितनी स्तंभ की ऊंचाई करना, आधे भाग जितना उदयवाला 'भरणा' करना, आधे भाग जितना उदयवाला 'शरु' करना और एक भाग प्रमाण जितना उदय में 'पीढ़ा' बनाना चाहिये।

कुंभी सिरम्मि सिहरं वट्टा अट्ठंस-भद्दगायारा।
रूवगपल्लवसहिआ गेहे थंभा न कायव्वा ॥ १३० ॥

कुंभी के सिर पर शिखरवाला, गोल, आठ कोनेवाला, भद्रकाकार (चढ़ते उतरते खांचेवाला), रूपकवाला (मूर्तियोंवाला) और पल्लववाला (पत्तियों वाला) ऐसा स्तंभ सामान्य घर में नहीं करना चाहिये। किन्तु प्रासाद—देवमंदिर वा राजमहल में बनाया जाय तो अच्छा है ॥ १३० ॥

खणमज्झे न कायव्वं कीलालयगओखमुक्खसममुहं।
अंतरछत्तामंचं करिज्ज खण तह य पीढसमं ॥ १३१ ॥

खूँटी, आला और खिड़की इनमें से कोई खंड के मध्य भाग में आजाय इस प्रकार नहीं बनाना चाहिये। किन्तु खंड में अंतरपट और मंची बनाना और पीढे सम संख्या में बनाना चाहिये ॥ १३१ ॥

गिहमज्झि अंगणे वा तिकोणयं पंचकोणयं जत्थ।
तत्थ वसंतस्स पुणो न हवइ सुहरिद्धि कईयावि ॥ १३२ ॥

जिस घर के मध्य में या आंगन में त्रिकोण या पंचकोण भूमि हो उस घर में रहनेवाले को कभी भी सुख समृद्धि की प्राप्ति नहीं होती है ॥ १३२ ॥

मूलगिहं पच्छिममुहि जो बारइ दुन्नि बारा ओवरए ।
सो तं गिहं न भुंजइ अह भुंजइ दुक्खिओ हवइ ॥ १३३ ॥

पश्चिम दिशा के द्वारवाले मुख्य घर में दो द्वार और शाला हो ऐसे घर को नहीं भोगना चाहिये अर्थात् निवास नहीं करना चाहिये, क्योंकि उसमें रहने से दुःख होता है ॥ १३३ ॥

कमलेगि जं दुवारो अहवा कमलेहिं वज्जिओ हवइ ।
हिट्ठाउ उवरि पिहुलो न ठाइ थिरु लच्छि तम्मि गिहे ॥ १३४ ॥

जिस घर के द्वार एक कमलवाले हों या बिलकुल कमल से रहित हों, तथा नीचे की अपेक्षा ऊपर चौड़े हों, ऐसे द्वारवाले घर में लक्ष्मी निवास नहीं करती है ॥ १३४ ॥

वलयाकारं कूणेहिं संकुलं अहव एग दु ति कूणं ।
दाहिणवामइ दीहं न वासियव्वेरिसं गेहं ॥ १३५ ॥

गोल कोनेवाला या एक, दो, तीन कोनेवाला तथा दक्षिण और बांयी ओर लंबा, ऐसे घर में कभी नहीं रहना चाहिये ॥ १३५ ॥

सयमेव जे किवाडा पिहियंति य उग्घडंति ते असुहा ।
चित्तकलसाइसोहा सविसेसा मूलदारि सुहा ॥ १३६ ॥

जिस घर के किवाड़ स्वयमेव बंध हो जांय या खुल जांय तो ये अशुभ समझना चाहिये। घर का मुख्य द्वार कलश आदि के चित्रों से सुशोभित हो तो बहुत शुभकारक है ॥ १३६ ॥

छत्तिंतरि भित्तिंतरि मग्गंतरि दोस जे न ते दोसा ।
साल-ओवरय-कुक्खी पिट्ठि दुवारेहिं बहुदोसा ॥ १३७ ॥

ऊपर जो वेध आदि दोष बतलाये हैं, उनमें यदि छत का, दीवार का या मार्ग का अन्तर हो तो वे दोष नहीं माने जाते हैं। शाला और ओरडा की कुक्षी (बगल भाग) यदि द्वार के पिछले भाग में हो तो बहुत दोषकारक है ॥ १३७ ॥

घर में किस प्रकार के चित्र बनाना चाहिये?—

जोइणिनट्टारंभं भारह-रामायणं च निवजुद्धं ।
रिसिचरिअदेवचरिअं इअ चित्तं गेहि नहु जुत्तं ॥ १३८ ॥

योगिनियों का नाटारंभ, महाभारत रामायण और राजाओं का युद्ध, ऋषियों का चरित्र और देवों का चरित्र ऐसे चित्र घर में नहीं बनाना चाहिये ॥ १३८ ॥

फलियतरु कुसुमवल्ली सरस्सई नवनिहाणजुअलच्छी ।
कलसं वद्धावणयं सुमिणावलियाइ–सुहचित्तं ॥ १३९ ॥

फलवाले वृक्ष, पुष्पों की लता, सरस्वतीदेवी, नवनिधानयुक्त लक्ष्मीदेवी, कलश, स्वस्तिकादि मांगलिक चिन्ह और अच्छे अच्छे स्वप्नों की पंक्ति ऐसे चित्र बनाना बहुत अच्छा है ॥ १३९ ॥

पुरिसुव्व गिहस्संगं हीणं अहियं न पावए सोहं ।
तम्हा सुद्धं कीरइ जेण गिहं हवइ रिद्धिकरं ॥ १४० ॥

पुरुष के अंग की तरह घर के अंग न्यून या अधिक हों तो वह घर शोभा के लायक नहीं है। इसलिये शिल्पशास्त्र में कहे अनुसार शुद्ध घर बनाना चाहिये जिससे घर ऋद्धिकारक हो ॥ १४० ॥

घर के द्वार के सामने देवों के निवास संबंधि शुभाशुभ फल—

वज्जिज्जइ जिणपिट्ठी रविईसरदिट्ठि [1]विण्हुवामभुआ ।
सव्वत्थ असुह चंडी बंभाणं चउदिसिं चयह ॥ १४१ ॥

घर के सामने जिनेश्वर की पीठ, सूर्य और महादेव की दृष्टि, विष्णु की बायीं भुजा, सब जगह चंडीदेवी और ब्रह्मा की चारों दिशा, ये सब अशुभकारक हैं, इस लिये इनको अवश्य छोड़ना चाहिये ॥ १४१ ॥

[2]अरिहंतदिट्ठिदाहिण हरपुट्ठी वामएसु कल्लाणं ।
विवरीए बहुदुक्खं परं न मग्गंतरे दोसो ॥ १४२ ॥

---

१ 'विण्हुवामो अ' इति पाठान्तरे । २ 'अरहंत' इति पाठान्तरे ।

घर के सामने अरिहंत (जिनेश्वर) की दृष्टि या दक्षिण भाग हो, तथा महादेवजी की पीठ या बायीं भुजा हो तो बहुत कल्याणकारक है। परन्तु इससे विपरीत हो तो बहुत दुःखकारक है। यदि बीच में सदर रास्ते का अंतर हो तो दोष नहीं माना जाता है ॥ १४२ ॥

गृह सम्बन्धी गुण दोष—

पढमंत-जाम-वज्जिय धयाइ-दु-ति-पहरसंभवा छाया ।
दुहहेऊ नायव्वा तम्रो पयत्तेण वज्जिज्जा ॥ १४३ ॥

पहले और अंतिम चौथे प्रहर को छोड़कर दूसरे और तीसरे प्रहर में मंदिर के ध्वजा आदि की छाया घर के ऊपर गिरती हो तो दुःखकारक जानना। इसलिये इस छाया को अवश्य छोड़ना चाहिये। अर्थात् दूसरे और तीसरे प्रहर में मंदिर के ध्वजादि की छाया जिस जगह गिरे, ऐसे स्थान पर घर नहीं बनाना चाहिये ॥ १४३ ॥

समकट्ठा विसमखणा सव्वपयारेसु इगविही कुज्जा ।
पुव्वुत्तरेण पल्लव जमावरा मूलकायव्वा ॥ १४४ ॥

सम काष्ठ और विषम खंड ये सब प्रकार से एक विधि से करना चाहिये। पूर्व उत्तर दिशा में (ईशान कोण में) पल्लव और दक्षिण पश्चिम दिशा में (नैऋत्य कोण में) मूल बनाना चाहिये ॥ १४४ ॥

सव्वेवि भारवट्टा मूलगिहे एगि सुत्ति कीरति ।
पीढ पुण एगसुत्ते उवरय-गुंजारि-अलिंदेसु ॥ १४५ ॥

मुख्य घर में सब भारवटे (जो स्तंभ के ऊपर लंबा काष्ठ रखा जाता है वह) बराबर समसूत्र में रखने चाहिये। तथा शाला गुंजारी और अलिंद में पीढे भी समसूत्र में रखने चाहिये ॥ १४५ ॥

घर में कैसी लकड़ी काम में नहीं लाना चाहिये यह बतलाते हैं—

हल-घाणय-सगडमई अरहट्ट-जंताणि कंटई तह य ।
पंचुंबरि खीरतरू एयाण य कट्ठ वज्जिज्जा ॥ १४६ ॥

हल, घानी (कोल्हू), गाड़ी, अरहट (रेहट—कूए से पानी निकालने का चरखा), कांटेवाले वृक्ष, पांच प्रकार के उदुंबर (गूलर, वड़, पीपल, पलाश और कठुंबर) और क्षीरतरु अर्थात् जिस वृक्ष को काटने से दूध निकले ऐसे वृक्ष इत्यादि की लकड़ी मकान बनवाने में नहीं लाना चाहिये ॥ १४६ ॥

बिज्जउरि केलि दाडिम जंभीरी दोहलिद्द अंबलिया ।
[1]बब्बूल-बोरमाई कणयमया तह वि नो कुज्जा ॥ १४७ ॥

बीजपूर (बीजोरा), केला, अनार, निंबू, आक, इमली, बबूल, बेर और कनकमय (पीले फूलवाले वृक्ष) इन वृक्षों की लकड़ी घर बनाने में नहीं लाना चाहिये तथा इनको घर में बोना भी नहीं चाहिये ॥ १४७ ॥

एयाणं जइ वि जडा [2]पाडिवसा उपविस्सइ अहवा ।
छाया वा जम्मि गिहे कुलनासो हवइ तत्थेव ॥ १४८ ॥

यदि ऊपरोक्त वृक्षों की जड़ घर के समीप हो या घर में प्रवेश करती हो तथा जिस घर के ऊपर उनकी छाया गिरती हो तो उस घर के कुल का नाश हो जाता है ॥ १४८ ॥

सुसुक भग्ग दड्ढा मसाण खगनिलय खीर चिरदीहा ।
निंब-बहेडय-रुक्खा न हु कट्टिज्जंति गिहहेऊ ॥ १४९ ॥

जो वृक्ष अपने आप सूखा हुआ, टूटा हुआ, जला हुआ, श्मशान के समीप का, पक्षियों के घोंसलेवाला, दूधवाला, बहुत लम्बा (खजूर आदि), नीम और बेहड़ा इत्यादि वृक्षों की लकड़ी घर बनाने के लिये नहीं काटना चाहिये ॥ १४९ ॥

वाराही संहिता में कहा है कि—

"आसन्नाः कण्टकिनो रिपुभयदाः क्षीरिणोऽर्थनाशाय ।
फलिनः प्रजाक्षयकरा दारूण्यपि वर्जयेदेषाम् ॥
छिन्द्याद् यदि न तरूंस्तान् तदन्तरे पूजितान् वपेदन्यान् ।
पुन्नागाशोकारिष्टबकुलपनसान् शमीशालौ ॥"

घर के समीप यदि कांटेवाले वृक्ष हों तो शत्रु का भय करनेवाले हैं, दूधवाले वृक्ष हों तो लक्ष्मी के नाशकारक हैं और फलवाले वृक्ष हों तो संतान के नाश कारक

---

१ 'बंबूलि' इति पाठान्तरे । २ 'पाडवसा' 'पाडोसा' इति पाठान्तरे ।

हैं। इसलिये इन वृक्षों की लकड़ी भी घर बनाने के लिये नहीं लाना चाहिये। ये वृक्ष घर में या घर के समीप हों तो काट देना चाहिये, यदि उन वृक्षों को नहीं काटें तो उनके पास पुन्नाग (नागकेसर), अशोक, अरीठा, बकुल (केसर), पनस, शमी और शाली इत्यादि सुगंधित पूज्य वृक्षों को बोने से तो उक्त दोषित वृक्षों का दोष नहीं रहता है।

पाहाणमयं थंभं पीढं पट्टं च बारउत्ताणं।
एए गेहि विरुद्धा सुहावहा धम्मठाणेसु ॥ १५० ॥

यदि पत्थर के स्तंभ, पीढे, छत पर के तख्ते और द्वारशाख ये सामान्य गृहस्थ के घर में हों तो विरुद्ध (अशुभ) हैं। परन्तु धर्मस्थान, देवमंदिर आदि में हों तो शुभकारक हैं ॥ १५० ॥

पाहाणमये कट्ठं कट्ठमए पाहणस्स थंभाइ।
पासाए य गिहे वा वज्जेयव्वा पयत्तेणं ॥ १५१ ॥

जो प्रासाद या घर पत्थर के हों, वहां लकड़ी के और काष्ठ के हों वहां पत्थर के स्तंभ पीढे आदि नहीं बनाने चाहिये। अर्थात् घर आदि पत्थर के हों तो स्तंभ आदि भी पत्थर के और लकड़ी के हों तो स्तंभ आदि भी लकड़ी के बनाने चाहिये ॥१५१॥

दूसरे मकान की लकड़ी आदि वास्तुद्रव्य नहीं लेना चाहिये, यह बतलाते हैं—

पासाय-कूव-वावी-मसाण-मठ-रायमंदिराणं च।
पाहाण-इट्ट-कट्ठा सरिसवमत्ता वि वज्जिज्जा ॥ १५२ ॥

देवमंदिर, कूए, बावड़ी, श्मशान, मठ और राजमहल इनके पत्थर ईंट या लकड़ी आदि एक तिल मात्र भी अपने घर के काम में नहीं लाना चाहिये ॥ १५२ ॥

पुनः समरांगण सूत्रधार में भी कहा है कि—

"अन्यवास्तुच्युतं द्रव्य-मन्यवास्तौ न योजयेत्।
प्रासादे न भवेत् पूजा गृहे च न वसेद् गृही ॥"

दूसरे वास्तु (मकान आदि) की गिरी हुई लकड़ी पाषाण ईंट चूना आदि द्रव्य (चीजें) दूसरे वास्तु (मकान) में काम नहीं लाना चाहिये। यदि दूसरे का वास्तु द्रव्य मंदिर में लगाया जाय तो पूजा प्रतिष्ठा नहीं होती है, और घर में लगाया जाय तो उस घर में स्वामी रहने नहीं पाता है।

सुगिहजालो उवरिमश्रो खिविज्ज नियमज्झि नन्नगेहस्स ।
पच्छा कहवि न खिप्पइ जह भणियं पुव्वसत्थम्मि ॥ १५३ ॥

अपने मकान के ऊपर की मंजिल में सुन्दर खिड़की रखना अच्छा है, परन्तु दूसरे के मकान की जो खिड़की हो उसके नीचे के भाग में आजाय ऐसी नहीं रखना चाहिये। इसी प्रकार पिछली दिवाल में कभी भी गवाक्ष (खिड़की) आदि नहीं रखना चाहिये, ऐसा प्राचीन शास्त्रों में कहा है ॥ १५३ ॥

शिल्पदीपक में कहा है कि—

"सूचीमुखं भवेच्छिद्रं पृष्ठे यदा करोति च ।
प्रासादे न भवेत् पूजा गृहे क्रीडन्ति राक्षसाः ॥"

घर के पीछे की दिवाल में सूई के मुख जितना भी छिद्र नहीं रक्खे। यदि रक्खे तो प्रासाद (मंदिर) में देव की पूजा नहीं होती है और घर में राक्षस क्रीड़ा करते हैं अर्थात् मंदिर या घर के पीछे की दिवाल में नीचे के भाग में प्रकाश के लिये गवाक्ष खिड़की आदि हो तो अच्छा नहीं है ।

ईसाणाई कोणे नयरे गामे न कीरए गेहं ।
संतलोश्राणमसुहं अंतिमजाईण विद्धिकरं ॥ १५४ ॥

नगर या गाँव के ईशान आदि कोने में घर नहीं बनाना चाहिये। यह उत्तम जनों के लिये अशुभ है, परंतु अंत्यज जातिवाले को वृद्धिकारक है ॥ १५४ ॥

शयन किस तरह करना चाहिये ?—

देवगुरु-वणिह-गोधण-संमुह चरणो न कीरए सयणं ।
उत्तरसिरं न कुज्जा न नग्गदेहा न अल्लपया ॥ १५५ ॥

देव, गुरु अग्नि, गौ और धन इनके सामने पैर रख कर, उत्तर में मस्तक रख कर, नंगे होकर और गीले पैर कभी शयन नहीं करना चाहिये ॥ १५५ ॥

धुत्तामच्चासन्ने परवत्थुदले चउप्पहे न गिहं ।
गिहदेवलपुव्विलं मूलदुवारं न चालिज्जा ॥ १५६ ॥

धूर्त और मंत्री के समीप, दूसरे की वास्तु की हुई भूमि में और चौक में घर नहीं बनाना चाहिये। विवेकविलास में कहा है कि—

"दुःखं देवकुलासन्ने गृहे हानिश्चतुष्पथे।
धूर्त्तामात्यगृहाभ्याशे स्यातां सुतधनक्षयौ॥"

घर देवमंदिर के पास हो तो दुःख, चौक में हो तो हानि, धूर्त और मंत्री के घर के पास हो तो पुत्र और धन का विनाश होता है।

घर या देवमंदिर का जीर्णोद्धार कराने की आवश्यकता हो तब इनके मुख्य द्वार को चलायमान नहीं कराना चाहिये। अर्थात् प्रथम का मुख्य द्वार जिस दिशा में जिस स्थान पर जिस माप का हो, उसी प्रकार उसी दिशा में उस स्थान पर उसी माप का रखना चाहिये॥ १५६॥

गौ बैल और घोड़े बांधने का स्थान—

गो-वसह-सगडठाणं दाहिणए वामए तुरंगाणं।
गिहबाहिरभूमीए संलग्गा सालए ठाणं॥ १५७॥

गौ, बैल और गाड़ी इनको रखने का स्थान दक्षिण ओर, तथा घोड़े का स्थान बायीं ओर घर के बाहर भूमि में बनवायी हुई शाला में रखना चाहिये॥१५७॥

गेहाउ वामदाहिण-अग्गिमभूमी गहिज्ज जइ कज्जं।
पच्छा कहवि न लिज्जइ इअ भणियं पुव्वनाणीहिं॥ १५८॥

इति श्रीपरमजैनचन्द्राङ्गज-ठक्कुर 'फेरु' विरचिते गृहवास्तुसारे
गृहलक्षणनाम प्रथमप्रकरणम्।

यदि कोई कार्य विशेष से अधिक भूमि लेना पड़े तो घर के बायीं या दक्षिण तरफ की या आगे की भूमि लेना चाहिये। किन्तु घर के पीछे की भूमि कभी भी नहीं लेना चाहिये, ऐसा पूर्व के ज्ञानी प्राचीन आचार्यों ने कहा है॥ १५८॥

बिम्बपरीक्षा प्रकरणं द्वितीयम् ।

द्वारगाथा—

इअ गिहलक्खणभावं भणिय भणामित्थ बिंबपरिमाणं ।
गुणदोसलक्खणाइं सुहासुहं जेण जाणिज्जा[1] ॥ १ ॥

प्रथम गृहलक्षण भाव को मैंने कहा । अब बिम्ब (प्रतिमा) के परिमाण को तथा इसके गुणदोष आदि लक्षणों को मैं (फेरु) कहता हूं कि जिससे शुभाशुभ जाना जाय ॥ १ ॥

मूर्त्ति के स्वरूप में वस्तु स्थिति—

छत्तत्तयउत्तारं भालकवोलाओ सवणनासाओ ।
सुहयं जिणचरणग्गे नवग्गहा जक्खजक्खिणिया ॥ २ ॥

जिनमूर्त्ति के मस्तक, कपाल, कान और नाक के उपर बाहर निकले हुए तीन छत्र का विस्तार होता है, तथा चरण के आगे नवग्रह और यक्ष यक्षिणी होना सुखदायक है ॥ २ ॥

मूर्त्ति के पत्थर में दाग और ऊंचाई का फल—

बिंबपरिवारमज्झे सेलस्स य वण्णसंकरं न सुहं ।
समअंगुलप्पमाणं न सुंदरं हवइ कइयावि[2] ॥ ३ ॥

प्रतिमा का या इसके परिकर का पाषाण वर्णसंकर अर्थात् दागवाला हो तो अच्छा नहीं । इसलिये पाषाण की परीक्षा करके बिना दाग का पत्थर मूर्त्ति बनाने के लिये लाना चाहिये ।

---

१ 'जाणेह' । २ 'कयावि' इति पाठान्तरे ।

प्रतिमा यदि सम अंगुल—दो चार छः आठ दस बारह इत्यादि बेकी अंगुल वाली बनवावें तो कभी भी अच्छी नहीं होती, इसलिये प्रतिमा विषम अंगुल—एक तीन पांच सात नव ग्यारह इत्यादि एकी अंगुलवाली बनाना चाहिये ॥ ३ ॥

आचारदिनकर में गृहबिंब लक्षण में कहा है कि—

"अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गृहबिम्बस्य लक्षणम् ।
एकाङ्गुले भवेच्छ्रेष्ठं द्व्यङ्गुलं धननाशनम् ॥ १ ॥
त्र्यङ्गुले जायते सिद्धिः पीडा स्याच्चतुरङ्गुले ।
पञ्चाङ्गुले तु वृद्धिः स्याद् उद्वेगस्तु षडङ्गुले ॥ २ ॥
सप्ताङ्गुले गवां वृद्धि-र्हानिरष्टाङ्गुले मता ।
नवाङ्गुले पुत्रवृद्धि-र्धननाशो दशाङ्गुले ॥ ३ ॥
एकादशाङ्गुलं बिम्बं सर्वकामार्थसाधनम् ।
एतत्प्रमाणमाख्यात-मत ऊर्ध्वं न कारयेत् ॥ ४ ॥"

अब घर में पूजने योग्य प्रतिमा का लक्षण कहता हूँ । एक अंगुल की प्रतिमा श्रेष्ठ, दो अंगुल की धन का नाश करनेवाली, तीन अंगुल की सिद्धि करनेवाली, चार अंगुल की दुःख देनेवाली, पांच अंगुल की धन धान्य और यश की वृद्धि करनेवाली, छः अंगुल की उद्वेग करनेवाली, सात अंगुल की गौ आदि पशुओं की वृद्धि करनेवाली, आठ अंगुल की हानि कारक, नव अंगुल की पुत्र आदि की वृद्धि करनेवाली, दश अंगुल की धन का नाश करनेवाली और ग्यारह अंगुल की प्रतिमा सब इच्छित कार्य की सिद्धि करनेवाली है । जो यह प्रमाण कहा है इससे अधिक अंगुलवाली प्रतिमा घर में पूजने के लिये नहीं रखना चाहिये ।

पाषाण और लकड़ी की परीक्षा विवेकविलास में इस प्रकार है—

"निर्मलेनारनालेन पिष्टया श्रीफलत्वचा ।
विलिप्तेऽश्मनि काष्ठे वा प्रकटं मण्डलं भवेत् ॥"

निर्मल कांजी के साथ बेलवृक्ष के फल की छाल पीसकर पत्थर पर या लकड़ी पर लेप करने से मंडल (दाग) प्रकट हो जाता है ।

"मधुभस्मगुडव्योम-कपोतसदृशप्रभैः ।
माञ्जिष्ठैररुणैः पीतैः कपिलैः श्यामलैरपि ॥
चित्रैश्च मण्डलैरेभि-रन्तर्ज्ञेया यथाक्रमम् ।
खद्योतो वालुका रक्त-भेकोऽम्बुगृहगोधिका ॥
दर्दुरः कृकलासश्च गोधाखुसर्पवृश्चिकाः ।
सन्तानविभवप्राण-राज्योच्छेदश्च तत्फलम् ॥"

जिस पत्थर या काष्ठ की प्रतिमा बनाना हो, उसी पत्थर या काष्ठ के ऊपर पूर्वोक्त लेप करने से या स्वाभाविक यदि मध के जैसा मंडल देखने में आवे तो भीतर खद्योत जानना। भस्म के जैसा मंडल देखने में आवे तो रेत, गुड़ के जैसा मंडल देखने में आवे तो भीतर लाल मेंडक. आकाशवर्ण का मंडल देखने में आवे तो पानी, कपोत (कबूतर) वर्ण का मंडल देखने में आवे तो छिपकली, मँजीठ जैसा देखने में आवे तो मेंडक, रक्त वर्ण का देखने में आवे तो शरट (गिरगिट), पीले वर्ण का देखने में आवे तो गोह, कपिलवर्ण का मंडल देखने में आवे तो उंदर, काले वर्ण का देखने में आवे तो सर्प और चित्रवर्ण का मंडल देखने में आवे तो भीतर बिच्छू है, ऐसा समझना। इस प्रकार के दागवाले पत्थर वा लकड़ी हो तो संतान, लक्ष्मी, प्राण और राज्य का विनाश कारक है।

"कीलिकाछिद्रसुपिर-त्रसजालकसन्धयः ।
मण्डलानि च गारश्च महादूषणहेतवे ॥"

पाषाण या लकड़ी में कीला, छिद्र, पोलापन, जीवों के जाले, सांध, मंडलाकार रेखा या कीचड़ हो तो बड़ा दोष माना है।

"प्रतिमायां दवरका भवेयुश्च कथञ्चन ।
सदृग्वर्णा न दुष्यन्ति वर्णान्यत्वेऽतिदूषिता ॥"

प्रतिमा के काष्ठ में या पाषाण में किसी भी प्रकार की रेखा (दाग) देखने में आवे, वह यदि अपने मूल वस्तु के रंग के जैसी हो तो दोष नहीं है, किन्तु मूल वस्तु के रंग से अन्य वर्ण की हो तो बहुत दोषवाली समझना।

कुमारमुनिकृत शिल्परत्न में नीचे लिखे अनुसार रेखाएं शुभ मानी हैं।

"नन्द्यावर्त्तवसुन्धराधरहय-श्रीवत्सकूर्मोपमाः,
शङ्खस्वस्तिकहस्तिगोवृषनिभाः शक्रेन्दुसूर्योपमाः।
छत्रस्रग्ध्वजलिंगतोरणमृग-प्रासादपद्मोपमा,
वज्राभा गरुडोपमाश्च शुभदा रेखाः कपर्दोपमाः॥"

पत्थर या लकड़ी में नंद्यावर्त्त, शेषनाग, घोड़ा, श्रीवत्स, कछुआ, शंख, स्वस्तिक, हाथी, गौ, वृषभ, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, छत्र, माला, ध्वजा, शिवलिंग, तोरण, हरिण, प्रासाद (मन्दिर), कमल, वज्र, गरुड या शिव की जटा के सदृश रेखा हो तो शुभदायक हैं।

मूर्त्ति के किस २ स्थान पर रेखा (दाग) न होने चाहिये, उसको वसुनंदिकृत प्रतिष्ठासार में कहा है कि—

"हृदये मस्तके भाले अंशयोः कर्णयोर्मुखे।
उदरे पृष्ठसंलग्ने हस्तयोः पादयोरपि॥
एतेष्वङ्गेषु सर्वेषु रेखा लाञ्छननीलिका।
बिम्बानां यत्र दृश्यन्ते त्यजेत्तानि विचक्षणः॥
अन्यस्थानेषु मध्यस्था त्रासफाटविवर्जिता।
निर्मलस्निग्धशान्ता च वर्णसारूप्यशालिनी॥"

हृदय, मस्तक, कपाल, दोनों स्कंध, दोनों कान, मुख, पेट, पृष्ठ भाग, दोनों हाथ और दोनों पग इत्यादिक प्रतिमा के किसी अंग पर या सब अंगों में नीले आदि रंगवाली रेखा हो तो उस प्रतिमा को पंडित लोग अवश्य छोड़ दें। उक्त अंगों के सिवा दूसरे अंगों पर हो तो मध्यम है। परन्तु त्रास, चीरा आदि दूषणों से रहित, स्वच्छ, चिकनी और ठंडी ऐसी अपने वर्ण सदृश रेखा हो तो दोषवाली नहीं है।

धातु रत्न काष्ठ आदि की मूर्ति के विषय में आचारदिनकर में कहा है कि—

"बिम्बं मणिमयं चन्द्र-सूर्यकान्तमणीमयम्।
सर्वं समगुणं ज्ञेयं सर्वामी रत्नजातिभिः॥"

चंद्रकान्तमणि, सूर्यकान्तमणि आदि सब रत्नमणि के जाति की प्रतिमा समस्त गुणवाली है।

"स्वर्णरूप्यताम्रमयं वाच्यं धातुमयं परम्।
कांस्यसीसवङ्गमयं कदाचिन्नैव कारयेत्॥
तत्र धातुमये रीति-मयमाद्रियते क्वचित्।
निषिद्धो मिश्रधातुः स्याद् रीतिः कैश्चिच्च गृह्यते॥"

सुवर्ण, चांदी और तांबा इन धातुओं की प्रतिमा श्रेष्ठ है। किन्तु काँसी, सीसा और कलई इन धातुओं की प्रतिमा कभी भी नहीं बनवानी चाहिये। धातुओं में पीतल की भी प्रतिमा बनाने को कहा है, किन्तु मिश्रधातु (कांसी आदि) की बनाने का निषेध किया है। किसी आचार्य ने पीतल की प्रतिमा बनवाने का कहा है।

"कार्यं दारुमयं चैत्ये श्रीपर्ण्या चन्दनेन वा।
बिल्वेन वा कदम्बेन रक्तचन्दनदारुणा॥
पियालोदुम्बराभ्यां वा क्वचिच्छिशिमयापि वा।
अन्यदारूणि सर्वाणि बिम्बकार्ये विवर्जयेत्॥
तन्मध्ये च शलाकायां बिम्बयोग्यं च यद्भवेत्।
तदेव दारु पूर्वोक्तं निवेश्यं पूतभूमिजम्॥"

चैत्यालय में काष्ठ की प्रतिमा बनवाना हो तो श्रीपर्णी, चंदन, बेल, कदंब, रक्तचंदन, पियाल, उदुम्बर (गूलर) और क्वचित् शीशम इन वृक्षों की लकड़ी प्रतिमा बनवाने के लिए उत्तम मानी है। बाकी दूसरे वृक्षों की लकड़ी वर्जनीय है। ऊपर कहे हुए वृक्षों में जो प्रतिमा बनने योग्य शाखा हो, वह दोषों से रहित और वृक्ष पवित्र भूमि में ऊगा हुआ होना चाहिये।

"अशुभस्थाननिष्पन्नं सत्रासं मशकान्वितम्।
सशिरं चैव पाषाणं बिम्बार्थं न समानयेत्॥
नीरोगं सुदृढं शुभ्रं हारिद्रं रक्तमेव वा।
कृष्णं हरिं च पाषाणं बिम्बकार्ये नियोजयेत्॥"

अपवित्र स्थान में उत्पन्न होनेवाले, चीरा, ममा या नस आदि दोषवाले, ऐसे पत्थर प्रतिमा के लिये नहीं लाने चाहिये। किन्तु दोषों से रहित मजबूत सफेद, पीला, लाल, कृष्ण या हरे वर्णवाले पत्थर प्रतिमा के लिये लाने चाहिये।

समचतुरस्र पद्मासन युक्त मूर्ति का स्वरूप—

अन्नुन्नजाणुकंधे तिरिए केसंत-अंचलंते यं।
सुत्तेगं चउरंसं पज्जंकासणसुहं बिंबं ॥ ४ ॥

दाहिने घुटने से बाँये कंधे तक एक सूत्र, बांये घुटने से दाहिने कंधे तक दूसरा सूत्र, एक घुटने से दूसरे घुटने तक तिरछा तीसरा सूत्र, और नीचे वस्त्र की किनार से कपाल के केस तक चौथा सूत्र। इस प्रकार इन चारों सूत्रों का प्रमाण बराबर हो तो यह प्रतिमा समचतुरस्र संस्थानवाली कही जाती है। ऐसी पर्यंकासन (पद्मासन) वाली प्रतिमा शुभ कारक है ॥ ४ ॥

पर्यंकासन का स्वरूप विवेकविलास में इस प्रकार है—

"वामो दक्षिणजङ्घोर्वो-रुपर्यंघ्रिः करोऽपि च।
दक्षिणो वामजङ्घोर्वो-स्तत्पर्यङ्कासनं मतम् ॥"

बैठी हुई प्रतिमा के दाहिनी जंघा और पिण्डी के ऊपर बाँया हाथ और बाँया चरण रखना चाहिए। तथा बाँयी जंघा और पिण्डी के ऊपर दाहिना चरण और दाहिना हाथ रखना चाहिये। ऐसे आसन को पर्यंकासन कहते हैं।

प्रतिमा की ऊंचाई का प्रमाण—

नवताल हवइ रूवं रूवस्स य बारसंगुलो तालो।
अंगुलअट्ठहियसयं ऊड्ढं बासीण छप्पन्नं ॥ ५ ॥

प्रतिमा की ऊंचाई नव ताल की है। प्रतिमा के ही बारह अंगुल को एक ताल कहते हैं। प्रतिमा के अंगुल के प्रमाण से कायोत्सर्ग ध्यान में खड़ी प्रतिमा नव ताल अर्थात् एक सौ आठ अंगुल मानी है और पद्मासन से बैठी प्रतिमा छप्पन अंगुल मानी है ॥ ५ ॥

खड़ी प्रतिमा के अंग विभाग—

भालं नासा वयणं गीव हियय नाहि गुज्झ जंघाइं ।
जाणु अ पिंडि अ चरणा [1]इकारस ठाण नायव्वा ॥ ६ ॥

ललाट, नासिका, मुख, गर्दन, हृदय, नाभि, गुह्य, जंघा, घुटना, पिण्डी और चरण ये ग्यारह स्थान अंगविभाग के हैं ॥ ६ ॥

अंग विभाग का मान—

चउ पंच वेय रामा रवि दिणयर सूर तह य जिण वेया ।
जिण वेय [2]भायसंखा कमेण इअ उड्ढरूवेण ॥ ७ ॥

ऊपर जो ग्यारह अंग विभाग बतलाये हैं, इनके क्रमशः चार, पांच, चार, तीन, बारह, बारह, बारह, चौवीस, चार, चौवीस और चार अंगुल का मान खड़ी प्रतिमा के है । अर्थात् ललाट चार अंगुल नासिका पांच अंगुल, मुख चार अंगुल, गरदन तीन अंगुल, गले से हृदय तक बारह अंगुल, हृदय से नाभि तक बारह अंगुल, नाभि से गुह्य भाग तक बारह अंगुल, गुह्य भाग से जानु (घुटना) तक चौवीस अंगुल, घुटना चार अंगुल, घुटने से पैर की गांठ तक चौवीस अंगुल, इससे पैर के तल तक चार अंगुल, एवं कुल एक सौ आठ अंगुल प्रमाण खड़ी प्रतिमा का मान है ॥ ७ ॥

पद्मासन से बैठी मूर्ति के अंग विभाग—

भालं नासा वयणं गीव हियय नाहि गुज्झ जाणू अ ।
आसीण-बिंबमानं पुव्वविही अंकसंखाई ॥ ८ ॥

कपाल, नासिका, मुख, गर्दन, हृदय, नाभि, गुह्य और जानु ये आठ अंग बैठी प्रतिमा के हैं, इनका मान पहले कहा है उसी तरह समझना । अर्थात् कपाल

१ पाठान्तरे—"भालं नासा वयणं थणसुत्तं नाहि गुज्झ ऊरू अ ।
जाणु अ जंघा चरणा इअ दह ठाणाणि जाणिज्जा ॥
२ पाठान्तरे—"चउ पंच वेअ तेरस चउदस दिणनाह तह य जिण वेया ।
जिण वेया भायसंखा कमेण इअ उड्ढरूवेण ॥

चार, नासिका पांच, मुख चार, गला तीन, गले से हृदय तक बारह, हृदय से नाभि तक बारह, नाभि से गुह्य (इन्द्रिय) तक बारह और जानु (घुटना) भाग चार अंगुल, इसी प्रकार कुल छप्पन अंगुल बैठी प्रतिमा[1] का मान है ॥ ८ ॥

दिगम्बराचार्य श्री वसुनंदि कृत प्रतिष्ठासार में दिगम्बर जिनमूर्ति का स्वरूप इस प्रकार है—

"तालमात्रं मुखं तत्र ग्रीवाधश्चतुरङ्गुलम् ।
कण्ठतो हृदयं यावद् अन्तरं द्वादशाङ्गुलम् ॥
तालमात्रं ततो नाभि-नाभिर्मेढ्रान्तरं मुखम् ।
मेढ्रजान्वन्तरं तज्ज्ञै-र्हस्तमात्रं प्रकीर्त्तितम् ॥
वेदाङ्गुलं भवेज्जानु-र्जानुगुल्फान्तरं करः ।
वेदाङ्गुलं समाख्यातं गुल्फपादतलान्तरम् ॥"

मुख की ऊंचाई बारह अंगुल, गला की ऊंचाई चार अंगुल, गले से हृदय तक का अन्तर बारह अंगुल, हृदय से, नाभी तक का अन्तर बारह अंगुल, नाभि से लिंग तक अन्तर बारह अंगुल, लिंग से जानु तक अन्तर चौवीस अंगुल, जानु (घुटना) की ऊंचाई चार अंगुल, जानु से गुल्फ (पैर की गांठ) तक अंतर चौवीस अंगुल और गुल्फ से पैर के तल तक अंतर चार अंगुल, इस प्रकार कायोत्सर्ग खड़ी प्रतिमा की ऊंचाई कुल एक सौ आठ[2] (१०८) अंगुल है ।

"द्वादशाङ्गुलविस्तीर्ण-मायतं द्वादशाङ्गुलम् ।
मुखं कुर्यात् स्वकेशान्तं त्रिधा तच्च यथाक्रमम् ॥
वेदाङ्गुलमायतं कुर्याद् ललाटं नासिकां मुखम् ।"

---

१. मिस्त्री जगन्नाथ अम्बाराम सोमपुरा ने अपना बृहद् शिल्पशास्त्र भाग २ में जो जिन प्रतिमा का स्वरूप बिना विचार पूर्वक लिखा है वह बिल्कुल प्रामाणिक नहीं है । ऐसे अन्य मूर्तियों के लिये भी जानना ।

२. शिल्प संहिता और रूपमण्डन में जिन प्रतिमा का मान दश ताल अर्थात् एक सौ बीस (१२०) अंगुल का भी माना है ।
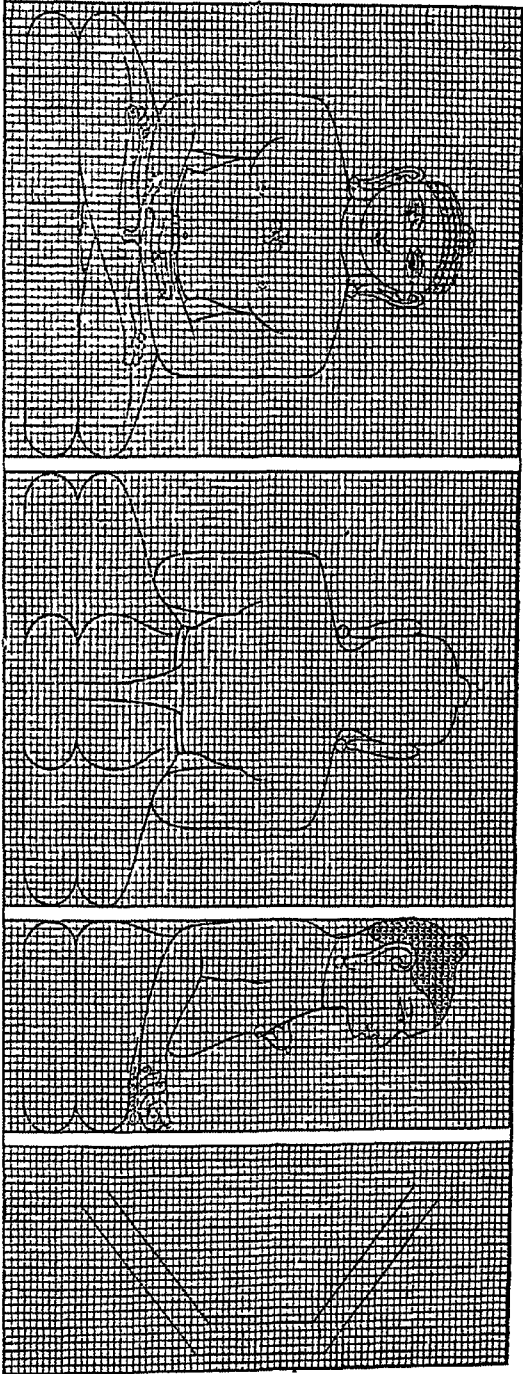
समचतुरस्र पद्मासनस्थ श्वेताम्बर जिनमूर्त्ति का मान.

कायोत्सर्गस्थ श्वे० जिनमूर्ति का मान.

कायोत्सर्गस्थ दि० जिनमूर्ति का मान.

समचतुरस्र पद्मासनस्थ दिगंबर जिनमूर्ति का मान.
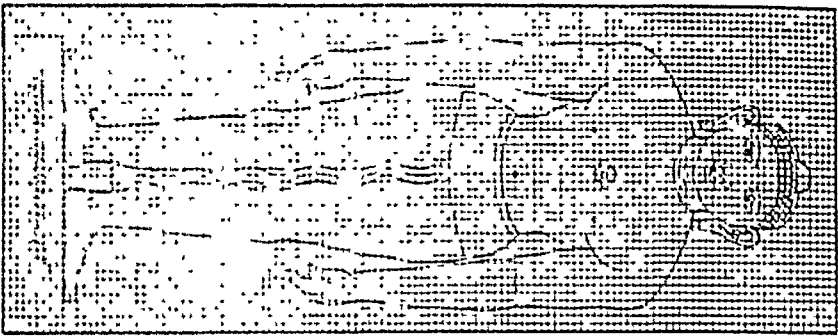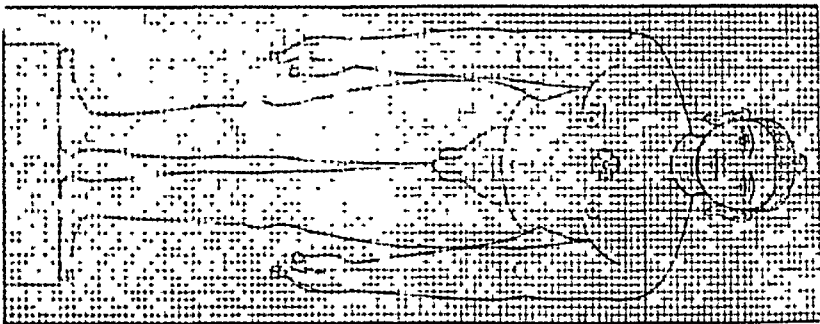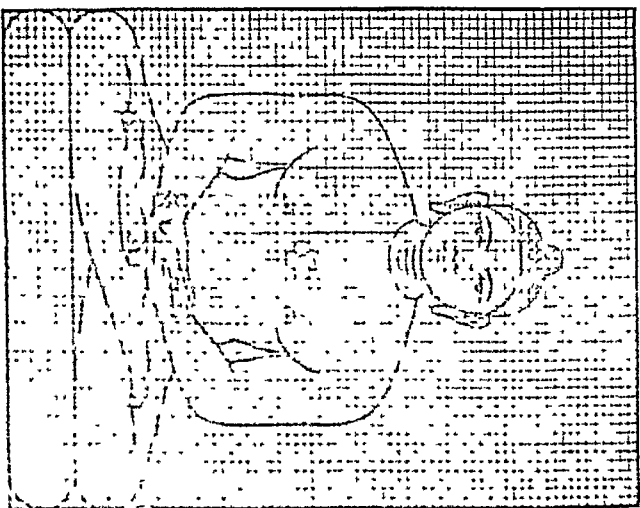
बारह अंगुल विस्तार में और बारह अंगुल लंबाई में केशांत भाग तक मुख करना चाहिये। उसमें चार अंगुल लंबा ललाट, चार अंगुल लंबी नासिका और चार अंगुल मुख दाढी तक बनाना।

"केशस्थानं जिनेन्द्रस्य प्रोक्तं पञ्चाङ्गुलायतम्।
उष्णीषं च ततो ज्ञेय-मङ्गुलद्वयमुन्नतम्॥"

जिनेश्वर का केश स्थान पांच अंगुल लंबा करना। उसमें उष्णीष (शिखा) दो अंगुल ऊंची और तीन अंगुल केश स्थान उन्नत बनाना चाहिये।

पद्मासन से बैठी प्रतिमा का स्वरूप—

"ऊर्ध्वस्थितस्य मानार्द्ध-मुत्सेधं परिकल्पयेत्।
पर्यङ्कमपि तावत्तु तिर्यगायामसंस्थितम्॥"

कायोत्सर्ग खड़ी प्रतिमा के मान से पद्मासन से बैठी प्रतिमा का मान आधा अर्थात् चौवन (५४) अंगुल जानना। पद्मासन से बैठी प्रतिमा के दोनों घुटने तक सूत्र का मान, दाहिने घुटने से बाँये कंधे तक और बांये घुटने से दाहिने कंधे तक इन दोनों तिरछे सूत्रों का मान, तथा गद्दी के ऊपर से केशांत भाग तक लंबे सूत्र का मान, इन चारों सूत्रों का मान बराबर २ होना चाहिये।

मूर्त्ति के प्रत्येक अंग विभाग का मान—

मुहकमलु चउदसंगुलु कन्नंतरि वित्थरे दहग्गीवा।
छत्तीस-उरपएसो सोलहकडि सोलतणुपिंडं॥ ९॥

दोनों कानों के अंतराल में मुख कमल का विस्तार चौदह अंगुल है। गले का विस्तार दस अंगुल, छाती प्रदेश छत्तीस अंगुल, कमर का विस्तार सोलह अंगुल और तनुपिंड (शरीर की मोटाई) सोलह अंगुल है॥ ९॥

कन्नु दह तिन्नि वित्थरि अड्ढाई हिट्ठि इक्कु आधारे।
केसंतवड्ढु समुसिरु सोयं पुण नयणरेहसमं॥ १०॥

कान का उदय दश भाग और विस्तार तीन भाग, कान की लोलक अढाई भाग नीची और एक भाग कान का आधार है। केशान्त भाग तक मस्तक के बराबर अर्थात् नयन की रेखा के समानान्तर तक ऊंचा कान बनाना चाहिये॥ १०॥

नक्कसिहागब्भाओ एगंतरि चक्खु चउरदीहत्ते।
दिवड्ढुदइ इक्कु डोलइ दुभाइ भउ हट्ठु छदीहे ॥ ११ ॥

नासिका की शिखा के मध्य गर्भसूत्र से एक २ भाग दूर आँख रखना चाहिये। आँख चार भाग लंबी और डेढ़ भाग चौड़ी, आँख की काली कीकी एक भाग, दो भाग की भृकुटी और आँख के नीचे का (कपोल) भाग छः अंगुल लंबा रखना चाहिये ॥ ११ ॥

नक्कु तिवित्थरि दुदए पिंडे नासग्गि इक्कु अद्धु सिहा।
पण भाय अहर दीहे वित्थरि एगंगुलं जाण ॥ १२ ॥

नासिका विस्तार में तीन भाग, दो भाग उदय में, नासिका का अग्र भाग एक भाग मोटा और अर्द्ध भाग की नाक की शिखा रखना चाहिये। होंठ की लंबाई पांच भाग और विस्तार एक अंगुल का जानना ॥ १२ ॥

पण-उदइ चउ-वित्थरि सिरिवच्छं बंभसुत्तमज्झम्मि।
दिवड्ढंगुलु थणवट्टं वित्थरं उंडत्ति नाहेगं ॥ १३ ॥

ब्रह्मसूत्र के मध्य भाग में छाती में पांच भाग के उदयवाला और चार भाग के विस्तारवाला श्रीवत्स करना। डेढ़ अंगुल के विस्तार वाला गोल स्तन बनाना और एक २ भाग विस्तार में गहरी नाभि करना चाहिये ॥ १३ ॥

सिरिवच्छ सिहिणकक्खंतरम्मि तह मुसल छ पण अट्ठ कमे।
मुणि-चउ-रवि-वसु-वेया कुहिणी मणिबंधु जंघ जाणु पयं॥१४॥

श्रीवत्स और स्तन का अंतर छः भाग, स्तन और काँख का अंतर पांच भाग, मूशल (स्कंध) आठ भाग, कुहनी सात अंगुल, मणिबंध चार अंगुल, जंघा बारह भाग, जानु आठ भाग और पैर की एड़ी चार भाग इस प्रकार सब का विस्तार जानना ॥ १४ ॥

थणसुत्तअहोभाए भुयबारसअंस उवरि छहि कंधं।
नाहीउ किरइ वट्टं कंधाओ केसअंताओ ॥ १५ ॥

स्तनसूत्र से नीचे के भाग में भुजा का प्रमाण बारह भाग और स्तनसूत्र से ऊपर स्कंध छः भाग समझना। नाभि स्कंध और केशांत भाग गोल बनाना चाहिये ॥ १५ ॥

कर-उयर-अंतरेगं चउ-वित्थरि नंददीहि उच्छंगं।
जलवहु दुदय तिवित्थरि कुहुणी कुच्छितरे तिन्नि ॥ १६ ॥

हाथ और पेट का अंतर एक अंगुल, चार अंगुल के विस्तारवाला और नव अंगुल लंबा ऐसा उत्संग (गोद) बनाना। पलांठी से जल निकलने के मार्ग का उदय दो अंगुल और विस्तार तीन अंगुल करना चाहिये। कुहनी और कुची का अंतर तीन अंगुल रखना चाहिये ॥ १६ ॥

बंभसुत्ताउ पिंडिय छ-गीव दह-कन्नु दु-सिहा दु-भालं।
दुचिबुक सत्त भुजोवरि भुयसंधी अट्ठपयसारा ॥ १७ ॥

ब्रह्मसूत्र (मध्यगर्भसूत्र) से पिंडी तक अवयवों के अर्द्ध भाग—छः भाग गला, दश भाग कान, दो भाग शिखा, दो भाग कपाल, दो भाग दाढ़ी, सात भाग भुजा के ऊपर की भुजसंधि और आठ भाग पैर जानना ॥ १७ ॥

जाणुअमुहसुत्ताओ चउदस सोलस अढारपइसारं।
समसुत्त-जाव-नाही पयकंकण-जाव छब्भायं ॥ १८ ॥

दोनों घुटनों के बीच में एक तिरछा सूत्र रखना और नाभि से पैर के कंकण के छः भाग तक एक सीधा समसूत्र तिरछे सूत्र तक रखना। इस समसूत्र का प्रमाण पैरों के कंकण तक चौदह, पिंडी तक सोलह और जानु तक अठारह भाग होता है। अर्थात् दोनों परस्पर घुटने तक एक तिरछा सूत्र रखा जाय तो यह नाभि से सीधे अठारह भाग दूर रहता है ॥ १८ ॥

पइसारगब्भरेहा पनरसभाएहिं चरणअंगुट्ठं।
दीहंगुलीय सोलस चउदसि भाए कणिट्ठिया ॥ १९ ॥

चरण के मध्य भाग की रेखा पंद्रह भाग अर्थात् एड़ी से मध्य अंगुली तक पंद्रह अंगुल लंबा, अंगूठे तक सोलह अंगुल और कनिष्ठ (छोटी) अंगुली तक चौदह अंगुल इस प्रकार चरण बनाना चाहिये ॥ १६ ॥

करयलगब्भाउ कमे दीहंगुलि नंदे अट्ठ पक्खिमिया ।
छच्च कणिट्ठिय भणिया गीवुदए तिन्नि नायव्वा ॥ २० ॥

करतल (हथेली) के मध्य भाग से मध्य की लंबी अंगुली तक नव अंगुल, मध्य अंगुली के दोनों तरफ की तर्जनी और अनामिका अंगुली तक आठ २ अंगुल और कनिष्ठ अंगुली तक छः अंगुल, यह हथेली का प्रमाण जानना। गले का उदय तीन भाग जानना ॥ २० ॥

मज्झिमहत्थंगुलिया पणदीहे पक्खिमी अ चउ चउरो ।
लहु-अंगुलि-भायतियं नह-इक्किक्कं ति-अंगुट्ठं ॥ २१ ॥

मध्य की बड़ी अंगुली पांच भाग लंबी, बगल की दोनों (तर्जनी और अनामिका) अंगुली चार २ भाग लंबी, छोटी अंगुली तीन भाग लंबी और अंगूठा तीन भाग लंबा करना चाहिये। सब अंगुलियों के नख एक एक भाग करना चाहिये ॥ २१ ॥

अंगुट्ठसहियकरयलवट्टं सत्तंगुलस्स वित्थारो ।
चरणं सोलसदीहे तयद्धि वित्थिन्न चउरुदए ॥ २२ ॥

अंगूठे के साथ करतलपट का विस्तार सात अंगुल करना। चरण सोलह अंगुल लंबा, आठ अंगुल चौड़ा और चार अंगुल ऊंचा (एड़ी से पैर की गांठ तक) करना ॥ २२ ॥

गीव तह कन्न अंतरि खणो य वित्थारि दिवड्ढु उदइ तिगं ।
अंचलिय अट्ठ वित्थरि गद्दिय मुह जाव दीहेण ॥ २३ ॥

गला तथा कान के अंतराल भाग का विस्तार डेढ़ अंगुल और उदय तीन अंगुल करना। अंचलिका (लंगोट) आठ भाग विस्तार में और लंबाई में गादी के मुख तक लंबा करना ॥ २३ ॥

केसंतसिहा गद्दिय पंचट्ठ कमेण अंगुलं जाण।
पउमुड्ढरेहचक्कं करचरण-विहूसियं निच्चं ॥ २४ ॥

केशांत भाग से शिखा के उदय तक पांच भाग और गादी का उदय आठ भाग जानना। पद्म (कमल) ऊर्ध्व रेखा और चक्र इत्यादि शुभ चिन्हों से हाथ और पैर दोनों सुशोभित बनाना चाहिये ॥ २४ ॥

ब्रह्मसूत्र का स्वरूप—

नक्क सिरिवच्छ नाही समगब्भे बंभसुत्तु जाणेह।
तत्तो अ सयलमाणं परिगरबिंबस्स नायव्वं ॥ २५ ॥

जो सूत्र प्रतिमा के मध्य-गर्भ भाग से लिया जाय, यह शिखा, नाक, श्रीवत्स और नाभि के बराबर मध्य में आता है, इसको ब्रह्मसूत्र कहते हैं। अब इसके बाद परिकरवाले बिंब का समस्त प्रमाण जानना ॥ २५ ॥

परिकर का स्वरूप—

सिंहासणु बिंबाओ दिवड्ढओ दीहि वित्थरे अद्धो।
पिंडेण पाउ घडिओ रूवग नव अहव सत्त जुओ ॥ २६ ॥

सिंहासन लंबाई में मूर्त्ति से डेढ़ा, विस्तार में आधा और मोटाई में पाव भाग होना चाहिये। तथा गज सिंह आदि रूपक नव या सात युक्त बनाना चाहिये ॥ २६ ॥

उभयदिसि जक्खजक्खिणि केसरि गय चमर मज्झि-चक्कधरी।
चउदस बारस दस तिय छ भाय कमि इअ भवे दीहं ॥ २७ ॥

सिंहासन में दो तरफ यक्ष और यक्षिणी अर्थात् प्रतिमा के दाहिनी ओर यक्ष और बाँयी ओर यक्षिणी, दो सिंह, दो हाथी, दो चामर धारण करनेवाले और

मध्य में चक्र को धारण करनेवाली चक्रेश्वरी देवी बनाना। इनमें प्रत्येक का नाप इस प्रकार है—चौदह २ भाग के प्रत्येक यक्ष और यक्षिणी, बारह २ भाग के दो सिंह, दश २ भाग के दो हाथी, तीन २ भाग के दो चँवर करनेवाले, और छः भाग की मध्य में चक्रेश्वरी देवी, एवं कुल ८४ भाग लम्बा सिंहासन हुआ ॥ २७ ॥

चक्कधरी गरुडंका तस्साहे धम्मचक्क-उभयदिसं ।
हरिणजुअं रमणीयं गद्दियमज्झम्मि जिणचिराहं ॥ २८ ॥

सिंहासन के मध्य में जो चक्रेश्वरी देवी है वह गरुड की सवारी करनेवाली है, उनकी चार भुजाओं में ऊपर की दोनों भुजाओं में चक्र, तथा नीचे की दाहिनी भुजा में वरदान और बाँयी भुजा में बिजोरा रखना चाहिये। इस चक्रेश्वरी देवी के नीचे एक धर्मचक्र बनाना, इस धर्मचक्र के दोनों तरफ सुन्दर एक २ हरिण बनाना और गादी के मध्य भाग में जिनेश्वर भगवान् का चिन्ह करना चाहिये ॥ २८ ॥

चउ कणइ दुन्नि छज्जइ बारस हत्थिहिं दुन्नि अह कणए ।
अड अक्खरवट्टीए एयं सीहासणस्सुदयं ॥ २९ ॥

चार भाग का कणपीठ (कणी), दो भाग का छज्जा, बारह भाग का हाथी आदि रूपक, दो भाग की कणी और आठ भाग अक्षर पट्टी, एवं कुल २८ भाग सिंहासन का उदय जानना ॥ २९ ॥

परिकर के परावाडे (बगल के भाग) का स्वरूप—

गद्दियसम-चउ-भाया तत्तो इगतीस-चमरधारी य ।
तोरणसिरं दुवालस इय उदयं पक्खवायाणं ॥ ३० ॥

प्रतिमा की गद्दी के बराबर आठ भाग चँवरधारी या काउस्सग्गीये की गादी करना, इसके ऊपर इकतीस भाग के चामर धारण करनेवाले देव या काउस्सग ध्यान में खड़ी प्रतिमा करना और इसके ऊपर तोरण के शिर तक बारह भाग रखना, एवं कुल इकावन भाग पखवाड़े का उदयमान समझना ॥ ३० ॥

सोलसभाए रूवं थुंभुलिय-समेय छहि वरालीय ।
इत्र वित्थरि बावीसं सोलसपिंडेण पखवायं ॥ ३१ ॥

सोलह भाग थंभली समेत रूप का अर्थात् दो २ भाग की दो थंभली और बारह भाग का रूप, तथा छह भाग का वरालिका (वरालक के मुख आदि की आकृति), एवं कुल पखवाड़े का विस्तार बाईस भाग और मोटाई सोलह भाग है । यह पखवाड़े का मान हुआ ॥ ३१ ॥

परिकर के ऊपर के डउला (छत्रवटा) का स्वरूप—

छत्तद्धं दसभायं पंकयनालेग तेरमालधरा ।
दो भाए थंभुलिए तह ड वंसधर-वीणधरा ॥ ३२ ॥
तिलयमज्झम्मि घंटा दुभाय थंभुलिय छच्चि मगरमुहा ।
इत्र उभयदिसे चुलसी-दीहं डउलस्स जाणेह ॥ ३३ ॥

आधे छत्र का भाग दश, कमलनाल एक भाग, माला धारण करनेवाले भाग तेरह, थंभली दो भाग, बंसी और वीणा को धारण करनेवाले या बैठी प्रतिमा का भाग आठ, तिलक के मध्य में घंटा (घूमटी), दो भाग थंभली और छः भाग मगरमुख, एवं एक तरफ के ४२ भाग और दूसरी तरफ के ४२ भाग, ये दोनों मिलकर कुल चौरासी भाग डउला का विस्तार जानना ॥ ३२।३३ ॥

चउवीसि भाइ छत्तो बारस तस्सुदइ अट्ठि संखधरो ।
छहि वेणुपत्तवल्ली एवं डउलुदये पन्नासं ॥ ३४ ॥

चौवीस भाग का छत्र, इसके ऊपर छत्रत्रय का उदय बारह भाग, इसके ऊपर आठ भाग का शंख धारण करनेवाला और इसके ऊपर छः भाग के वंशपत्र और लता, एवं कुल पचास भाग डउला का उदय जानना ॥ ३४ ॥

छत्तत्तयवित्थारं वीसंगुल निग्गमेण दह-भायं ।
भामंडलवित्थारं बावीसं अट्ठ पइसारं ॥ ३५ ॥

प्रतिमा के मस्तक पर के छत्रत्रय का विस्तार बीस अंगुल और निर्गम दस भाग करना। भामंडल का विस्तार बाईस भाग और मोटाई आठ भाग करना ॥ ३५ ॥

मालधर सोलसंसे गइंद अट्ठारसम्मि ताणुवरे ।
हरिणिंदा उभयदिसं तओ अ दुंदुहिअ संखीय ॥ ३६ ॥

दोनों तरफ माला धारण करनेवाले इंद्र सोलह २ भाग के और उनके ऊपर दोनों तरफ अठारह २ भाग के एक २ हाथी, उन हाथियों के ऊपर बैठे हुए हरिण गमेषीदेव बनाना, उनके सामने दुंदुभी बजानेवाले और मध्य में छत्र के ऊपर शंख बजानेवाला बनाना चाहिये ॥ ३६ ॥

बिंबद्धि डउलपिंडं छत्तसमेयं हवइ नायव्वं ।
थणसुत्तसमादिट्ठी चामरधारीण कायव्वा ॥ ३७ ॥

छत्रत्रय समेत डउला की मोटाई प्रतिमा से आधी जानना। पखवाड़े में चामर धारण करनेवाले की या काउस्सग ध्यानस्थ प्रतिमा की दृष्टि मूलनायक प्रतिमा के बराबर स्तनसूत्र में करना ॥ ३७ ॥

जइ हुंति पंच तित्था इमेहिं भाएहिं तेवि पुण कुज्जा ।
उस्सग्गियस्स जुअलं बिंबजुगं मूलबिंबेगं ॥ ३८ ॥

पखवाड़े में जहां दो चामर धारण करनेवाले हैं, उस ही स्थान पर दो काउस्सग ध्यानस्थ प्रतिमा तथा डउला में जहां वंश और वीणा धारण करनेवाले हैं, वहीं पर पद्मासनस्थ बैठी हुई दो प्रतिमा और एक मूलनायक, इसी प्रकार पंचतीर्थी यदि परिकर में करना हो तो पूर्वोक्त जो भाग चामर वंश और वीणा धारण करने वाले के कहे हैं, उसी भाग प्रमाण से पंचतीर्थी भी करना चाहिये ॥ ३८ ॥

प्रतिमा के शुभाशुभ लक्षण—

वरिससयाओ उड्ढं जं बिंबं उत्तमेहिं संठवियं ।
विअलंगु वि पूइज्जइ तं बिंबं निष्फलं न जओ ॥ ३९ ॥

परिकर का स्वरूप

परिकर और तोरण युक्त श्री पार्श्वनाथ की मूर्ति
जैन मन्दिर आबू।

समवसरण, जैन मन्दिर आबू.
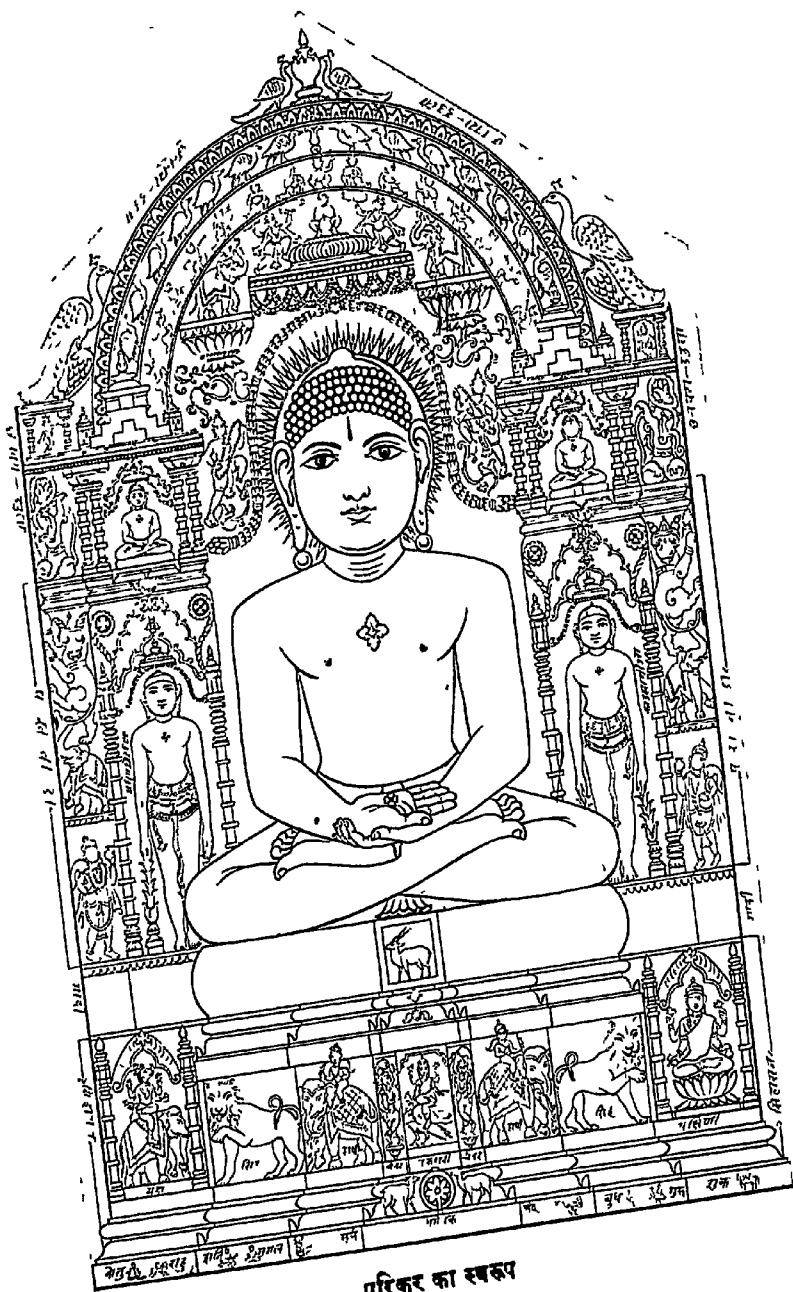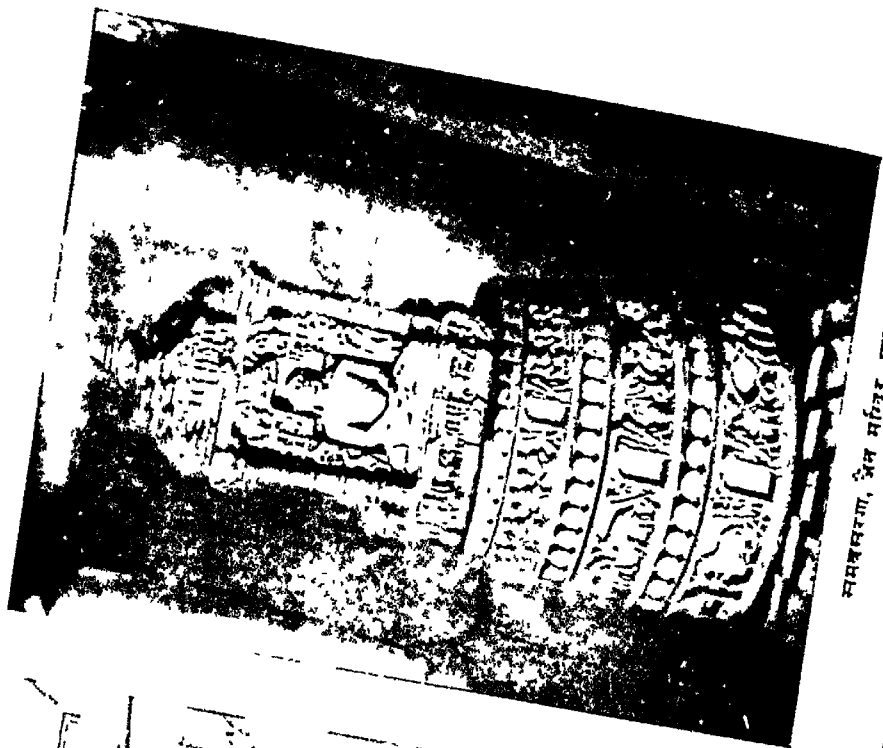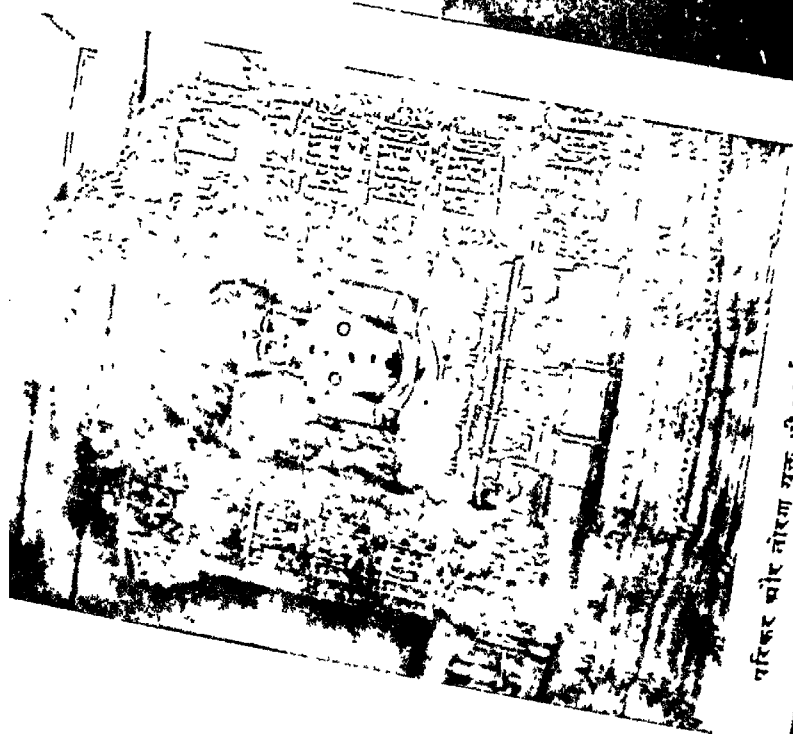
पार्श्वनाथ भगवान की खड़ी मूर्ति आबू.
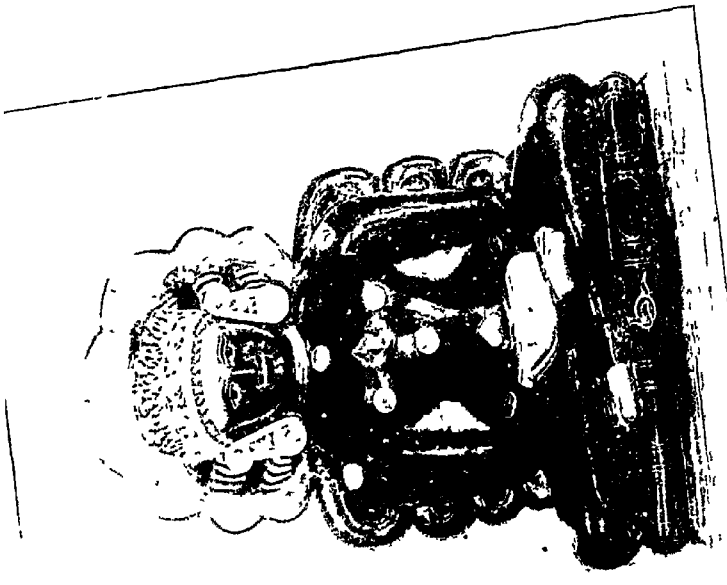
अर्द्ध पद्मासन वाली प्राचीन पार्श्वजिन मूर्ति.

कायोत्सर्गीस्थ दिगम्बर जिन मूर्ति
(लखनऊ म्युज़ियम)

गंगा पुरातत्त्वांक में चतुर्मुख जिन मूर्ति
लिखा है. परन्तु आठ मुख मालूम
होते हैं.
(लखनऊ म्युजियम)
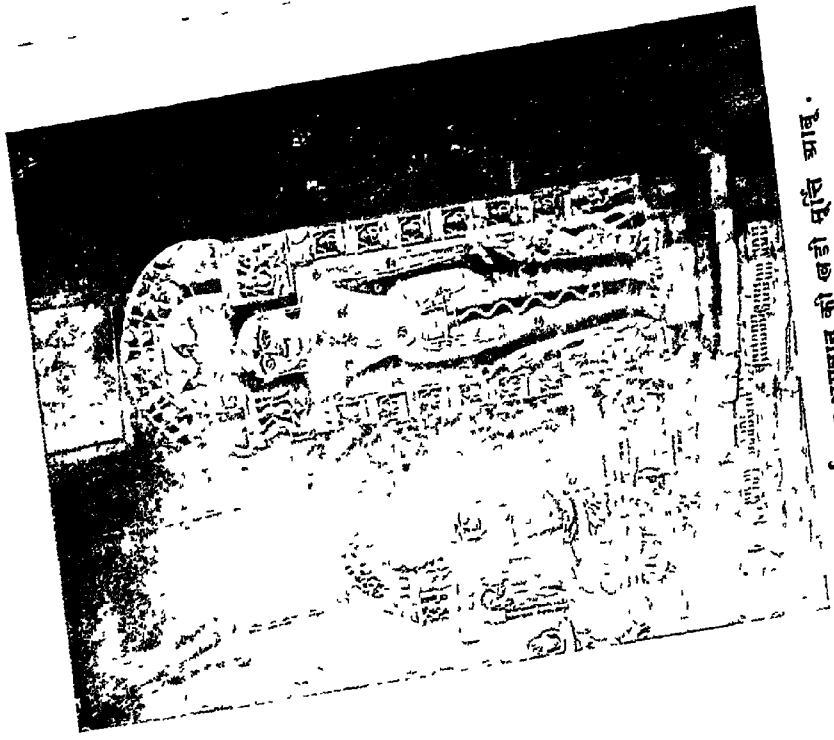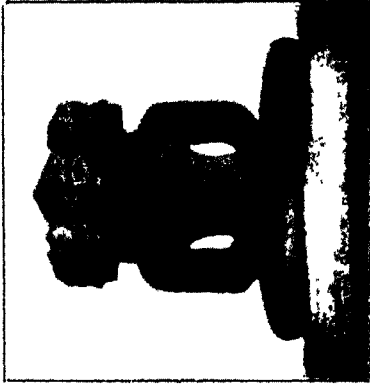
जो प्रतिमा एक सौ वर्ष के पहले उत्तम पुरुषों ने स्थापित की हुई हो, वह यदि विकलांग (बेडोल) हो या खंडित हो तो भी उस प्रतिमा को पूजना चाहिये । पूजन का फल निष्फल नहीं जाता ॥ ३६ ॥

मुह-नक्क-नयण-नाही-कडिभंगे मूलनायगं चयह ।
आहरण-वत्थ-परिगर-चिण्हायुहभंगि पूइज्जा ॥ ४० ॥

मुख, नाक, नयन, नाभि और कमर इन अंगों में से कोई अंग खंडित हो जाय तो मूलनायक रूप में स्थापित की हुई प्रतिमा का त्याग करना चाहिये । किन्तु आभरण, वस्त्र, परिकर, चिन्ह, और आयुध इनमें से किसी का भंग हो जाय तो पूजन कर सकते हैं ॥ ४० ॥

धाउलेवाइबिंबं विअलंगं पुण वि कीरए सज्जं ।
कट्ठरयणसेलमयं न पुणो सज्जं च कईयावि ॥ ४१ ॥

धातु (सोना, चांदी, पित्तल आदि) और लेप (चूना, ईंट, माटी आदि) की प्रतिमा यदि अंग हीन हो जाय तो उसी को दूसरी वार बना सकते हैं । किन्तु काष्ठ, रत्न और पत्थर की प्रतिमा यदि खंडित हो जाय तो उसी ही को कभी भी दूसरी बार नहीं बनानी चाहिये ॥ ४१ ॥

आचारदिनकर में कहा है कि—

"धातुलेप्यमयं सर्वं व्यङ्गं संस्कारमर्हति ।
काष्ठपाषाणनिष्पन्नं संस्कारार्हं पुनर्नहि ॥
प्रतिष्ठिते पुनर्बिम्बे संस्कारः स्यान्न कर्हिचित् ।
संस्कारे च कृते कार्या प्रतिष्ठा तादृशी पुनः ॥
संस्कृते तुलिते चैव दुष्टस्पृष्टे परीक्षिते ।
हृते बिम्बे च लिङ्गे च प्रतिष्ठा पुनरेव हि ॥"

धातु की प्रतिमा और ईंट, चूना, मट्टी आदि की लेपमय प्रतिमा यदि विकलांग हो जाय अर्थात् खंडित हो जाय तो वह फिर संस्कार के योग्य है । अर्थात् उस ही को

फिर बनवा सकते हैं। परन्तु लकड़ी या पत्थर की प्रतिमा खंडित हो जाय तो फिर संस्कार के योग्य नहीं है। एवं प्रतिष्ठा होने बाद कोई भी प्रतिमा का कभी संस्कार नहीं होता है, यदि कारणवश कुछ संस्कार करना पड़ा तो फिर पूर्ववत् ही प्रतिष्ठा करानी चाहियें। कहा है कि—प्रतिष्ठा होने बाद जिस मूर्ति का संस्कार करना पड़े, तोलना पड़े, दुष्ट मनुष्य का स्पर्श हो जाय, परीक्षा करनी पड़े या चोर चोरी कर ले जाय तो फिर उसी मूर्ति की पूर्ववत् ही प्रतिष्ठा करानी चाहिये।

घरमंदिर में पूजने लायक मूर्ति का स्वरूप—

पाहाणलेवकट्ठा दंतमया चित्तलिहिय जा पडिमा।
अप्परिगरमाणाहिय न सुंदरा पूयमाणगिहे ॥ ४२ ॥

पाषाण, लेप, काष्ठ, दांत और चित्राम की जो प्रतिमा है, वह यदि परिकर से रहित हो और ग्यारह अंगुल के मान से अधिक हो तो पूजन करनेवाले के घर में अच्छा नहीं ॥ ४२ ॥

परिकरवाली प्रतिमा अरिहंत की और विना परिकर की प्रतिमा सिद्ध की है। सिद्ध की प्रतिमा घरमंदिर में धातु के सिवाय पत्थर, लेप, लकड़ी, दांत या चित्राम की बनी हुई हो तो नहीं रखना चाहिये। अरिहंत की मूर्ति के लिये भी श्रीसकलचन्द्रोपाध्यायकृत प्रतिष्ठाकल्प में कहा है कि—

"मल्ली नेमी वीरो गिहभवणे सावए ण पूइज्जइ।
इगवीसं तित्थयरा संतिगरा पूइया वंदे ॥"

मल्लीनाथ, नेमनाथ और महावीर स्वामी ये तीन तीर्थंकरों की प्रतिमा श्रावक को घरमंदिर में न पूजना चाहिये। किन्तु इक्कीस तीर्थंकरों की प्रतिमा घरमंदिर में शांतिकारक पूजनीय और वंदनीय हैं।

कहा है कि—

"नेमिनाथो वीरमल्ली-नाथौ वैराग्यकारकाः।
त्रयो वै भवने स्थाप्या न गृहे शुभदायकाः ॥"

नेमनाथ स्वामी, महावीर स्वामी और मल्लीनाथ स्वामी ये तीनों तीर्थंकर वैराग्यकारक हैं, इसलिये इन तीनों को प्रासाद (मंदिर) में स्थापित करना शुभकारक हैं, किन्तु घरमंदिर में स्थापित करना शुभकारक नहीं हैं।

इक्कंगुलाइ पडिमा इक्कारस जाव गेहि पूइज्जा ।
उड्ढं पासाइ पुणो इअ भणियं पुव्वसूरीहिं ॥ ४३ ॥

घरमंदिर में एक अंगुल से ग्यारह अंगुल तक की प्रतिमा पूजना चाहिये, इससे अर्थात् ग्यारह अंगुल से अधिक बड़ी प्रतिमा प्रासाद में (मंदिर में) पूजना चाहिये ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है ॥ ४३ ॥

नह-अंगुलीअ-बाहा-नासा-पय-भंगिणु कमेण फलं ।
सत्तुभयं देसभंगं बंधण-कुलनास-दव्वक्खयं ॥ ४४ ॥

प्रतिमा के नख, अंगुली, बाहु, नासिका और चरण इनमें से कोई अंग खंडित हो जाय तो शत्रु का भय, देश का विनाश, बंधनकारक, कुल का नाश और द्रव्य का क्षय, ये क्रमशः फल होते हैं ॥ ४४ ॥

पयपीढचिण्हपरिगर-भंगे जनजाणभिच्चहाणिकमे ।
छत्तसिरिवच्छसवणे लच्छी-सुह-बंधवाण खयं ॥ ४५ ॥

पादपीठ चिन्ह और परिकर इनमें से किसी का भंग हो जाय तो क्रमशः स्वजन, वाहन और सेवक की हानि हो। छत्र, श्रीवत्स और कान इनमें से किसी का खंडन हो जाय तो लक्ष्मी, सुख और बंधन का क्षय हो ॥ ४५ ॥

बहुदुक्ख वक्कनासा हस्संगा खयंकरी य नायव्वा ।
नयणनासा कुनयणा अप्पमुहा भोगहाणिकरा ॥ ४६ ॥

यदि प्रतिमा वक्र (टेढी) नाकवाली हो तो बहुत दुःखकारक है। ह्रस्व (छोटे) अवयववाली हो तो क्षय करनेवाली जानना। खराब नेत्रवाली हो तो नेत्र का विनाशकारक जानना और छोटे मुखवाली हो तो भोग की हानिकारक जानना ॥ ४६ ॥

कडिहीणायरियहया सुयबंधवं हणइ हीणजंघा य ।
हीणासण रिद्धिहया धणक्खया हीणकरचरणा ॥ ४७ ॥

प्रतिमा यदि कटि हीन हो तो आचार्य का नाशकारक है। हीन जंघावाली हो तो पुत्र और मित्र का क्षय करे। हीन आसनवाली हो तो रिद्धि का विनाशकारक है। हाथ और चरण से हीन हो तो धन का क्षय करनेवाली जानना ॥ ४७ ॥

उत्ताणा अत्थहरा वंकग्गीवा सदेसभंगकरा ।
अहोमुहा य सचिंता विदेसगा हवइ नीचुच्चा ॥ ४८ ॥

प्रतिमा यदि ऊर्ध्व मुखवाली हो तो धन का नाशकारक है, टेढी गरदनवाली हो तो स्वदेश का विनाश करनेवाली है। अधोमुखवाली हो तो चिन्ता उत्पन्न करनेवाली और ऊंच नीच मुखवाली हो तो विदेशगमन करानेवाली जानना ॥ ४८ ॥

विसमासण-वाहिकरा रोरकरण्णायदव्वनिप्पन्ना ।
हीणाहियंगपडिमा सपक्खपरपक्खकट्ठकरा ॥ ४९ ॥

प्रतिमा यदि विषम आसनवाली हो तो व्याधि करनेवाली है। अन्याय से पैदा किये हुए धन से बनवाई गई हो तो वह प्रतिमा दुष्काल करनेवाली जानना। न्यूनाधिक अंगवाली हो तो स्वपक्ष को और परपक्ष को कष्ट देनेवाली है ॥ ४९ ॥

पडिमा रउद्द जा सा करावयं हंति सिप्पि अहियंगा ।
दुब्बलदव्वविणासा किसोअरा कुणइ दुब्भिक्खं ॥ ५० ॥

प्रतिमा यदि रौद्र (भयानक) हो तो करानेवाले का और अधिक अंग वाली हो तो शिल्पी का विनाश करे। दुर्बल अंगवाली हो तो द्रव्य का विनाश करे और पतली कमरवाली हो तो दुर्भिक्ष करे ॥ ५० ॥

उड्ढमुही धणनासा अप्पूया तिरिअदिट्ठि विन्नेया ।
अइघट्टदिट्ठि असुहा हवइ अहोदिट्ठि विग्घकरा ॥ ५१ ॥

प्रतिमा यदि ऊर्ध्व मुखवाली हो तो धन का नाश करनेवाली है। तिरछी दृष्टिवाली हो तो अपूजनीय रहे। अति गाढ दृष्टिवाली हो तो अशुभ करने वाली है और अधोदृष्टि हो तो विघ्नकारक जानना ॥ ५१ ॥

चउभवसुराण आयुह हवंति केसंत उप्परे जइ ता।
करणकरावणथप्पणहाराण प्पाणदेसहया ॥ ५२ ॥

चार निकाय के (भुवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक ये चार योनि में उत्पन्न होने वाले) देवों की मूर्ति के शस्त्र यदि केश के ऊपर तक चले गये हों तो ऐसी मूर्त्ति करने वाले, कराने वाले और स्थापन करने वाले के प्राण का और देश का विनाशकारक होती है ॥ ५२ ॥

यह सामान्यरूप से देवों के शस्त्रों के विषय में कहा है, किन्तु यह नियम सब देवों के लिये हो ऐसा मालूम नहीं पड़ता, कारण कि भैरव, भवानी, दुर्गा, काली आदि देवों के शस्त्र माथे के ऊपर तक चले गये हैं, ऐसा प्राचीन मूर्त्तियों में देखने में आता है, इसीसे मालूम होता है कि ऊपर का नियम शांत वदनवाले देवों के विषय में होगा। रौद्र प्रकृतिवाले देवों के हाथों में लोहू का खप्पर या मस्तक प्रायः करके रहते हैं, ये असुरों का संहार करते हुए देख पड़ते हैं, इसलिये शस्त्र उठायें रहने से माथे के ऊपर जा सकते हैं तो यह दोष नहीं माना होगा, परन्तु ये देव भी शान्तचित्त होकर बैठे हों ऐसी स्थिति की मूर्ति बनवाई जाय तो इनके शस्त्र उठायें न रहने से माथे ऊपर नहीं जा सकते, इसलिये उपरोक्त दोष बतलाया मालूम होता है।

चउवीसजिण नवग्गह जोइणि-चउसट्ठि वीर-बावन्ना।
चउवीसजक्खजक्खिणि दह-दिहवइ सोलस-विज्जुसुरी ॥५३॥
नवनाह सिद्ध-चुलसी हरिहर बंभिंद दाणवाईणं।
वण्णंकनामआयुह वित्थरगथाउ जाणिज्जा ॥ ५४ ॥

इति परमजैनश्रीचन्द्राङ्गज ठक्कुर 'फेरु' विरचिते वास्तुसारे
बिम्बपरीक्षाप्रकरणं द्वितीयम्।

चौवीस जिन, नवग्रह, चौंसठ योगिनी, बावन वीर, चौवीस यक्ष, चौवीस यक्षिणी, दश दिक्पाल, सोलह विद्यादेवी, नव नाथ, चौरासी सिद्ध, विष्णु, महादेव, ब्रह्मा, इन्द्र और दानव इत्यादिक देवों के वर्ण, चिह्न, नाम और आयुध आदि का विस्तार पूर्वक वर्णन अन्य * ग्रंथों से जानना चाहिये ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

अथ प्रासाद-प्रकरणं तृतीयम् ।

भणियं गिहलक्खणाइ-बिंबपरिक्खाइ-सयलगुणदोसं ।
भंपइ पासायविही संखेवेणं णिसामेह ॥ १ ॥

समस्त गुण और दोष युक्त घर के लक्षण और प्रतिमा के लक्षण मैंने पहले कहा है। अब प्रासाद (मंदिर) बनाने की विधि को संक्षेप से कहता हूँ, इसको सुनो ॥ १ ॥

पढमं गड्डाविवरं[1] जलंतं अह कक्करंतं कुणह[2] ।
कुम्मनिवेसं अट्ठं खुरस्सिला तयणु सुत्तविही ॥ २ ॥

प्रासाद करने की भूमि में इतना गहरा खात खोदना कि जल आजाय या कंकरवाली कठिन भूमि आ जाय। पीछे उस गहरे खोदे हुए खात में प्रथम मध्य में कूर्मशिला स्थापित करना, पीछे आठों दिशा में आठ खुरशिला स्थापित करना। इसके बाद सूत्रविधि करना चाहिये ॥ २ ॥

---

* उपरोक्त देवों में से २४ जिन, ९ ग्रह, २४ यक्ष, २४ यक्षिणी, १६ विद्यादेवी और १० दिक्पाल का स्वरूप इसी ग्रन्थ के परिशिष्ट में दे दिया है, बाकी के देवों का स्वरूप मेरा अनुवादित 'रूपमंडन' ग्रन्थ जो अब छपनेवाला है उसमें देखो।

१ 'गड्डाबरयं'। २ 'भारियव्वं' 'नायव्वं' इति पाठान्तरे।

कूर्मशिला का प्रमाण प्रासादमण्डन में कहा है कि—

"अर्द्धाङ्गुलो भवेत् कूर्म एकहस्ते सुरालये ।
अर्द्धाङ्गुलात् ततो वृद्धिः कार्य्या तिथिकरावधिः ॥
एकत्रिंशत्करान्तं च तदर्द्धा वृद्धिरिष्यते ।
ततोऽर्द्धापि शतार्द्धान्तं कुर्यादङ्गुलमानतः ॥
चतुर्थांशाधिका ज्येष्ठा कनिष्ठा हीनयोगतः ।
सौवर्णरौप्यजा वापि स्थाप्या पञ्चामृतेन सा ॥"

एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में आधा अंगुल की कूर्मशिला स्थापित करना। क्रमशः पंद्रह हाथ तक के विस्तारवाले प्रासाद में प्रत्येक हाथ आधे २ अंगुल की वृद्धि करना। अर्थात् दो हाथ के प्रासाद में एक अंगुल, तीन हाथ के प्रासाद में डेढ अंगुल, इसी प्रकार प्रत्येक हाथ आधा २ अंगुल बढाते हुए पंद्रह हाथ के प्रासाद में साढे सात अंगुल की कूर्म-शिला स्थापित करें। आगे सोलह हाथ से इकतीस हाथ तक पाव २ अंगुल बढाना, अर्थात् सोलह हाथ के प्रासाद में पौंणे आठ अंगुल, सत्रह हाथ के प्रासाद में आठ अंगुल, अठारह हाथ के प्रासाद में सवा आठ अंगुल, इसी प्रकार प्रत्येक हाथ पाव २ अंगुल बढ़ावें तो इकतीस हाथ के प्रासाद में साढे ग्यारह अंगुल की कूर्मशिला स्थापित करें। आगे बत्तीस हाथ से पचास हाथ तक के प्रासाद में प्रत्येक हाथ आध २ पाव अंगुल अर्थात् एक २ जव की कूर्मशिला बढाना। अर्थात् बत्तीस हाथ के प्रासाद में साढे ग्यारह अंगुल और एक जव, तेत्तीस हाथ के प्रासाद में पौंणे बारह अंगुल, इसी प्रकार पचास हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में पौंणे चौदह अंगुल और एक जव की बड़ी कूर्मशिला स्थापित करें। जिस मान की कूर्मशिला आवे उसमें अपना चौथा भाग जितना अधिक बढावे तो ज्येष्ठमान की और अपना चौथा भाग जितना घटादे तो कनिष्ठ मान की कूर्मशिला होती है। यह कूर्मशिला सुवर्ण या चांदी की बनाकर पंचामृत से स्नात्र करवाकर स्थापित करना चाहिये।

कूर्मशिला और नंद्यादिशिला का स्वरूप—
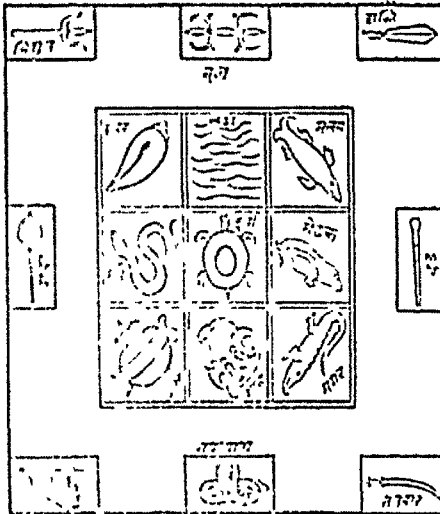
उस कूर्मशिला का स्वरूप विश्वकर्मा कृत क्षीरार्णव ग्रन्थ में बतलाया है कि कूर्मशिला के नव भाग करके प्रत्येक भाग के ऊपर पूर्वादि दिशा के सृष्टिक्रम से लहर, मच्छ, मेंडक, मगर, ग्रास, पूर्णकुंभ, सर्प और शंख ये आठ दिशाओं के भागों में और मध्य भाग में कछुवा बनाना चाहिये। कूर्मशिला को स्थापित करके पीछे उसके ऊपर एक नाली देव के सिंहासन तक रखी जाती है, उसको प्रासाद की नाभि कहते हैं।

प्रथम कूर्मशिला को मध्य में स्थापित करके पीछे ओसार में नंदा, भद्रा, जया, रिक्ता, अजिता, अपराजिता, शुक्ला, सौभागिनी और धरणी ये नव खुरशिला कूर्मशिला को प्रदक्षिणा करती हुई पूर्वादि सृष्टिक्रम से स्थापित करना चाहिये। नववीं धरणी[1] शिला को मध्य में कूर्मशिला के नीचे स्थापित करना चाहिये। इन नन्दा आदि शिलाओं के ऊपर अनुक्रम से वज्र, शक्ति, दंड, तलवार, नागपास, ध्वजा, गदा और त्रिशुल इस प्रकार दिग्पालों का शस्त्र बनाना चाहिये और धरणी शिला के ऊपर विष्णु का चक्र बनाना चाहिये।

शिला स्थापन करने का क्रम—

"ईशानादग्निकोणाद्या शिला स्थाप्या प्रदक्षिणा ।
मध्ये कूर्मशिला पश्चाद् गीतवादित्रमङ्गलैः ॥"

प्रथम मध्य में सोना या चांदी की कूर्मशिला स्थापित करके पीछे जो आठ खुर शिला हैं, ये ईशान पूर्व अग्नि आदि प्रदक्षिण क्रम से गीत वाजींत्र की मांगलिक ध्वनि पूर्वक स्थापित करें।

---

[1] कितनेक आधुनिक मिस्त्री लोग धरणी शिला को ही कूर्मशिला कहते हैं।

प्रासाद के पीठ का मान—

पासायाओ अद्धं तिहाय पायं च पीढ-उदओ अ।
तस्सद्धि निग्गमो होइ उववीढु जहिच्छमाणं तु ॥ ३ ॥

प्रासाद से आधा, तीसरा या चौथा भाग पीठ का उदय होता है। उदय से आधा पीठ का निर्गम होता है। उपपीठ का प्रमाण अपनी इच्छानुसार करना चाहिये ॥ ३ ॥

पीठ के थरों का स्वरूप—

अड्डथरं[1] फुल्लिअओ जाडमुहो कणउ तह य कयवाली।
गय-अस्स-सीह-नर-हंस-पंचथरइं भवे पीठं ॥ ४ ॥ इति पीठः ॥

अड्डथर, पुष्पकंठ, जाड्यमुख (जाड्यंबो), कणी और केवाल ये पांच थर सामान्य पीठ में अवश्य होते हैं। इनके ऊपर गजथर, अश्वथर सिंहथर, नरथर, और हंसथर इन पांच थरों में से सब या न्यूनाधिक यथाशक्ति बनाना चाहिये।

सामान्य पीठ का स्वरूप—

१ 'अड्डथरं' इति पाठान्तरे।
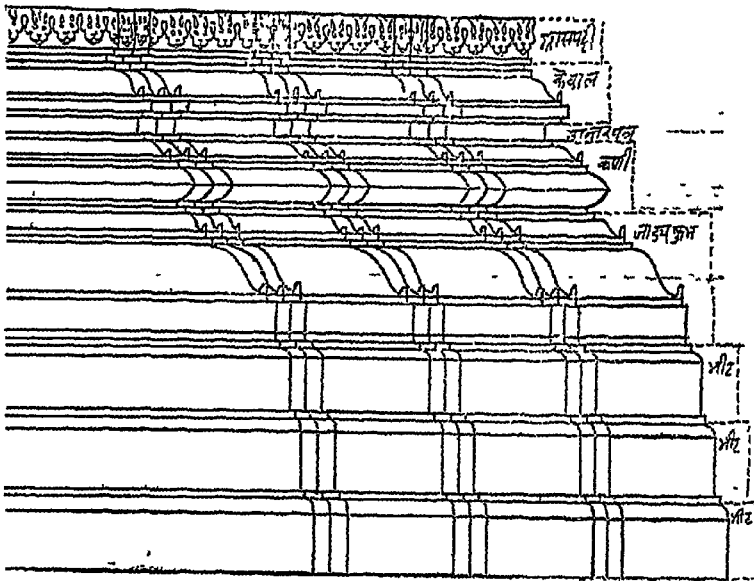
पांच थर युक्त महापीठ का स्वरूप—
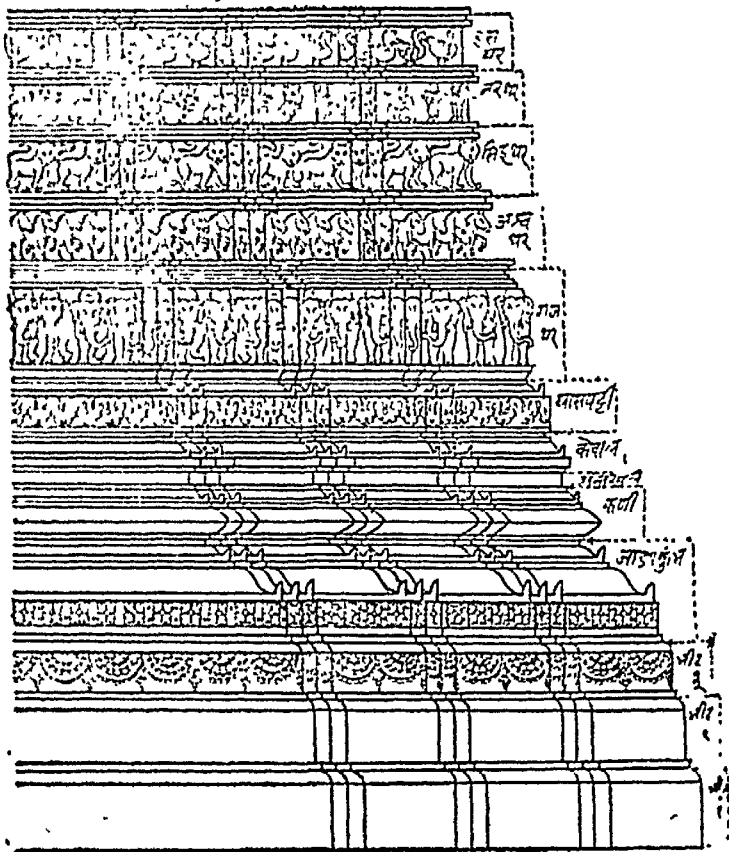
सिरीविजयो महापउमो नंदावत्तो अ लच्छितिलओ अ।
नरवेअ कमलहंसो कुंजरपासाय सत्त जिणे ॥ ५ ॥

श्रीविजय, महापद्म, नंद्यावर्त्त, लक्ष्मीतिलक, नरवेद, कमलहंस और कुंजर ये सात प्रासाद जिन भगवान के लिये उत्तम हैं ॥ ५ ॥

वहुभेया पासाया असंखा विस्सकम्मणा भणिया।
तत्तो अ केसराई पणवीस भणामि मुल्लिल्ला ॥ ६ ॥

विश्वकर्मा ने अनेक प्रकार के प्रासाद के असंख्य भेद बतलाये हैं, किन्तु इनमें अति उत्तम केशरी आदि पचीस प्रकार के प्रासादों को मैं (फेरु) कहता हूँ ॥ ६ ॥

[1]पच्चीस प्रकार के प्रासादों के नाम—

केसरि अ सव्वभद्दो सुनंदणो नंदिसालु नंदीसो ।
तह मंदिरु सिरिवच्छो अमिअब्भवु हेमवंतो अ ॥ ७ ॥
हिमकूडु कईलासो पुहविजओ इंदनीलु महनीलो ।
भूधरु अ रयणकूडो वइडुज्जो पउमरागो अ ॥ ८ ॥
वज्जंगो मुउडुज्जलु अइरावउ रायहंसु गरुडो अ ।
वसहो अ तह य मेरु एए पणवीस पासाया ॥ ९ ॥

केशरी, सर्वतोभद्र, सुनंदन, नंदिशाल, नंदीश, मन्दिर, श्रीवत्स, अमृतोद्भव, हेमवंत, हिमकूट, कैलाश, पृथ्वीजय, इंद्रनील, महानील, भूधर, रत्नकूड, वैडूर्य, पद्मराग, वज्रांक, मुकुटोज्वल, ऐरावत, राजहंस, गरुड, वृषभ और मेरु ये पच्चीस प्रासाद के क्रमशः नाम है ॥ ७-८-६ ॥

पच्चीस प्रासादों के शिखरों की संख्या—

पण अंडयाइ-सिहरे कमेण चउ वुड्ढि जा हवइ मेरु ।
मेरुपासायअंडय–संखा इगहियसयं जाण ॥ १० ॥

पहला केशरी प्रासाद के शिखर ऊपर पांच अंडक (शिखर के आसपास जो छोटे छोटे शिखर के आकार के रखे जाते हैं उनको अंडक कहते हैं, ऐसे प्रथम केशरी प्रासाद में एक शिखर और चार कोणें पर चार अंडक हैं।) पीछे क्रमशः चार २ अंडक मेरुप्रासाद तक बढ़ाते जावें तो पच्चीसवाँ मेरु प्रासाद के शिखर पर कुल एक सौ एक अंडक होते हैं ॥ १० ॥

---

१ इन पच्चीस प्रासादों का सचित्र सविस्तरवर्णन मेरा अनुवादित 'प्रासादमण्डन' ग्रन्थ जो अब छपनेवाला है उसमें देखो।

जैसे केशरी प्रासाद में शिखर समेत पांच अंडक, सर्वतोभद्र में नव, सुनंदन प्रासाद में तेरह, नंदिशाल में सत्रह, नंदीश में इक्कीस, मन्दिरप्रासाद में पच्चीस, श्रीवत्स में उनत्तीस, अमृतोद्भव में तेंतीस, हेमंत में सेंतीस, हेमकूट में इकतालीस, कैलाश में पेंतालीस, पृथ्वीजय में उन-पचास, इन्द्रनील में त्रेपन, महानील में सत्तावन, भूधर में इकसठ, रत्नकूड में पेंसठ, वैडूर्य में उनसत्तर (६९), पद्मराग में तिहत्तर, वज्रांक में सतहत्तर, मुकुटोज्वल में इक्यासी, ऐरावत में पचासी, राजहंस में नेयासी, गरुड में तिराणवे, वृषभ में सत्तानवे और मेरुप्रासाद के ऊपर एकसौ एक शिखर होते हैं।

दीपार्णवादि शिल्प ग्रंथों में चतुर्विंशति जिन आदि के प्रासाद का स्वरूप तल आदि के भेदों से जो बतलाया है, उसका सारांश इस प्रकार है—

१ कमलभूषणप्रासाद (ऋषभजिनप्रासाद)—तल भाग ३२। कोण भाग ३, कोणी भाग १, प्रतिकर्ण भाग ३, कोणी भाग १, उपरथ भाग ३, नंदी भाग १, भद्रार्द्ध भाग ४=१६+१६=३२।

२ कामदायक (अजितवल्लभ) प्रासाद—तलभाग १२। कोण २, प्रतिकर्ण २, भद्रार्द्ध २=६+६=१२।

३ शम्भववल्लभप्रासाद—तल भाग ९। कोण $१\frac{१}{२}$, कोणी $\frac{१}{४}$ प्रतिकर्ण १, नंदी $\frac{१}{४}$, भद्रार्द्ध $१\frac{१}{२}=४\frac{१}{२}+४\frac{१}{२}=९$।

४ अमृतोद्भव (अभिनंदन) प्रासाद—तल भाग ९। कोण आदि का विभाग ऊपर मुजब।

५ क्षितिभूषण (सुमतिवल्लभ) प्रासाद—तल भाग १६। कोण २, प्रतिकर्ण २, उपरथ २, भद्रार्द्ध २=८+८=१६।

६ पद्मराग (पद्मप्रभ) प्रासाद—तल भाग १६। कोण आदि का विभाग ऊपर मुजब।

७ सुपार्श्ववल्लभप्रासाद—तल भाग १०। कोण २, प्रतिकर्ण $१\frac{१}{२}$, भद्रार्द्ध $१\frac{१}{२}=५+५=१०$।

८ चंद्रप्रभप्रासाद—तल भाग ३२। कोण ५, कोणी १, प्रतिकर्ण ५, नंदी १, भद्रार्द्ध ४=१६+१६=३२।

६ पुष्पदंत प्रासाद—तल भाग १६। कोण २, प्रतिकर्ण २, उपरथ २, भद्रार्द्ध २=८+८=१६।

१० शीतलजिन प्रासाद—तल भाग २४। कोण ४, प्रतिकर्ण ३, भद्रार्द्ध ५=१२+१२=२४।

११ श्रेयांसजिन प्रासाद—तल भाग २४। कोण आदि का विभाग ऊपर मुजब।

१२ वासुपूज्य प्रासाद—तल भाग २२। कोण ४, कोणी १, प्रतिकर्ण ३, नंदी १, भद्रार्द्ध २=११+११=२२।

१३ विमलवल्लभ (विष्णुवल्लभ) प्रासाद—तल भाग २४। कोण ३, कोणी १, प्रतिकर्ण ३, नंदी १, भद्रार्द्ध ४=१२+१२=२४।

१४ अनंतजिन प्रासाद—तल भाग २०। कोण ३, प्रतिकर्ण ३, नंदी १, भद्रार्द्ध ३=१०+१०=२०।

१५ धर्मविवर्द्धन प्रासाद—तल भाग २८। कोण ४, कोणी १, प्रतिकर्ण ४ नंदी १, भद्रार्द्ध ४=१४+१४=२८।

१६ शांतिजिन प्रासाद—तल भाग १२। कोण २, कोणी $\frac{१}{२}$, प्रतिकर्ण १$\frac{१}{२}$, नंदी $\frac{१}{२}$, भद्रार्द्ध १$\frac{१}{२}$=६+६=१२।

१७ कुंथुवल्लभ प्रासाद—तल भाग ८। कोण १, प्रतिकर्ण १, नंदि $\frac{१}{२}$, भद्रार्द्ध १$\frac{१}{२}$=४+४=८।

१८ अरिनाशन प्रासाद—तल भाग ८। कोण भाग २, भद्रार्द्ध २=४+४=८

१६ मल्लीवल्लभ प्रासाद—तल भाग १२। कोण २, कोणी $\frac{१}{२}$, प्रतिकर्ण १$\frac{१}{२}$, नंदी $\frac{१}{२}$, भद्रार्द्ध १$\frac{१}{२}$=६+६=१२।

२० मनसंतुष्ट (मुनिसुव्रत) प्रासाद—तल भाग १४। कोण २, प्रतिकर्ण २, भद्रार्द्ध भाग ३=७+७=१४।

२१ नमिवल्लभ प्रासाद—तल भाग १६। कोण ३, प्रतिकर्ण २, भद्रार्द्ध भाग ३=८+८=१६।

२२ नेमिवल्लभ प्रासाद—तल भाग २२। कोण २, कोणी १, प्रतिकर्ण २, कोणी १, उपरथ २, नंदिका १, भद्रार्द्ध २=११+११=२२।

२३ पार्श्ववल्लभ प्रासाद—तल भाग २८। कोण ४, कोणी २, प्रतिकर्ण ३, नंदिका १, भद्रार्द्ध ४=१४+१४=२८।

२४ वीरविक्रम (वीरजिनवल्लभ) प्रासाद—तल भाग २४। कोण ३, कोणी १, प्रतिकर्ण ३, नंदी १, भद्रार्द्ध ४=१२+१२=२४।

प्रासाद संख्या—

एएहि उवज्जंती पासाया विविहसिहरमाणाओ।
नव सहस्स छ सय सत्तर वित्थारगंथाउ ते नेया ॥ ११ ॥

अनेक प्रकार के शिखरों के मान से नव हजार छः सौ सत्तर (९६७०) प्रासाद उत्पन्न होते हैं। उनका सविस्तर वर्णन अन्य ग्रन्थों से जानना ॥ ११ ॥

प्रासादतल की भाग संख्या—

चउरंसंमि उ खित्ते अट्ठाइ दु वुड्ढि जाव बावीसा।
भायविराडं एवं सव्वेसु वि देवभवणेसु ॥ १२ ॥

समस्त देवमन्दिर में समचौरस मूलगम्भारे के तलभाग का आठ, दश, बारह, चौदह, सोलह, अठारह, बीस या बाईस भाग करना चाहिये ॥ १२ ॥

प्रासाद का स्वरूप—

चउकूणा चउभद्दा सव्वे पासाय हुंति नियमेण।
कूणस्सुभयदिसेहिं दलाइं पडिहोंति भद्दाइं ॥ १३ ॥
पडिरह वोलिंजरया नंदीअणुकमेण ति पण सत्त दला।
पल्लवियं करणिक्कं अवस्स भद्दस्स दुण्हदिसे ॥ १४ ॥

चार कोना और चार भद्र ये समस्त प्रासादों में नियम से होते हैं। कोने के दोनों तरफ प्रतिभद्र होते हैं॥ १३॥
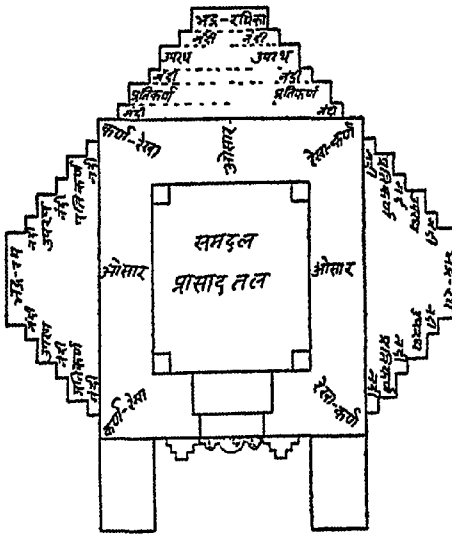
यह प्रासाद का नकशा प्रासाद मंडन और अपराजित आदि ग्रंथों के आधार से सम्पूर्ण अवयवों के के साथ दिया गया है, उसमें से इच्छानुसार बना सकते हैं।

प्रतिरथ, वोलिंजर और नंदि इनका मान क्रम से तीन, पांच और साढ़े तीन भाग समझना। भद्र की दोनों तरफ पल्लविका और कर्णिका अवश्य करके होते हैं॥ १४॥

दो भाय [1]हवइ कूणो कमेण पाऊण जा भवे णंदी।
पायं एग दुसड्ढं पल्लवियं करणिकं भद्दं ॥ १५॥

दो भाग का कोना, पीछे क्रम से पाव २ भाग न्यून नंदी तक करना। पाव भाग, एक भाग और अढ़ाई भाग ये क्रम से पल्लव, कर्णिका और भद्र का मान समझना॥ १५॥

भद्दद्धं दसभायं तस्साओ मूलनासियं एगं।
पउणाति ति य सवाति य [2]कमेण एयंपि पडिरहाईसु ॥१६॥

भद्रार्द्ध का दश भाग करना, उनमें से एक भाग प्रमाण की शुकनासिका करना। पौने तीन, तीन और सवा तीन ये क्रम से प्रतिरथ आदि का मान समझना॥ १६॥

---

१ 'कूणत्रो हुइ' इति पाठान्तरे २ 'ऽहलेहं सुकमेण नायव्वं'।

प्रासाद के अंग—

कूणं पडिरह य रहं भद्दं मुहभद्द मूलअंगाइं।
नंदी करणिक पल्लव तिलय तवंगाइ भूसणयं ॥१७॥ इति विस्तरः।

कोना, प्रतिरथ, रथ, भद्र और मुखभद्र ये प्रासाद के अंग हैं। तथा नंदी, कर्णिका, पल्लव, तिलक और तवंग आदि प्रासाद के भूषण हैं ॥ १७ ॥

मण्डोवर के तेरह थर—

खुर कुंभ कलस कइवलि मच्ची जंघा य छज्जि उरजंघा।
भरणि सिरवट्टि छज्ज य वइराडु पहारु तेर थरा ॥१८॥
इग तिय दिवड्ढु तिसु कमि पणसड्ढा इग दु दिवड्ढु दिवड्ढो अ।
दो दिवड्ढु दिवड्ढु भाया पणवीसं तेर थरमाणं ॥१९॥

खुर, कुंभ, कलश, केवाल मंची, जंघा, छजि, उरजंघा, भरणी, शिरावटी, छज्जा, वेराडु और पहारू ये मण्डोवर के उदय के तेरह थर हैं ॥ १८ ॥

उपरोक्त तेरह थरों का प्रमाण क्रमशः एक, तीन, डेढ़, डेढ़, डेढ़, साढ़े पांच, एक, दो, डेढ़, डेढ़, दो, डेढ़ और डेढ़ हैं। अर्थात् पीठ के ऊपर खुरा से लेकर छाद्य के अंत तक मंडोवर के उदय का पच्चीस भाग करना उनमें नीचे से प्रथम एक भाग का खुरा, तीन भाग का कुंभ, डेढ़ भाग का कलश, डेढ़ भाग का केवाल, डेढ़ भाग की मंची, साढ़े पांच भाग की जंघा, एक भाग की छाजली, दो भाग की उरजंघा, डेढ़ भाग की भरणी, डेढ़ भाग की शिरावटी, दो भाग का छज्जा, डेढ़ भाग का वेराडु और डेढ़ भाग का पहारु इस प्रकार थर का मान है ॥ १९ ॥

प्रासादमण्डन में नागरादि चार प्रकार के मंडोवर का स्वरूप इस प्रकार कहा है—

१—नागर जाति के मंडोवर का स्वरूप—

"वेदवेदेन्दुभक्ते तु छाद्यान्तो पीठमस्तकात् ।
खुरकः पञ्चभागः स्याद् विंशतिः कुम्भकस्तथा ॥ १ ॥
कलशोऽष्टौ द्विसार्द्धं तु कर्त्तव्यमन्तरालकम् ।
कपोतिकाष्टौ मञ्ची च कर्त्तव्या नवभागिका ॥ २ ॥
त्रिंशत्पञ्चयुता जङ्घा तिथ्यंशा उद्गमो भवेत् ।
वसुभिर्भरणी कार्या दिग्भागैश्च शिरावटी ॥ ३ ॥
अष्टांशोर्ध्वा कपोताली द्विसार्द्धमन्तरालकम् ।
छाद्यं त्रयोदशांशैश्च दशभागैर्विनिर्गमम् ॥ ४ ॥"

प्रासाद की पीठ के ऊपर से छज्जा के अन्त्य भाग तक मंडोवर के उदय का १४४ भाग करना। उनमें प्रथम नीचे से खुर पांच भाग का, कुंभ बीस भाग का, कलश आठ भाग का, अंतराल (अंतरपत्र या पुष्पकंठ) ढाई भाग का, कपोतिका (केवाल) आठ भाग की, मञ्ची नव भाग की, जंघा पैंतीस भाग की, उद्गम (उरुजंघा) पंद्रह भाग का, भरणी आठ भाग की, शिरावटी दश भाग की, कपोतालि (केवाल) आठ भाग की, अंतराल (पुष्पकंठ) ढाई भाग का और छज्जा तेरह भाग का करना। छज्जा का निर्गम (निकास) दश भाग का करना।

२—मेरु जाति के मंडोवर का स्वरूप—

"मेरुमण्डोवरे मञ्ची भरण्यूर्ध्वेऽष्टभागिका ।
पञ्चविंशतिका जंघा उद्गमश्च त्रयोदशः ॥५॥
अष्टांशा भरणी शेषं पूर्ववत् कल्पयेत् सुधीः ।"

मेरु जाति के प्रासाद के मंडोवर में मञ्ची और भरणी के ऊपर शिरावटी ये दोनों आठ २ भाग की करना। जंघा पच्चीस भाग की, उद्गम (उरुजंघा) तेरह भाग की और भरणी आठ भाग की करना। बाकी के थरों का भाग नागर जाति के मंडोवर की तरह समझना। कुल १२६ भाग मंडोवर का जानना।

३—सामान्य मंडोवर का स्वरूप—

"सप्तभागा भवेन्मञ्ची कूटं छाद्यस्य मस्तके ॥६॥
षोडशांशाः पुनर्जङ्घा भरणी सप्तभागिका ।
शिरावटी चतुर्भागा पदः स्यात् पञ्चभागिकः ॥७॥
सूर्यांशैः कुटछाद्यं च सर्वकामफलप्रदम् ।
कुंभकस्य युगांशेन स्थावराणां प्रवेशकम् ॥८॥

'सामान्य मंडोवर में मञ्ची सात भाग की करना। छज्जा के ऊपर कूट का छाद्य करना। जंघा सोलह भाग की, भरणी सात भाग की, शिरावटी चार भाग की, केवाल पांच भाग की और छज्जा बारह भाग का करना। बाकी के थरों का मान मेरु जाति के मण्डोवर के मुआफिक समझना। यह मण्डोवर सब कार्य में फलदायक है।

४—अन्य प्रकार से मंडोवर का स्वरूप—

"पीठतश्छाद्यपर्यन्तं सप्तविंशतिभाजितम् ।
द्वादशानां खुरादीनां भागसंख्या क्रमेण च ॥
स्यादेकवेदसार्द्धार्द्ध-सार्द्धसार्द्धाष्टभिस्त्रिभिः ।
सार्द्धसार्द्धार्द्धभागैश्च द्विसार्द्धमंशनिर्गमम् ॥"

पीठ के ऊपर से छज्जा के अन्त्य भाग तक मंडोवर के उदय का सत्ताईस भाग करना। उनमें खुर आदि बारह थरों की भाग संख्या क्रमशः इस प्रकार है—खुर एक भाग, कुंभ चार भाग, कलश डेढ भाग, पुष्पकंठ आधा भाग, केवाल डेढ भाग, मंची डेढ भाग, जंघा आठ भाग, ऊरुजंघा तीन भाग, भरणी डेढ भाग, केवाल डेढ भाग, पुष्पकंठ आधा भाग और छज्जा ढाई भाग, इस प्रकार कुल २७ भाग के मंडोवर का स्वरूप है। छज्जा का निर्गम एक भाग करना।

१ अहमदाबाद निवासी मिस्त्री जगन्नाथ अंबाराम सोमपुरा ने बृहद् शिल्प शास्त्र नामक एक पुस्तक महा अशुद्ध और बिना विचार पूर्वक लिखी है उसके प्रथम भाग में सामान्य मंडोवर और प्रकारान्तर मंडोवर के भाग मूल श्लोक के मुआफिक नहीं है। जैसे— 'शिरावटी चतुर्भागा' मूल है, उसका अर्थ मिस्त्रीजी ने 'शिरावटी आठ भाग की करना' लिखा है। प्रकारान्तर मंडोवर में कुंभा चार भाग का है, इसमें आप 'चार भाग का कुंभा करना किन्तु उसमें से एक भाग का खुरा करना' लिखते हैं, एवं भाषान्तर में ढाई भाग का छज्जा लिखते हैं तो नकशे में दो भाग का छज्जा बतलाते हैं, इस प्रकार सारी पुस्तक में ही कई जगह भूल कर दी है, इसके समाधान के लिये पत्र द्वारा पूछा गया था तो संतोषप्रद जवाब नहीं मिला।

प्रासाद (देवालय) का मान—

पासायस्स पमाणं गणिज्ज सहभित्तिकुंभगथराओ ।
तस्स य दस भागाओ दो दो भित्ती हि रसगब्भे ॥२०॥

बाहर के भाग से कुंभा के थर से दीवार के सहित प्रासाद का प्रमाण गिनना चाहिये। जो मान आवे इसका दश भाग करना, इनमें दो २ भाग की दीवार और छः भाग का गर्भगृह (गंभारा) करना चाहिये ॥ २० ॥

प्रासाद के उदय का प्रमाण—

इग दु ति चउ पण हत्थे पासाइ खुराउ जा पहारूथरो ।
नव सत्त पण ति एगं अंगुलजुत्तं कमेणुदयं ॥२१॥

एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद की ऊंचाई एक हाथ और नव अंगुल, दो हाथ के विस्तारवाले प्रासाद की ऊंचाई दो हाथ और सात अंगुल, तीन हाथ के विस्तारवाले प्रासाद की ऊंचाई तीन हाथ और पांच अंगुल, चार हाथ के विस्तार वाले प्रासाद की ऊंचाई चार हाथ और तीन अंगुल, पांच हाथ के विस्तार वाले प्रासाद की ऊंचाई पांच हाथ और एक अंगुल है। यह खुरा से लेकर पहारू थर तक के मंडोवर का उदयमान समझना ॥ २१ ॥

प्रासादमण्डन में भी कहा है कि—

"हस्तादिपञ्चपर्यन्तं विस्तारेणोदयः समः ।
स क्रमाद् नवसप्तेषु-रामचन्द्राङ्गुलाधिकम् ॥"

एक से पांच हाथ तक के विस्तारवाले प्रासाद की ऊंचाई विस्तार के बराबर करना अर्थात् क्रमशः एक, दो, तीन, चार और पांच हाथ करना, परन्तु इनमें क्रम से नव, सात, पांच, तीन और एक अंगुल जितना अधिक समझना।

इच्चाइ खबाणंते पडिहत्थे चउदसंगुलविहीणा ।
इअ उदयमाण भणियं अओ य उड्ढं भवे सिहरं ॥२२॥

पांच हाथ से अधिक पचास हाथ तक के विस्तारवाले प्रासाद का उदय करना हो तो प्रत्येक हाथ चौदह २ अंगुल हीन करना चाहिये अर्थात् पांच हाथ से अधिक विस्तारवाले प्रासाद की ऊंचाई करना हो तो प्रत्येक हाथ दश २ अंगुल की वृद्धि करना चाहिये। जैसे—छः हाथ के विस्तारवाले प्रासाद की ऊंचाई ५ हाथ और ११ अंगुल, सात हाथ के प्रासाद की ऊंचाई ५ हाथ और २१ अंगुल, आठ हाथ के प्रासाद की ऊंचाई ६ हाथ और ७ अंगुल, इत्यादि क्रम से पचास हाथ के विस्तारवाले प्रासाद की ऊंचाई २३ हाथ और १६ अंगुल होती है। यह प्रासाद का अर्थात् मंडोवर का उदयमान कहा। इसके ऊपर शिखर होता है ॥ २२ ॥

प्रासादमण्डन में अन्य प्रकार से कहा है—

"पञ्चादिदशपर्यन्तं त्रिंशद्यावच्छतार्द्धकम्।
हस्ते हस्ते क्रमाद् वृद्धि-र्मनुसूर्या नवाङ्गुला ॥"

पांच से दश हाथ तक के विस्तारवाले प्रासाद का उदय करना हो तो प्रत्येक हाथ चौदह २ अंगुल की, ग्यारह से तीस हाथ तक के विस्तारवाले प्रासाद का उदय करना हो तो प्रत्येक हाथ बारह २ अंगुल की और इकतीस से पचास हाथ तक के विस्तारवाले प्रासाद का उदय करना हो तो प्रत्येक हाथ नव २ अंगुल की वृद्धि करना चाहिये।

शिखरों की ऊंचाई—

दूणु पाऊणु भूमजु नागरु सतिहाउ दिवड्ढु सप्पाउ।
दाविडसिहरो दिवड्ढो सिरिवच्छो पऊण दूणो अ ॥२३॥

प्रासाद के मान से भूमज जाति के शिखर का उदय पौने दुगुणा (१ ३/४), नागर जाति के शिखर का उदय अपना तीसरा भाग युक्त (१ १/३), डेढ़ा (१ १/२), या सवाया (१ १/४)। द्राविड़ जाति के शिखर का उदय डेढा (१ १/२) और श्रीवत्स शिखर का उदय पौने दुगुना (१ ३/४) है ॥ २३ ॥

रेखामंदिर के शिखर का स्वरूप—
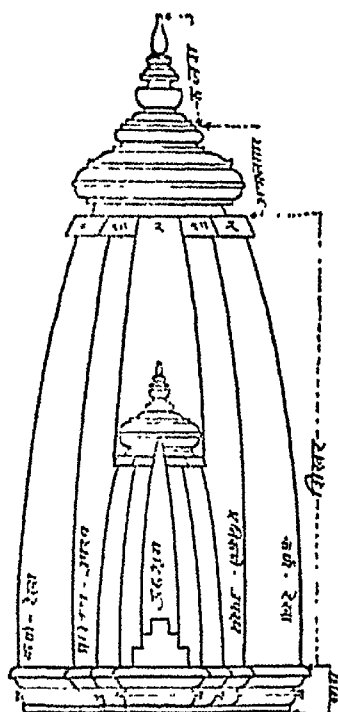
शिखर की गोलाई करने का प्रकार ऐसा है कि—दोनों कर्ण-रेखा के मध्य के विस्तार से चार गुणा व्यासार्द्ध मानकर, दोनों बिन्दु से दो वृत्त खिंचा जाय तो शिखर की गोलाई कमल की पंखडी जैसी अच्छी बनती है।

शिखरों की रचना—

> छज्जउड उवरि तिहु दिसि रहियाजुअबिंब-उवरि-उरसिहरा ।
> कूणेहिं चारि कूडा दाहिण वामग्गि [1]दो तिलया ॥२४॥

छज्जा के ऊपर तीनों दिशा में रथिका युक्त बिम्ब रखना और इसके ऊपर उरु शिखर (उरुशृंग) करना। चारों कोने के ऊपर चार कूट (खिखरा-अंडक) और इसके दाहिनी तथा बांई तरफ दो तिलक बनाना चाहिये ॥ २४ ॥

> उरसिहरकूडमज्झे सुमूलरेहा य उवरि चारिलया ।
> अंतरकूणाहिं रिसी आवलसारो अ तस्सुवरे ॥२५॥

१ 'दु दु' इति पाठान्तरे।

उरुशिखर और कूट के मध्य में प्रासाद की मूलरेखा के ऊपर चार लताएँ करना। लता के ऊपर चारों कोने में चार ऋषि रखना और इन ऋषियों के ऊपर आमलसार कलश रखना ॥ २५ ॥

आमलसार कलश का स्वरूप—

[1]पडिरह-विक्खमज्झे आमलसारस्स वित्थरद्धुदये ।
गीवंडयचंडिकामलसारिय पऊण सवाउ इक्कि्के ॥२६॥

आमलसार कलश का स्वरूप—

दोनों कर्ण के मध्य भाग में प्रतिरथ जितने आमलसार कलश का विस्तार करना और विस्तार से आधा उदय करना। जितना उदय हो उसका चार भाग करना, उनमें पौने भाग का गला, सवा भाग का अंडक (आमलसार का गोला), एक भाग की चंद्रिका और एक भाग की आमलसारिका करना ॥ २६ ॥
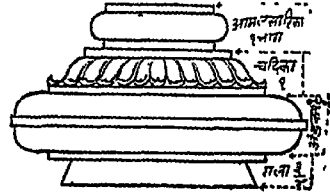
प्रासादमण्डन में कहा है कि—

"रथयोरुभयोर्मध्ये वृत्तमामलसारकम् ।
उच्छ्रयो विस्तरार्द्धेन चतुर्भागैर्विभाजितः ॥
ग्रीवा चामलसारस्तु पादोना च सपादकः ।
चन्द्रिका भागमानेन भागेनामलसारिका ॥"

दोनों रथिका के मध्य भाग जितनी आमलसार कलश की गोलाई करना, आमलसार के विस्तार से आधी ऊँचाई करना, ऊँचाई का चार भाग करके पौने भाग का गला, सवा भाग का आमलसार, एक भाग की चंद्रिका और एक भाग की आमलसारिका करना।

[1] "पडिरह विक्खमज्झे आमलसारस्स वित्थरो होइ ।
तस्सद्धेण य उदओ तं मज्झे ठाण चत्तारि ॥
गीवंडयचंडिका आमलसारिय कमेण तब्भागा ।
पाऊण सवाईउ इगेगं आमलसारस्स एस विहि ॥" इति पाठान्तरे ।

आमलसारयमज्झे चंदणखट्टासु सेयपट्टचुआ ।
तस्सुवरि कणयपुरिसं घयपूरतओ य वरकलसो ॥२७॥

आमलसार कलश के मध्य भाग में सफेद रेशम के वस्त्र से ढका हुआ चंदन का पलंग रखना। इस पलंग के ऊपर [1]कनकपुरुष (सोने का प्रासाद पुरुष) रखना और इसके पास घी से भरा हुआ तांबे का कलश रखना, यह क्रिया शुभ दिन में करना चाहिये ॥ २७ ॥

पाहणकट्ठिट्टमओ जारिसु पासाउ तारिसो कलसो ।
जहसत्ति पइट्ठ पच्छा कणयमओ रयणजडिओ अ ॥२८॥

पत्थर, लकड़ी या ईंट उनमें से जिसका प्रासाद बना हो, उसी का ही कलश भी बनाना चाहिये। अर्थात् पत्थर का प्रासाद बना हो तो कलश भी पत्थर का, लकड़ी का प्रासाद हो तो कलश भी लकड़ी का और ईंट का प्रासाद बना हो तो कलश भी ईंट का करना चाहिये। परन्तु प्रतिष्ठा होने के बाद अपनी शक्ति के अनुसार सोने का या रत्न जड़ित का भी करवा सकते हैं ॥ २८ ॥

शुकनास का मान—

छज्जाउ जाव कंधं इगवीस विभाग करिवि तत्तो अ ।
नवआइ जावतेरस दीहुदये हवइ सउणासो ॥२९॥

छज्जा से स्कंध तक के ऊंचाई का इकीस भाग करना, उनमें से नव, दश, ग्यारह, बारह व तेरह भाग बराबर लंबा उदय में शुकनास करना ॥ २९ ॥

उदयद्धि विहिय पिंडो पासायनिलाडतिकं च तिलउच्च ।
तस्सुवरि हवइ सीहो मंडपकलसोदयस्स समा ॥ ३० ॥

उदय से आधा शुकनास का पिंड (मोटाई) करना। यह प्रासाद के ललाटत्रिकका तिलक माना जाता है। उसके ऊपर सिंह मंडप के कलश का उदय बराबर रखना। अर्थात् मंडप की ऊंचाई शुकनास के सिंह से अधिक नहीं होनी चाहिये ॥३०॥

[1] कनकपुरुष का मान आगे की ३३ वीं गाथा में कहा है।

समरांगणसूत्रधार में कहा है कि—

"शुकनासोच्छ्रितेरूर्ध्वं न कार्या मण्डपोच्छ्रितिः।"

शुकनास की ऊंचाई से मंडप की ऊंचाई अधिक नहीं करना चाहिये, किन्तु बराबर या नीची करना चाहिये।

प्रासादमण्डन में भी कहा है कि—

"शुकनाससमा घण्टा न्यूना श्रेष्ठा न चाधिका।"

शुकनास के बराबर मडंप का कलश करना, या नीचा करना अच्छा है, परन्तु ऊंचा रखना अच्छा नहीं।

मंदिर में लकड़ी कैसी वापरना—

सुहयं इग दारुमयं पासायं कलस-दंड-मक्कडिअं।
सुहकट्ठ सुदिढ कीरं सीसिमखयरंजणं महुवं ॥३१॥

प्रासाद (मन्दिर), कलश, ध्वजादंड और ध्वजादंड की पाटली ये सब एक ही जात की लकड़ी के बनायें जाय तो सुखकारक होते हैं। साग, केगर, शीसम खेर, अंजन और महुआ इन वृक्षों की लकड़ी प्रासादिक बनाने के लिये शुभ मानी है ॥ ३१ ॥

नीरतलदलविभत्ती भद्दविणा चउरसं च पासायं।
फंसायारं सिहरं करंति जे ते न नंदंति ॥३२॥

पानी के तल तक जिस प्रासाद का खात खोदा हो, ऐसा समचौरस प्रासाद यदि भद्र रहित हो, तथा फांसी के आकार के शिखरवाला हो, ऐसा मन्दिर जो मनुष्य करावे वह मनुष्य सुखपूर्वक आनन्द में नहीं रहता ॥ ३२ ॥

कनकपुरुष का मान—

अद्धंगुलाइ कमसो पायंगुलवुड्ढिकणयपुरिसो अ।
कीरइ धुव पासाए इगहत्थाई खबाणंते ॥ ३३ ॥

एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में कनकपुरुष आधा अंगुल का करना चाहिये। पीछे प्रत्येक हाथ पाव २ अंगुल बड़ा बनाना चाहिये। अर्थात् दो हाथ के प्रासाद में पौना अंगुल, तीन हाथ के प्रासाद में एक अंगुल, चार हाथ के प्रासाद में सवा अंगुल इत्यादिक क्रम से पचास हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में पौने तेरह अंगुल का कनकपुरुष बनाना चाहिये ॥ ३३ ॥

ध्वजादंड का प्रमाण—

इग हत्थे पासाए दंडं पउणंगुलं भवे पिंडं।
अद्धंगुलवुड्ढिकमे जाकरपन्नास-कन्नुदए ॥ ३४ ॥
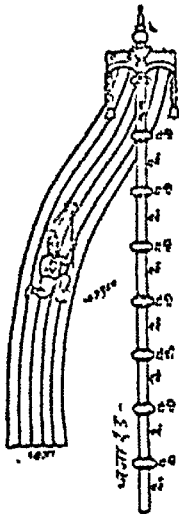
एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में ध्वजादंड पौने अंगुल का मोटा बनाना चाहिये। पीछे प्रत्येक हाथ आधे २ अंगुल क्रम से बढ़ाना चाहिये। अर्थात् दो हाथ के प्रासाद में सवा अंगुल का, तीन हाथ के प्रासाद में पौने दो अंगुल का, चार हाथ के प्रासाद में सवा दो अंगुल का, पांच हाथ के प्रासाद में पौने तीन अंगुल का, इसी क्रम से पचास हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में सवा पचीस अंगुल का मोटा ध्वजादंड करना चाहिये। तथा कर्ण के उदय जितना लंबा ध्वजादंड करना चाहिये ॥ ३४ ॥

प्रासादमण्डन में कहा है कि—

"एकहस्ते तु प्रासादे दण्डः पादोनमङ्गुलम्।
कुर्यादर्द्धाङ्गुला वृद्धि-र्यावत् पञ्चाशद्धस्तकम्"

एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में पौने अंगुल का मोटा ध्वजादंड करना, पीछे पचास हाथ तक प्रत्येक हाथ आधे २ अंगुल मोटाई में बढ़ाना चाहिये।

ध्वजादंड की ऊंचाई इस प्रकार है—

"दण्डः कार्यस्तृतीयांशः शिलातः कलशावधिम् ।
मध्योऽष्टांशेन हीनांशो ज्येष्ठात् पादोनः कन्यसः ॥"

खुरशिला से कलश तक ऊंचाई के तीन भाग करना, उनमें से एक तीसरा भाग जितना लंबा ध्वजादंड करना, यह ज्येष्ठ मान का ध्वजादंड होता है। यदि ज्येष्ठ मान का आठवां भाग ज्येष्ठ मान में से कम करें तो मध्यम मान का और चौथा भाग कम करें तो कनिष्ठ मान का ध्वजादंड होता है।

प्रकारान्तर से ध्वजादण्ड का मान—

"प्रासादव्यासमानेन दण्डो ज्येष्ठः प्रकीर्त्तितः ।
मध्यो हीनो दशांशेन पञ्चमांशेन कन्यसः ॥"

प्रासाद के विस्तार जितना लंबा ध्वजादंड करें तो यह ज्येष्ठमान का होता है। यही ज्येष्ठमान के दंड का दशवां भाग ज्येष्ठमान में से घटा दें तो मध्यम मान का और पांचवां भाग घटा दें तो कनिष्ठमान का ध्वजादंड होता है।

ध्वजादण्ड का पर्व (खंड) और चूड़ी का प्रमाण—

"पर्वभिर्विषमैः कार्यः समग्रन्थी सुखावहः ।"

दंड में पर्व (खंड) विषम रखें और गांठ (चूड़ी) सम रखें तो यह सुखकारक है।

ध्वजादंड के ऊपर की पाटली का मान—

"दण्डदैर्घ्यषडांशेन मर्कट्यर्द्धेन विस्तृता ।
अर्द्धचन्द्राकृतिः पार्श्वे घण्टोऽर्द्धे कलशस्तथा ॥"

दंड की लंबाई का छट्ठा[1] भाग जितनी लंबी मर्कटी (पाटली) करना और लंबाई से आधा विस्तार करना। पाटली के मुख भाग में दो अर्ध चन्द्र का आकार करना। दो तरफ घंटी लगाना और ऊपर मध्य में कलश रखना। अर्द्ध चन्द्र के आकारवाला भाग पाटली का मुख माना है। यह पाटली का मुख और प्रासाद का मुख एक दिशा में रखना और मुख के पिछाड़ी में ध्वजा लगानी चाहिये।

१ इसी प्रकरण की ४१ वीं गाथा में मर्कटी (पाटली) का मान प्रासाद का आठवां भाग माना है।

ध्वजा का मान—

णिप्पन्ने वरसिहरे धयहीणसुरालयम्मि असुरठिई ।
तेण धयं धुव कीरइ दंडसमा मुक्खसुक्खकरा ॥३५॥

सम्पूर्ण बने हुए देवमन्दिर के अच्छे शिखर पर ध्वजा न हो तो उस देव मन्दिर में असुरों का निवास होता है। इसलिये मोक्ष के सुख को करनेवाली दंड के बराबर लम्बी ध्वजा अवश्य करना चाहिये ॥३५॥

प्रासादमण्डन में कहा है कि—

"ध्वजा दण्डप्रमाणेन दैर्घ्योऽष्टांशेन विस्तरा ।
नानावर्णा विचित्राद्या त्रिपञ्चाग्रा शिखोत्तमा ॥"

ध्वजा के वस्त्र दंड की लम्बाई जितना लम्बा और दंड का आठवां भाग जितना चौड़ा अनेक प्रकार के वर्णों से सुशोभित करना, तथा ध्वजा के अंतिम भाग में तीन या पांच शिखा करना, यह उत्तम ध्वजा मानी गई है।

द्वार मान—

[1]पासायस्स दुवारं [2]हत्थंपइ सोलसंगुलं उदए ।
[3]जा हत्थ चउक्का हुंति तिगदुग वुड्ढि कमाडपन्नासं ॥३६॥

प्रासाद के द्वार का उदय प्रत्येक हाथ सोलह अंगुल का करना, यह वृद्धि चार हाथ तक के विस्तारवाले प्रासाद तक समझना अर्थात् चार हाथ के विस्तार वाले प्रासाद के द्वार का उदय चौंसठ अंगुल समझना। पीछे क्रमशः तीन २ और दो २ अंगुल की वृद्धि पचास हाथ तक करना चाहिये ॥३६॥

प्रासादमंडन में नागरादि प्रासाद द्वार का मान इसी प्रकार कहा है—

"एकहस्ते तु प्रासादे द्वारं स्यात् षोडशांगुलम् ।
षोडशांगुलिका वृद्धि-र्यावद्धस्तचतुष्टयम् ॥

1 'पासायगब्भे' । 2 'हत्थपइ' । 3 'नवपंचम विग्धारे अहवा पिहुलाव ऊदये' । इति पाठान्तरे ।

अष्टहस्तान्तकं यावद् दीर्घे वृद्धिर्गुणाङ्गुला ।
द्वयङ्गुला प्रतिहस्तं च यावद्धस्तशतार्द्धकम् ॥
यानवाहनपर्यङ्कं द्वारं प्रासादसद्मनाम् ।
दैर्घ्यार्द्धेन पृथुत्वे स्याच्छोभनं तत्कलाधिकम् ॥"

एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में सोलह अंगुल द्वार का उदय करना। पीछे चार हाथ तक सोलह २ अंगुल की वृद्धि, पांच से आठ हाथ तक तीन २ अंगुल की वृद्धि और आठ से पचास हाथ तक दो २ अंगुल की वृद्धि द्वार के उदय में करना चाहिये। पालकी, रथ, गाड़ी, पलंग (मांचा), मंदिर का द्वार और घर का द्वार ये सब लंबाई से आधा चौड़ा करना, यदि चौड़ाई में बढ़ाना हो तो लंबाई का सोलहवां भाग बढाना।

उदयद्धिवित्थरे बारे आयदोसविसुद्धए ।
अंगुलं सड्ढमद्धं वा [1]हाणि वुड्ढी न दूसए ॥ ३७ ॥

उदय से आधा द्वार का विस्तार करना। द्वार में ध्वजादिक आय की शुद्धि के लिये द्वार के उदय में आधा या डेढ अंगुल न्यूनाधिक किया जाय तो दोष नहीं है ॥ ३७ ॥

निलाडि बारउत्ते बिंबं साहेहि हिट्ठि पडिहारा ।
कूणेहिं अट्ठदिसिवइ जंघापडिरहइ पिक्खणयं ॥ ३८ ॥

दरवाजे के ललाट भाग की ऊंचाई में बिंब (मूर्त्ति) को, द्वारशाख में नीचे प्रतिहारी, कोने में आठ दिग्पाल और मंडोवर के जंघा के थर में तथा प्रतिरथ में नाटक करती हुई पुतलिएँ रखना चाहिये ॥ ३८ ॥

बिम्बमान—

पासायतुरियभागप्पमाणबिंबं स उत्तमं भणियं ।
रावट्टरयणविद्दुम-धाउमय जहिच्छमाणवरं ॥ ३९ ॥

---

1 'कुज्झा हिणं तहाहियं' । इति पाठान्तरे ।

प्रासाद के विस्तार का चौथा भाग प्रमाण जो प्रतिमा हो वह उत्तम प्रतिमा कहा है। किन्तु राजपट्ट (स्फटिक), रत्न, प्रवाल या सुवर्णादिक धातु की प्रतिमा का मान अपनी इच्छानुसार कर सकते हैं ॥ ३९ ॥

विवेकविलास में कहा है कि—

"प्रासादतुर्यभागस्य समाना प्रतिमा मता ।
उत्तमायकृते सा तु कार्यैकोनाधिकाङ्गुला ॥
अथवा स्वदशांशेन हीनस्याप्यधिकस्य वा ।
कार्या प्रासादपादस्य शिल्पिभिः प्रतिमा समा ॥"

प्रासाद के चौथे भाग के प्रमाण की प्रतिमा करना, यह उत्तम लाभ की प्राप्ति के लिये है, परन्तु चौथे भाग में एक अंगुल न्यून या अधिक रखना चाहिये। या प्रासाद के चौथे भाग का दश भाग करना, उनमें से एक भाग चौथे भाग में हीन करके या बढ़ा करके उतने प्रमाण की प्रतिमा शिल्पकारों को बनानी चाहिये।

वसुनंदिकृत प्रतिष्ठासार में कहा है कि—

"द्वारस्याष्टांशहीनः स्यात् सपीठः प्रतिमोच्छ्रयः ।
तत् त्रिभागो भवेत् पीठं द्वौ भागौ प्रतिमोच्छ्रयः ॥"

द्वार का आठ भाग करना, उनमें से ऊपर के आठवें भाग को छोड़कर बाकी सात भाग प्रमाण पीठिका सहित प्रतिमा की ऊंचाई होनी चाहिये। सात भाग का तीन भाग करना, उनमें से एक भाग की पीठिका (पबासन) और दो भाग की प्रतिमा की [1]ऊंचाई करना चाहिये।

प्रासादमण्डन में कहा है कि—

"तृतीयांशेन गर्भस्य प्रासादे प्रतिमोत्तमा ।
मध्यमा स्वदशांशोना पञ्चांशोना कनीयसी ॥"

प्रासाद के गर्भगृह का तीसरा भाग प्रमाण प्रतिमा बनाना उत्तम है। प्रतिमा का दशवां भाग प्रतिमा में घटाकर उतने प्रमाण की प्रतिमा करें तो मध्यममान की, और पांचवां भाग न्यून प्रतिमा करें तो कनिष्ठमान की प्रतिमा समझना।

१ यह ऊंचाई खड़ी मूर्ति के लिये है, यदि बैठी मूर्ति हो तो दो भाग का पबासन और एक भाग की मूर्ति रखना चाहिये।

प्रतिमा की दृष्टि का प्रमाण—

दसभायकयदुवारं[1] उदुंबर-उत्तरंग-मज्झेण।
पढमंसि सिवदिट्ठी बीए सिवसत्ति जाणेह ॥ ४० ॥

मन्दिर के मुख्य द्वार के देहली और उत्तरंग के मध्य भाग का दश भाग करना। उनमें नीचे के प्रथम भाग में महादेव की दृष्टि, दूसरे भाग में शिवशक्ति (पार्वती) की दृष्टि रखना चाहिये ॥ ४० ॥

सयणासणसुर-तईए लच्छीनारायणं चउत्थे अ।
वाराहं पंचमए छट्ठंसे लेवचित्तस्स ॥ ४१ ॥

तृतीय भाग में शेषशायी (विष्णु) की दृष्टि, चौथे भाग में लक्ष्मीनारायण की दृष्टि, पंचम भाग में वाराहावतार की दृष्टि, छट्ठे भाग में लेप और चित्रमय प्रतिमा की दृष्टि रखना चाहिये ॥ ४१ ॥

सासणसुरसत्तमए सत्तमसत्तंसि वीयरागस्स।
चंडिय-भइरव-अडंसे नवमिंदा छत्तचमरधरा ॥ ४२ ॥

सातवें भाग में शासनदेव (जिन भगवान के यक्ष और यक्षिणी) की दृष्टि, यहीं सातवें भाग के दश भाग करके उनका जो सातवाँ भाग वहीं पर वीतरागदेव की दृष्टि, आठवें भाग में चंडीदेवी और भैरव की दृष्टि और नववें भाग में छत्र चामर करने वाले इंद्र की दृष्टि रखना चाहिये ॥ ४२ ॥

दसमे भाए सुन्नं जक्खागंधव्वरक्खसा जेण।
हिट्ठाउ कमि ठविज्जइ सयल सुराणं च दिट्ठी अ ॥ ४३ ॥

ऊपर के दशवें भाग में किसी की दृष्टि नहीं रखना चाहिये, क्योंकि वहां यक्ष, गांधर्व और राक्षसों का निवास माना है। समस्त देवों की दृष्टि द्वार के नीचे के क्रम से रखना चाहिये ॥ ४३ ॥

---

१ 'कड्डुवारं' इति पाठान्तरे।

प्रकारान्तर से दृष्टि का प्रमाण—

भागट्ठ भणंतेगे सत्तमसत्तंसि दिट्ठि [1]अरिहंता।
गिहदेवालु पुणेवं कीरइ जह होइ वुड्ढिकरं ॥ ४४ ॥

कितनेक आचार्यों का मत है कि मंदिर के मुख्य द्वार के देहली और उत्त-रंग के मध्य भाग का आठ भाग करना। उनमें भी ऊपर का जो सातवाँ भाग, उसका फिर आठ भाग करके, इसी के सातवें भाग (गजांश) पर अरिहंत की दृष्टि रखना चाहिये। अर्थात् द्वार के ६४ भाग करके, ५५ वें भाग पर वीतरागदेव की दृष्टि रखना चाहिये। इसी प्रकार गृहमंदिर में भी करना चाहिये कि जिससे लक्ष्मी आदि की वृद्धि हो ॥ ४४ ॥

प्रासादमण्डन में भी कहा है कि—

"आयभागे भजेद् द्वार-मष्टमभूर्ध्वतस्त्यजेत्।
सप्तमसप्तमे दृष्टि-र्वृषे सिंहे ध्वजे शुभा ॥"

द्वार की ऊंचाई का आठ भाग करके ऊपर का आठवाँ भाग छोड़ देना, पीछे सातवें भाग का फिर आठ भाग करके, इसीका जो सातवाँ भाग गजआय, उसमें दृष्टि रखना चाहिये। या सातवें भाग के जो आठ भाग किये हैं, उनमें से वृष, सिंह या ध्वज आय में अर्थात् पांचवां, तीसरा या पहला भाग में भी दृष्टि रख सकते हैं।

दि० वसुनंदिकृत प्रतिष्ठासार में कहा है कि—

"विभज्य नवधा द्वारं तत् षड्भागानधस्त्यजेत्।
ऊर्ध्वद्वौ सप्तमं तद्वद् विभज्य स्थापयेद् दृशाम् ॥"

द्वार का नव भाग करके नीचे के छः भाग और ऊपर के दो भाग को छोड़ दो, बाकी जो सातवां भाग रहा, उसका भी नव भाग करके इसी के सातवें भाग पर प्रतिमा की दृष्टि रखना चाहिये।

---

[1] 'अरहंता' इति पाठान्तरं।

देवों का दृष्टिद्वार—

१—प्रथम प्रकार से देवों का दृष्टि स्थान।

२—अन्य प्रकार से देवों का दृष्टि स्थान। यह प्रकार प्रायः सब आचार्यों को अधिक माननीय है।
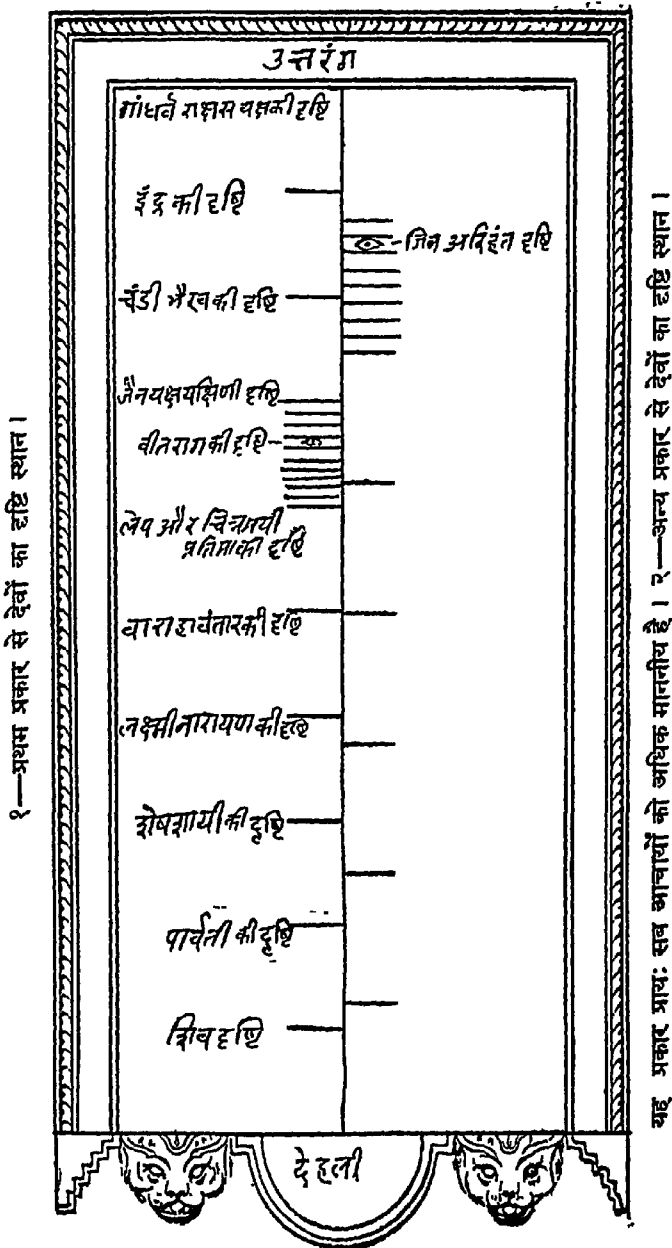
गर्भगृह में देवों की स्थापना—

गब्भगिहड्ढ-पणंसा जक्खा पढमंसि देवया बीए ।
जिणकिराहरवी तइए बंभु चउत्थे सिवं पणगे ॥ ४५ ॥

प्रासाद के गर्भगृह के आधे का पांच भाग करना, उनमें प्रथम भाग में यक्ष, दूसरे भाग में देवी, तीसरे भाग में जिन, कृष्ण और सूर्य, चौथे भाग में ब्रह्मा और पांचवें भाग में शिव की मूर्त्ति स्थापित करना चाहिये ॥ ४५ ॥

नहु गब्भे ठाविज्जइ लिंगं गब्भे चइज्ज नो कहवि ।
तिलयद्धं तिलमित्तं ईसाणे किंपि आसरिओ ॥ ४६ ॥

महादेव का लिंग प्रासाद के गर्भ (मध्य) में स्थापित नहीं करना चाहिये । यदि गर्भ भाग को छोड़ना न चाहें तो गर्भ से तिल आधा तिलमात्र भी ईशानकोण में हटाकर रखना चाहिये ॥ ४६ ॥

भित्तिसंलग्गबिंबं उत्तमपुरिसं च सव्वहा असुहं ।
चित्तमयं नागायं हवंति एए [1]सहावेण ॥ ४७ ॥

दीवार के साथ लगा हुआ ऐसा देवबिंब और उत्तम पुरुष की मूर्त्ति सर्वथा अशुभ मानी है । किन्तु चित्रमय नाग आदि देव तो स्वाभाविक लगे हुए रहते हैं, उसका दोष नहीं ॥ ४७ ॥

जगती का स्वरूप—

जगई पासायंतरि रसगुणा पच्छा नवगुणा पुरओ ।
दाहिण-वामे तिउणा इअ भणियं खित्तमज्झायं ॥ ४८ ॥

जगती (मंदिर की मर्यादित भूमि) और मध्य प्रासाद का अंतर पिछले भाग में प्रासाद के विस्तार से छः गुणा, आगे नव गुणा, दाहिनी और बायीं ओर तीन २ गुणा होना चाहिये । यह क्षेत्र की मर्यादा है ॥ ४८ ॥

[1] 'समासेण' इति पाठान्तरं ।

प्रासादमण्डन में जगती का स्वरूप विशेषरूप से कहा है कि—

"प्रासादानामधिष्ठानं जगती सा निगद्यते ।
यथा सिंहासनं राज्ञां प्रासादानां तथैव च ॥ १ ॥"

प्रासाद जिस भूमि में किया जाय उस समस्त भूमि को जगती कहते हैं। अर्थात् मंदिर के निमित्त जो भूमि है उस समस्त भूमि भाग को जगती कहते हैं। जैसे राजा का सिंहासन रखने के लिये अमुक भूमि भाग अलग रखा जाता है, वैसे प्रासाद की भूमि समझना ॥ १ ॥

"चतुरस्रायतेऽष्टास्रा वृत्ता वृत्तायता तथा ।
जगती पञ्चधा प्रोक्ता प्रासादस्यानुरूपतः ॥ २ ॥"

समचौरस, लंबचौरस, आठ कोनेवाली, गोल और लंबगोल, ये पांच प्रकार की जगती प्रासाद के रूप सदृश होती है। जैसे—समचौरस प्रासाद को समचौरस जगती, लंबचौरस प्रासाद को लंबचौरस जगती इसी प्रकार समझना ॥ २ ॥

"प्रासादपृथुमानाच्च त्रिगुणा च चतुर्गुणा ।
क्रमात् पञ्चगुणा प्रोक्ता ज्येष्ठा मध्या कनिष्ठका ॥ ३ ॥"

प्रासाद के विस्तार से जगती तीन गुणी, चार गुणी या पांच गुणी करना। त्रिगुणी कनिष्ठमान, चतुर्गुणी मध्यममान और पांच गुणी जेष्ठमान की जगती है ॥ ३ ॥

"कनिष्ठे कनिष्ठा ज्येष्ठे ज्येष्ठा मध्यमे मध्यमा ।
प्रासादे जगती कार्या स्वरूपा लक्षणान्विता ॥ ४ ॥"

कनिष्ठमान के प्रासाद में कनिष्ठमान जगती, ज्येष्ठमान के प्रासाद में ज्येष्ठमान जगती और मध्यमान प्रासाद में मध्यममान जगती। प्रासाद के स्वरूप जैसी जगती करना चाहिये ॥ ४ ॥

"रससप्तगुणाख्याता जिने पर्यायसंस्थिते ।
द्वारिकायां च कर्त्तव्या तथैव पुरुषत्रये ॥ ५ ॥"

च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवल और मोक्ष के स्वरूपवाले देवकुलिका युक्त जिनप्रासाद में छः या सात गुणी जगती करना चाहिये। उसी प्रकार द्वारिका प्रासाद और त्रिपुरुष प्रासाद में भी जानना ॥ ५ ॥

"मण्डपानुक्रमेणैव सपादांशेन सार्द्धतः ।
द्विगुणा वायता कार्या स्वहस्तायतनाविधिः ॥६ ॥"

मण्डप के क्रम से सवाई डेढी या दुगुनी विस्तारवाली जगती करना चाहिये ।

"त्रिद्वयेकभ्रमसंयुक्ता ज्येष्ठा मध्या कनिष्ठका ।
उच्छ्रायस्य त्रिभागेन भ्रमणीनां समुच्छ्रयः ॥ ७ ॥"

तीन भ्रमणीवाली ज्येष्ठा, दो भ्रमणीवाली मध्यमा और एक भ्रमणीवाली कनिष्ठा जगती जानना। जगती की ऊंचाई का तीन भाग करके प्रत्येक भाग भ्रमणी की ऊंचाई जानना ॥ ७ ॥

"चतुष्कोणैस्तथा सूर्य—कोणैर्विंशतिकोणकैः ।
अष्टाविंशति-षट्त्रिंशत्-कोणैः स्वस्य प्रमाणतः ॥ ८ ॥"

जगती चार कोनावाली, बारह कोनावाली, बीस कोनावाली, अट्ठाइस कोनावाली और छत्तीस कोनावाली करना अच्छा है ॥ ८ ॥

"प्रासादाद्वार्कहस्तान्ते त्र्यंशे द्वाविंशतिकरात् ।
द्वात्रिंशच्चतुर्थांशे भूतांशोच शतार्द्धके ॥ ९ ॥"

बारह हाथ के विस्तारवाले प्रासाद को प्रासाद के तीसरे भाग अर्थात् प्रत्येक हाथ ८ अंगुल, बाईस से बत्तीस हाथ के विस्तारवाले प्रासाद को चौथे भाग अर्थात् प्रत्येक हाथ छः अंगुल और तेंतीस से पचास हाथ के विस्तारवाले प्रासाद को पांचवें भाग जगती ऊंची बनाना चाहिए ॥ ९ ॥

"एक हस्ते करेणैव सार्द्धद्वयंशाश्चतुष्करे ।
सूर्यजिनशतार्द्धान्तं क्रमाद् द्वित्रियुगांशकैः ॥ १० ॥"

एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद को एक हाथ ऊंची जगती, दो से चार हाथ तक के विस्तारवाले प्रासाद को ढाईवें भाग, पांच से बारह हाथ तक के प्रासाद को दूसरे भाग, तेरह से चौबीस हाथ के प्रासाद को तीसरे भाग और पचीस से पचास हाथ के विस्तारवाले प्रासाद को चौथे भाग जगती ऊंची करना चाहिये ॥ १० ॥

"तदुच्छ्रायं भजेत् प्राज्ञः त्वष्टाविंशतिभिः पदैः ।
त्रिपदो जाड्यकुंभस्य द्विपदं कर्णिकं तथा ॥ ११ ॥
पद्मपत्रसमायुक्ता त्रिपदा सरपत्रिका ।
द्विपदं खुरकं कुर्यात् सप्तभागं च कुंभकम् ॥ १२ ॥

जगती के उदय का स्वरूप—
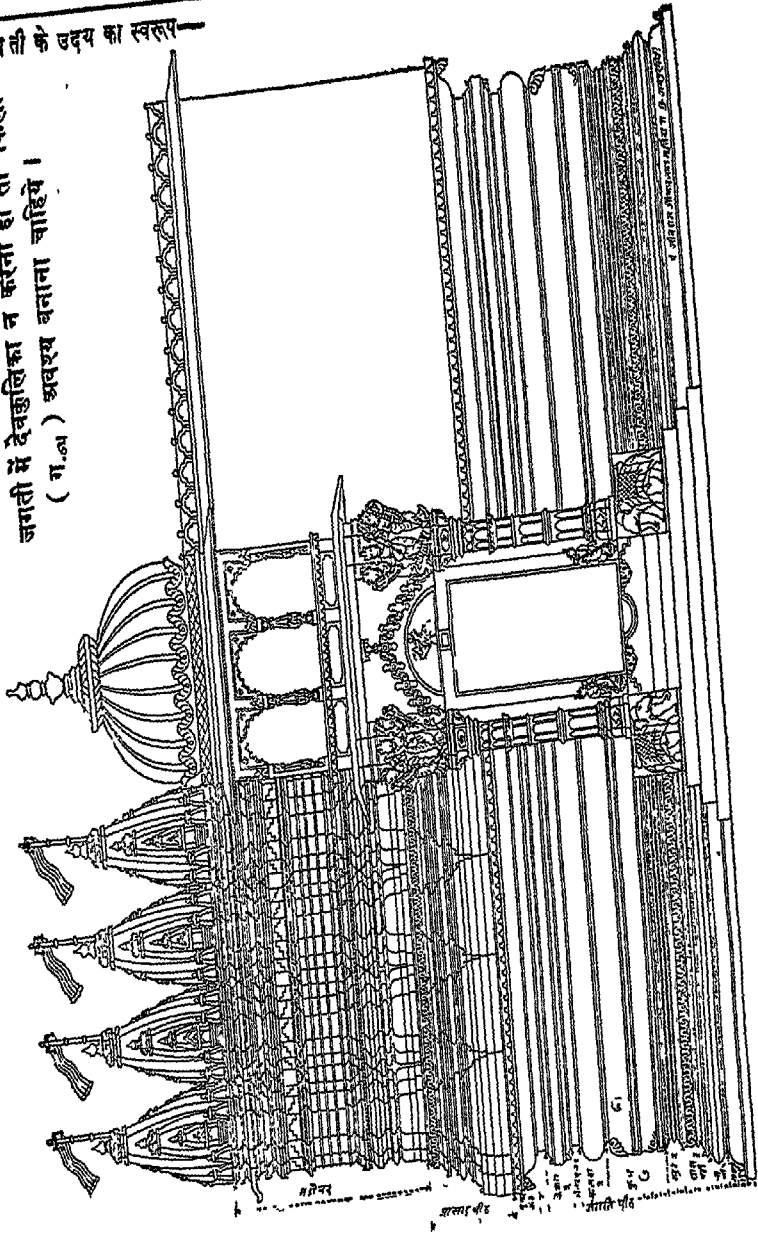
"कलशस्त्रिपदो प्रोक्तो भागेनान्तरपत्रकम् ।
कपोताली त्रिभागा च पुष्पकण्ठो युगांशकम् ॥ १३ ॥"

जगती की ऊंचाई का अट्ठाईस भाग करना। उनमें तीन भाग का जाड्यकुंभ, दो भाग की कणी, पद्मपत्र सहित तीन भाग की ग्रास पट्टी, दो भाग का खुरा, सात भाग का कुंभा, तीन भाग का कलश, एक भाग का अंतरपत्र, तीन भाग केवाल और चार भाग का पुष्पकंठ करना ॥ ११-१२-१३ ॥

"पुष्पकाज्जाडयकुंभस्य निर्गमस्याष्टभिः पदैः ।
कर्णेषु च दिशिपालाः प्राच्यादिषु प्रदक्षिणे ॥ १४ ॥"

पुष्पकंठ से जाड्यकुंभ का निर्गम आठ भाग करना। पूर्वादि दिशाओं में प्रदक्षिण क्रम से दिक्पालों को कर्ण में स्थापित करना ॥ १४ ॥

"प्राकारैर्मण्डिता कार्या चतुर्भिर्द्वारमण्डपैः ।
मकरैर्जलनिष्कासैः सोपान-तोरणादिभिः ॥ १५ ॥

जगती किला (गढ़) से सुशोभित करना, चारों दिशा में एक २ द्वार बलाणक (मंडप) समेत करना, जल निकलने के लिये मगर के मुखवाले परनालें करना, द्वार आगे तोरण और सीढिएँ करना ॥ १५ ॥

प्रासाद के मंडप का क्रम—

पासायकमलअग्गे गूढक्खयमंडवं तओ छक्कं ।
पुण रंगमंडवं तह तोरणसवलाणमंडवयं ॥ ४१ ॥

प्रासादकमल (गंभारा) के आगे गूढमंडप, गूढमंडप के आगे छः चौकी, छः चौकी के आगे रंगमंडप, रंगमंडप के आगे तोरण युक्त बलाणक (दरवाजे के ऊपर का मंडप) इस प्रकार मंडप का क्रम है ॥ ४६ ॥

प्रासादमंडन में भी कहा है कि—

"गूढास्त्रिकस्तथा नृत्यं क्रमेण मंडपास्त्रयम्। जिनस्याग्रे प्रकर्त्तव्याः सर्वेषां तु बलानकम् ।"

जिन भगवान के प्रासाद के आगे गूढमंडप, उसके आगे त्रिक तीन (नव चौकी) और उसके आगे नृत्यमंडप (रंगमंडप),ये तीन मंडप करना चाहिये, तथा उन सबके आगे बलानक (दरवाजे पर का मंडप) सब मंदिरों में करना चाहिये ॥
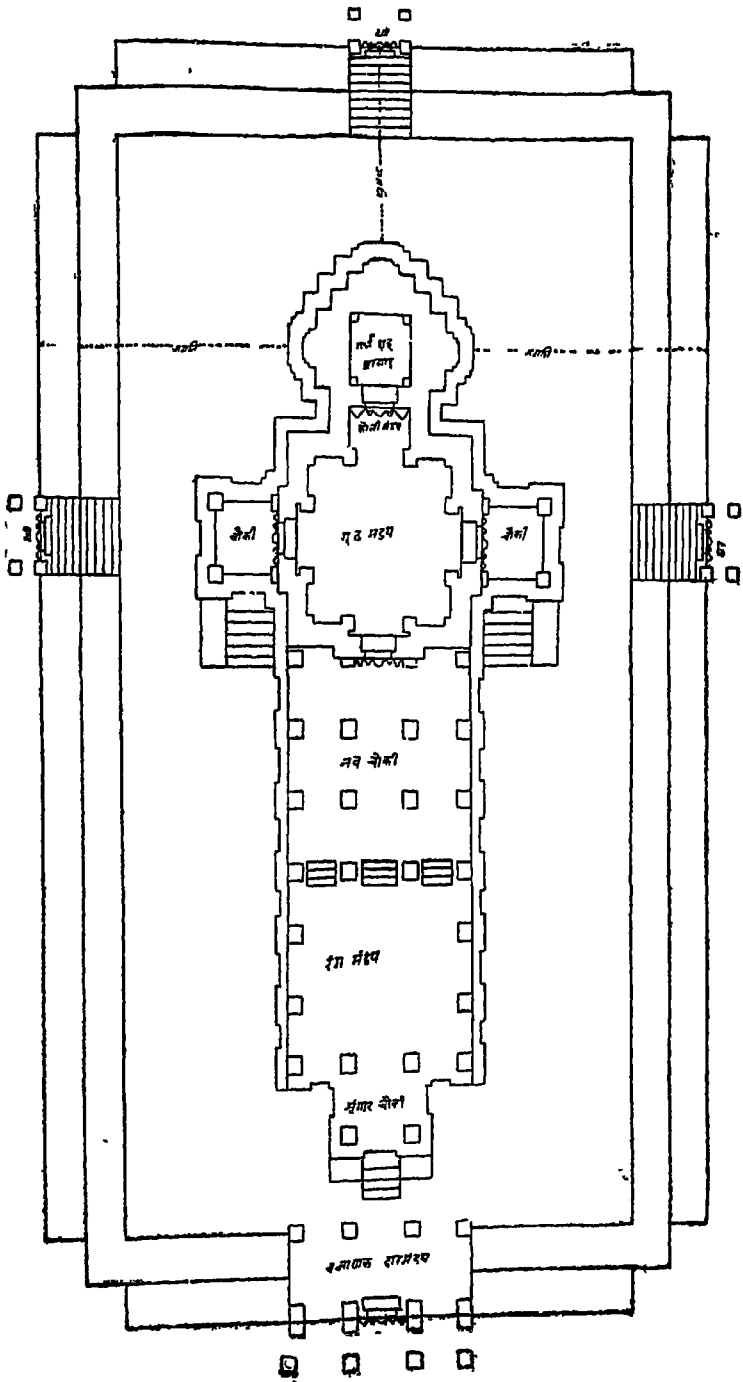
मंदिर के तल भाग का स्वरूप—

समस्त सांगोपांग एक देव मन्दिर के उदय का स्वरूप—
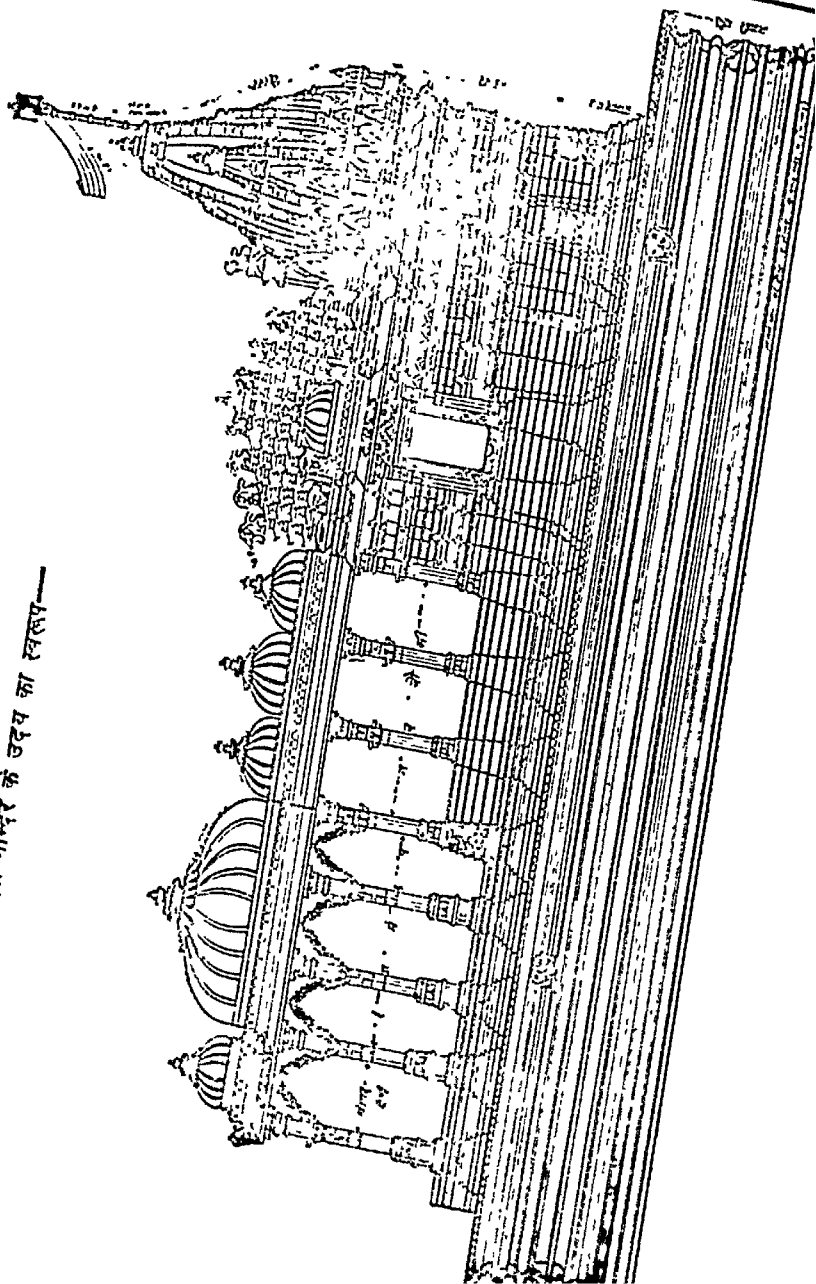
दाहिणवामदिसेहिं सोहामंडपगउक्खजुअसाला ।
गीयं नट्टविणोयं गंधव्वा जत्थ पकुणंति ॥ ५० ॥

प्रासाद के दाहिनी और बाँयीं तरफ शोभामंडप और गवाक्ष (झरोखा) युक्त शाला बनाना चाहिये कि जिसमें गांधर्वदेव गीत, नृत्य व विनोद करते हुए हों ॥५०॥

मंडप का मान—

पासायसमं विउणं दिउड्ढयं पऊणदूण वित्थारो ।
[1]सोवाण ति पण उदए चउदए चउकीओ मंडवा हुंति ॥ ५१ ॥

प्रासाद के बराबर, दुगुणा, डेढा या पौने दुगुना विस्तारवाला मंडप करना चाहिये । मंडप में सीढी तीन या पांच करना और मंडप में चौकीएँ बनाना ॥५१॥

स्तम्भ का उदयमान—

कुंभी-थंभ-भरण-सिर-पट्टं इग-पंच-पऊण-सप्पायं ।
इग इअ नव भाय कमे मंडववट्टाउ अद्धुदए ॥ ५२ ॥

मंडप की गोलाई से आधा स्तंभ का उदय करना, उसी उदय का नव भाग करना, उनमें एक भाग की कुंभी, पांच भाग का स्तंभ, पौने भाग का भरणा, सवा भाग का शिरावटी (शरु) और एक भाग का पाट करना चाहिये ॥ ५२ ॥

मर्कटी कलश और स्तंभ का विस्तार—

पासाय-अट्ठमंसे पिंडं मकडिअ-कलस-थंभस्स ।
दसमंसि बारसाहा सपडिग्घउ कलसु [2]पउणदूणुदये ॥ ५३ ॥

प्रासाद के आठवें भाग के प्रमाणवाले मर्कटी (ध्वजादंड की पाटली), कलश और स्तंभ का विस्तार करना, प्रासाद के दशवें भाग की द्वारशाखा करनी । कलश के विस्तार से कलश की ऊंचाई पौने दुगुनी करना ॥ ५३ ॥

१ 'सोवाणतिण्णि उदए' २ 'दिवड्ढुदये' इति पाठान्तरे ।

मंदिर में कैसे २ रूपवाले या सादे स्तंभ रखे जाते हैं, उनमें से कितनेक स्तंभों का स्वरूप—
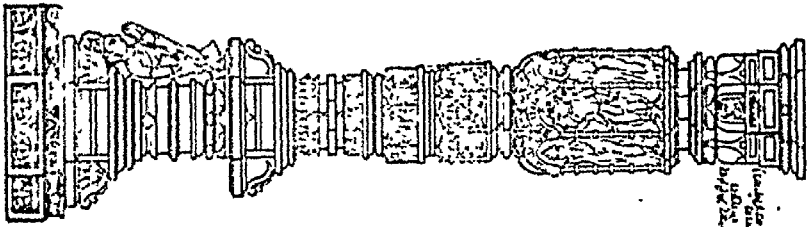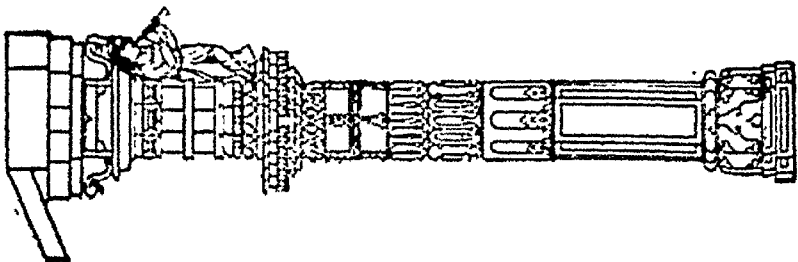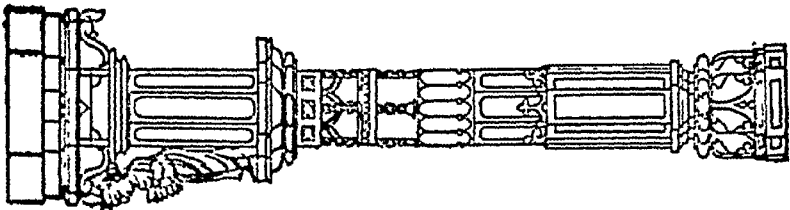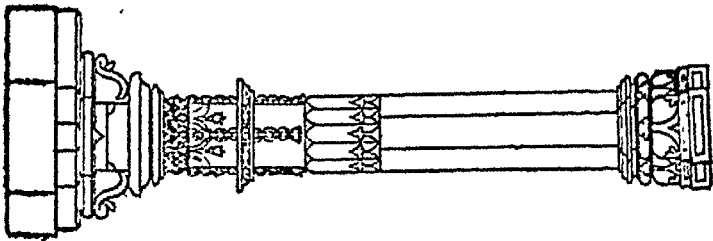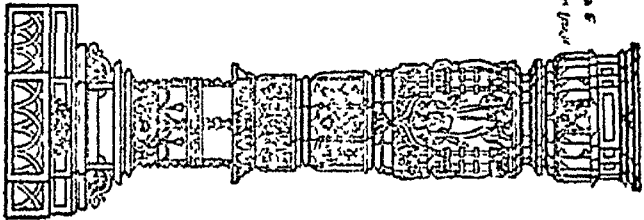
कलश के उदय का प्रमाण प्रासादमंडन में कहा है कि—

"ग्रीवापीठं भवेद् भागं त्रिभागेनाण्डकं तथा ।
कर्णिका भागतुल्येन त्रिभागं बीजपूरकम् ॥"

कलश का स्वरूप—

कलश का गला और पीठ का उदय एक २ भाग, अंडक अर्थात् कलश के मध्य भाग का उदय तीन भाग, कर्णिका का उदय एक भाग और बीजोरा का उदय तीन भाग । एवं कुल नव भाग कलश के उदय के हैं ।

प्रक्षालन आदि के जल निकलने की नाली का मान—

जलनालियाउ फरिसं करंतरे चउ जवा कमेणुच्चं ।
जगई अ भित्तिउदए छज्जइ समचउदिसेहिं पि ॥ ५४ ॥

एक हाथ के विस्तारवाले प्रासाद में जल निकलने की नाली का उदय चार जव करना । पीछे प्रत्येक हाथ चार २ जव उदय में बढाना । जगती के उदय में और दीवार (मंडोवर) के छज्जे के ऊपर चारों दिशा में जलनालिका करना चाहिये ॥ ५४ ॥

प्रासादमंडन में कहा है कि—

"मंडपे ये स्थिता देवा-स्तेषां वामे च दक्षिणे ।
प्रणालं कारयेद् धीमान् जगत्यां चतुरो दिशः ॥"

मंडप में जो देव प्रतिष्ठित हों उनके प्रक्षालन का पानी जाने की नाली बाँयीं और दक्षिण ये दो दिशा में बनावें, तथा जगती की चारों दिशा में नाली करें ।

कौन २ वस्तु समसूत्र में रखना—

आइपट्टस्स हिट्ठं छज्जइ हिट्ठं च सव्वसुत्तेगं ।
उदुंबर सम कुंभि अ थंभ समा थंभ जाणेह ॥ ५५ ॥

पाट के नीचे और छज्जा के नीचे सब समसूत्र में रखना चाहिये । देहली के बराबर सब कुंभी और स्तंभ के बराबर सब स्तंभ करना चाहिये ॥ ५५ ॥

मंदिर की द्वारशाखा, देहली और शंखावटी का स्वरूप—
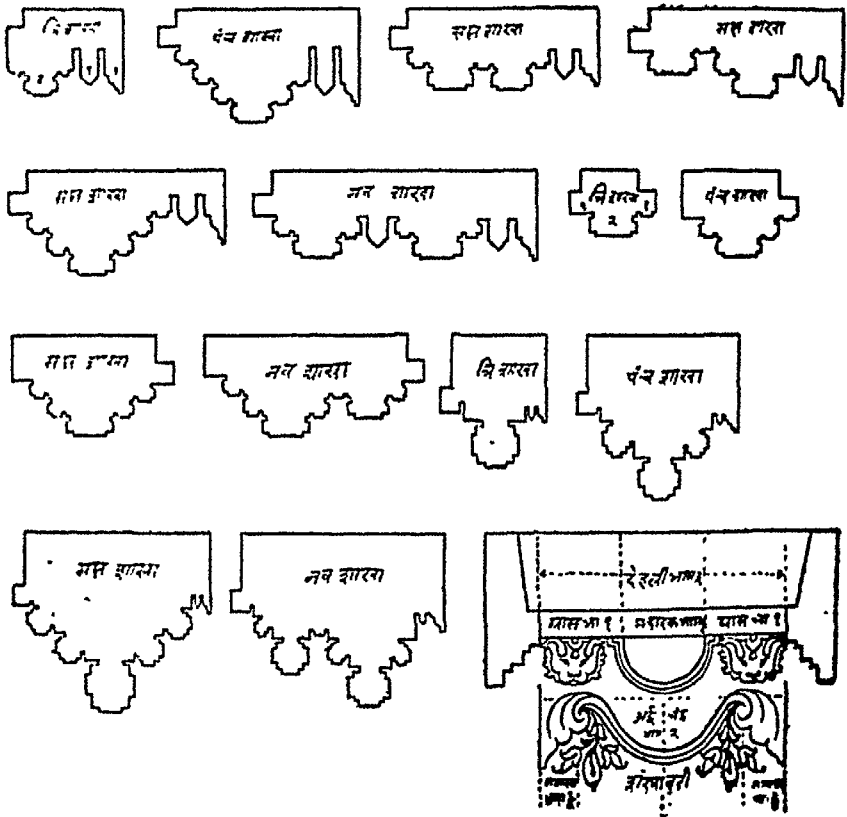
इनका सविस्तर वर्णन प्रासादमंडन जो अब अनुवाद पूर्वक छपनेवाला है उसमें देखो। अहमदाबाद वाले मिस्त्री जगन्नाथ अंबाराम सोमपुरा का लिखा हुआ महा अशुद्ध बृहद् शिल्पशास्त्र में देहली और शंखावटी के नकशे का भाग अशुद्ध लिखा है। मिस्त्रीजी खुद भाषा में तीन भाग लिखते हैं, और नकशे में चार भाग बतलाते हैं। मालूम होता है कि मिस्त्रीजी ने कुछ नशा करके पुस्तक लिखी होगी।

चौवीस जिनालय का क्रम—

अग्गे दाहिण-वामे अट्ठट्ठजिणिंदगेह चउवीसं ।
मूलसिलागाउ इमं पकीरए जगइ मज्झम्मि ॥ ५६ ॥

चौवीस जिनालयवाला मन्दिर करना हो तो बीच के मुख्य मन्दिर के सामने, दाहिनी और बाँयीं तरफ इन तीनों दिशाओं में आठ आठ देवकुलिका (देहरी) जगती के भीतर करना चाहिये ॥ ५६ ॥

चौवीस जिनालय में प्रतिमा का स्थापन क्रम—

रिसहाई–जिणपंती सीहदुवारस्स दाहिणदिसाओ ।
ठाविज्ज सिट्ठिमग्गे सव्वेहिं जिणालए एवं ॥ ५७ ॥

देवकुलिका में सिंहद्वार के दक्षिण दिशा से (अपनी बाँयीं ओर से) क्रमशः ऋषभदेव आदि जिनेश्वर की पंक्ति सृष्टिमार्ग से (पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर इस क्रम से) स्थापन करना । इस प्रकार समस्त जिनालय में समझना ॥ ५७ ॥

चउवीसतित्थमज्झे जं एगं मूलनायगं हवइ ।
पंतीइ तस्स ठाणे सरस्सई ठवसु निब्भंतं ॥ ५८ ॥

चौवीस तीर्थंकरों में से जो कोई एक मूलनायक हो, उस तीर्थंकर की पंक्ति के स्थान में सरस्वती देवी को स्थापित करना चाहिये ॥ ५८ ॥

बावन जिनालय का क्रम—

चउतीस वाम-दाहिण नव पुट्ठि अट्ठ पुरओ अ देहरयं ।
मूलपासाय एगं बवाणजिनालये एवं ॥ ५९ ॥

चौवीस देहरी बीच प्रासाद के बाँयीं और दक्षिण तरफ अर्थात् दोनों बगल में सत्रह सत्रह देहरी, नव देहरी पिछले भाग में, आठ देहरी आगे तथा एक मध्य का मुख्य प्रासाद, इस प्रकार कुल बावन जिनालय समझना चाहिये ॥ ५९ ॥

बहत्तर जिनालय का क्रम—

पणवीसं पणवीसं दाहिण-वामेसु पिट्ठि इक्कारं ।
दह अग्गे नायव्वं इअ बाहत्तरि जिणिंदालं ॥ ६० ॥

मध्य मुख्य प्रासाद के दाहिनी ओर बाँयीं तरफ पच्चीस पच्चीस, पिछाडी ग्यारह, आगे दस और एक बीच में मुख्य प्रासाद, एवं कुल बहत्तर जिनालय जानना ॥६०॥

शिखरबद्ध लकड़ी के प्रासाद का फल—

अंग विभूसण सहिअं पासायं सिहरबद्ध कट्ठमयं ।
नहु गेहे पूइज्जइ न धरिज्जइ किंतु जत्तु वरं ॥ ६१ ॥

कोना, प्रतिरथ और भद्र आदि अंगवाला, तथा तिलक तवंगादि विभूषण वाला शिखरबद्ध लकड़ी का प्रासाद घर में नहीं पूजना चाहिये और रखना भी नहीं चाहिये । किन्तु तीर्थ यात्रा में साथ हो तो दोष नहीं ॥ ६१ ॥

जत्त कए पुणु पच्छा ठविज्ज रहसाल अहव सुरभवणे ।
जेण पुणो तस्सरिसो करइ जिणजत्तवरसंघो ॥ ६२ ॥

तीर्थ यात्रा से वापिस आकर शिखरबद्ध लकड़ी के प्रासाद को रथशाला या देवमन्दिर में रख देना चाहिये कि फिर कभी उसके जैसा जिन यात्रा संघ निकालने में काम आवे ॥ ६२ ॥

गृहमन्दिर का वर्णन—

गिहदेवालं कीरइ दारुमयविमाणपुप्फयं नाम ।
उववीढ पीठ फरिसं जहुत्त चउरंस तस्सुवरिं ॥ ६३ ॥

पुष्पक विमान के आकार सदृश लकड़ी का घर मंदिर करना चाहिये। उपपीठ, पीठ और उसके ऊपर समचौरस फरश आदि जैसा पहले कहा है वैसा करना ॥६३॥

चउ थंभ चउ दुवारं चउ तोरण चउ दिसेहिं छज्जउडं ।
पंच कणवीरसिहरं एग दु ति वीरंगसिहरं वा ॥ ६४ ॥

चारों कौने पर चार स्तंभ, चारों दिशा में चार द्वार और चार तोरण, चारों ओर छज्जा और कनेर के पुष्प जैसा पांच शिखर (एक मध्य में गुम्मज, उसके चार कोणे पर एक एक गुमटी) करना चाहिये। एक द्वार या दो द्वार या तीन द्वार वाला और एक शिखर (गुम्मज) वाला भी बना सकते हैं ॥ ६४ ॥

अह भित्ति छज्ज उवमा सुरालयं आउ सुद्ध कायव्वं ।
समचउरंसं गब्भे तत्तो अ सवायउ उदएसु ॥ ६५ ॥

दीवार और छज्जा युक्त गृहमंदिर बराबर शुभ आय मिला कर करना चाहिये। गर्भ भाग समचौरस और गर्भ भाग से सवाया उदय में करना चाहिये ॥ ६५ ॥

गब्भाओ हवइ छज्जु सवाउ सतिहाउ दिवड्ढु वित्थारे ।
वित्थाराओ सवाओ उदयेण य निग्गमे अद्धो ॥ ६६ ॥

गर्भ भाग से छज्जा का विस्तार सवाया, अथवा तीसरा भाग करके सहित $१\frac{१}{३}$ या डेढा होना चाहिये। गर्भ के विस्तार से उदय में सवाया और निर्गम आधा होना चाहिये ॥ ६६ ॥

छज्जउड थंभ तोरण जुअ उवरे मंडओवमं सिहरं ।
आलयमज्झे पडिमा छज्जय मज्झम्मि जलवट्टं ॥ ६७ ॥

छज्जा, स्तंभ और तोरण युक्त घर मंदिर के ऊपर मण्डप के शिखर के सदृश शिखर अर्थात् गुम्मज करना। गृहमंदिर के मध्य भाग में प्रतिमा रखें और छज्जा में जलवट बनावें ॥ ६७ ॥

गिहदेवालयसिहरे धयदंडं नो करिज्जइ कयावि ।
आमलसारं कलसं कीरइ इअ भणिय सत्थेहिं ॥ ६८ ॥

घरमंदिर के शिखर पर ध्वजादंड कभी भी नहीं रखना चाहिये। किन्तु आमलसार कलश ही करना चाहिये ऐसा शास्त्रों में कहा है ॥ ६८ ॥

ग्रंथकार प्रशस्ति—

गिरि-धंधकलस-कुल-संभवेण चंदासुएण फेरेण ।
कन्नाणपुर-ठिएण य निरिक्खिउं पुव्वसत्थाइं ॥ ६९ ॥
सपरोवगारहेऊ नयण 'मुणि' 'राम' 'चंद्र' वरिसम्मि ।
विजयदशमीइ रइअं गिहपडिमालक्खणाईणं ॥ ७० ॥

इति परमजैनश्रीचन्द्राङ्गजठक्कुर'फेरु'विरचिते वास्तुसारे
प्रासादविधिप्रकरणं तृतीयम् ।

श्री धंधकलश नामके उत्तम कुल में उत्पन्न हुए सेठ चंद्र का सुपुत्र 'फेरु' ने कन्याणपुर (करनाल) में रहकर और प्राचीन शास्त्रों को देखकर स्वपर के उपकार के लिये विक्रम संवत् १३७२ वर्ष में विजयदशमी के दिन यह घर, प्रतिमा और प्रासाद के लक्षण युक्त वास्तुसार नामका शिल्पग्रंथ रचा ॥ ६९ । ७० ॥

नन्दाष्टनिधिचन्द्रे च वर्षे विक्रमराजतः ।
ग्रन्थोऽयं वास्तुसारस्य हिन्दीभाषानुवादितः ॥

इति सौराष्ट्रराष्ट्रान्तर्गत-पादलिप्तपुरनिवासिना पण्डितभगवानदासाख्या जैनेनानुवादितं गृह-बिम्ब-प्रासादप्रकरणत्रययुक्तं वास्तुसारनामकं प्रकरणं समाप्तम् ।
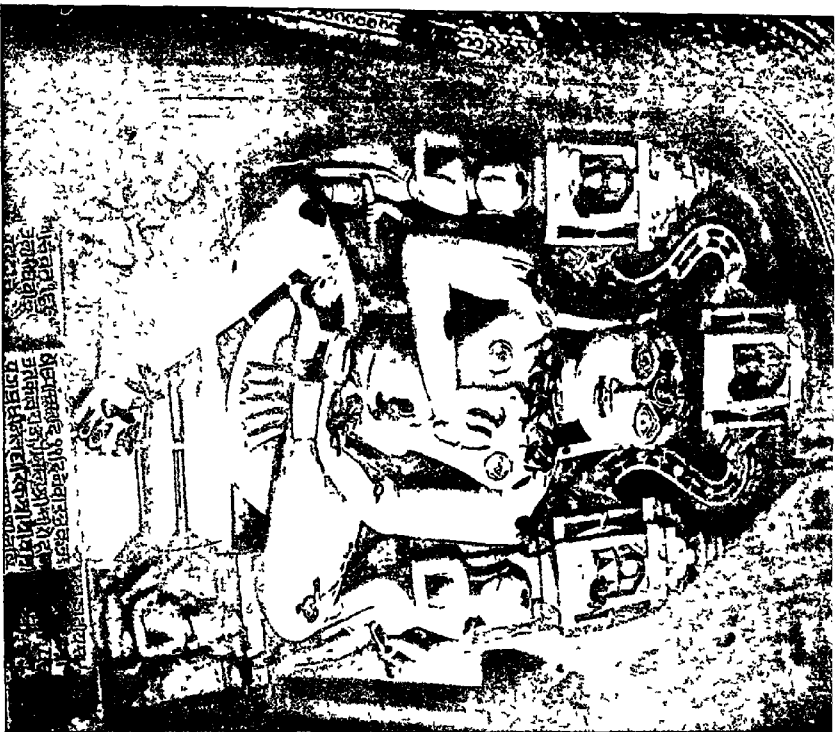
जैन गुरुमूर्त्ति. जगद्गुरु श्री हीरविजयसूरि. आबू
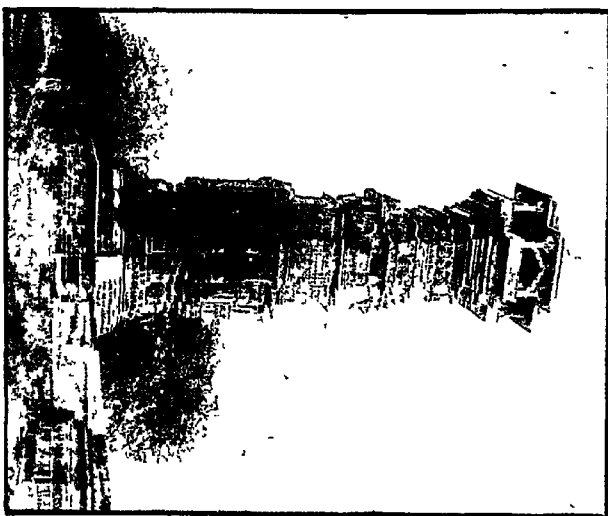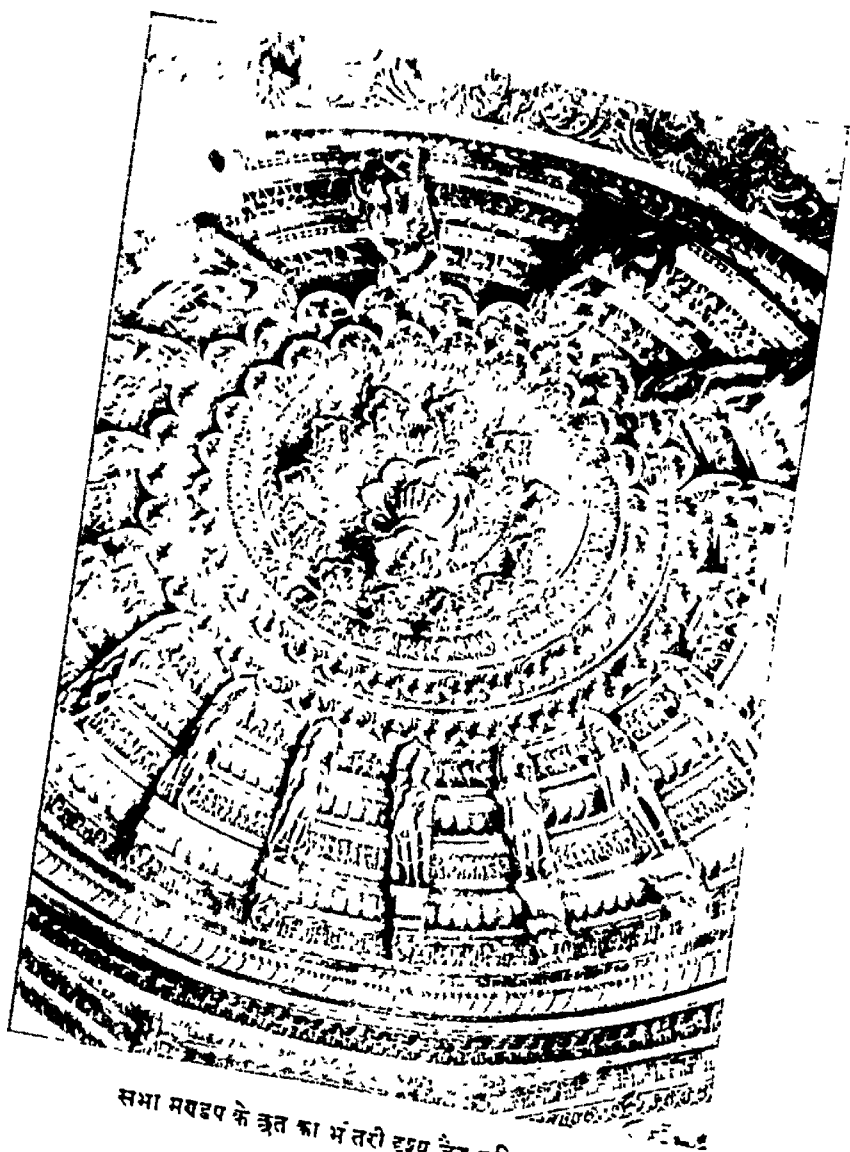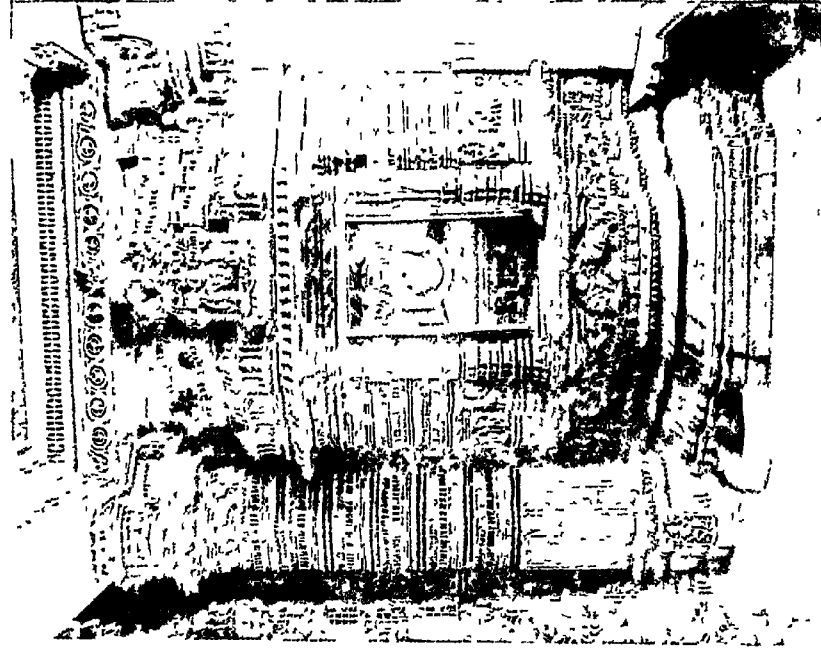
जैन कीर्त्तिस्तम्भ. चीतोडगढ.

सभा मण्डप के छत का अंतरी दृश्य जैन मन्दिर आबू

अनुपम नकशीवाला एक गवाक्ष (ताक) जैनमन्दिर (आबू)

नकशीदार स्तंभ और गवाक्ष का दृश्य जैन मन्दिर (आबू)

गज अश्व नर और हंस थर वाला कणपीठ
तथा रूप वाला मंडोवर का सुन्दर दृश्य.
श्री जगत् शरण जी का मन्दिर आमेर (जयपुर)

मनोहर कारिगरी वाला मन्डोवर
जैन मन्दिर आबू ।

लूणवसही जैन मन्दिर का भीतरी दृश्य आबू।
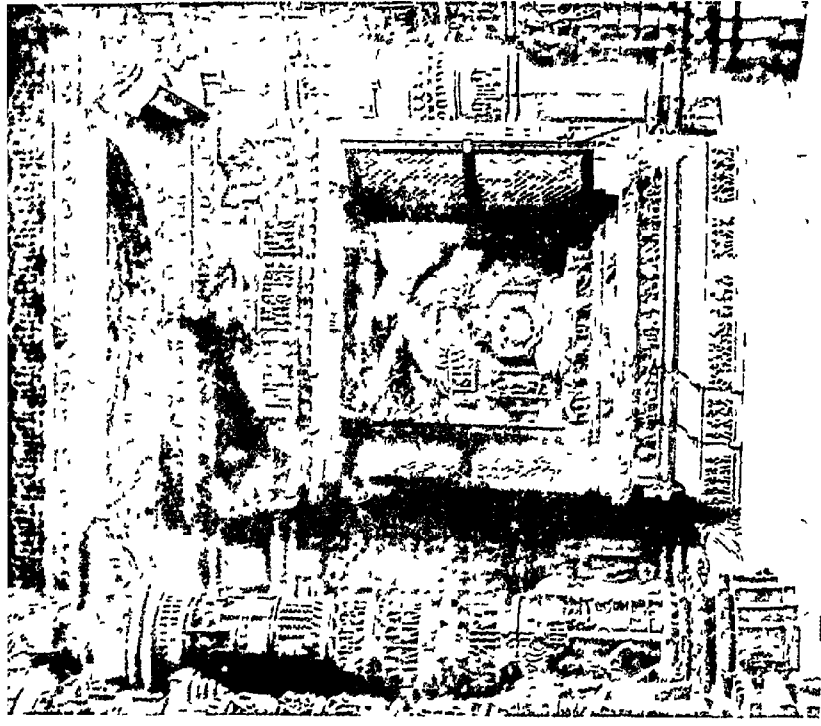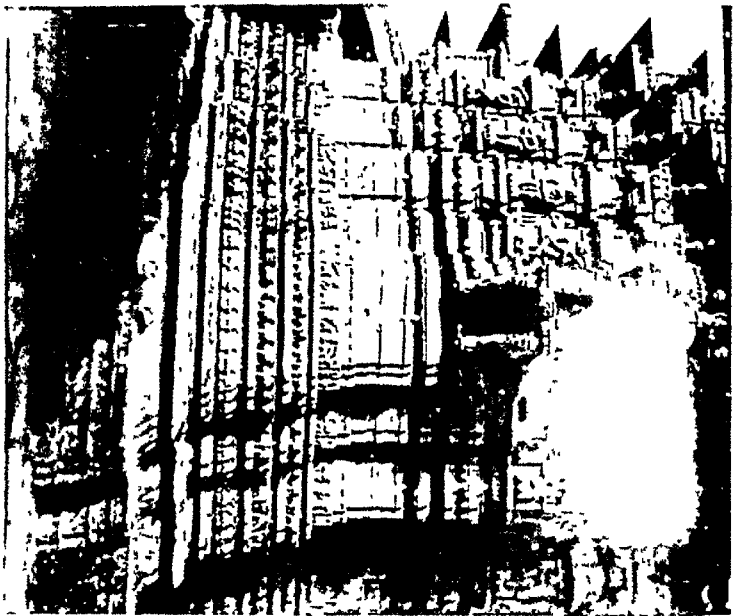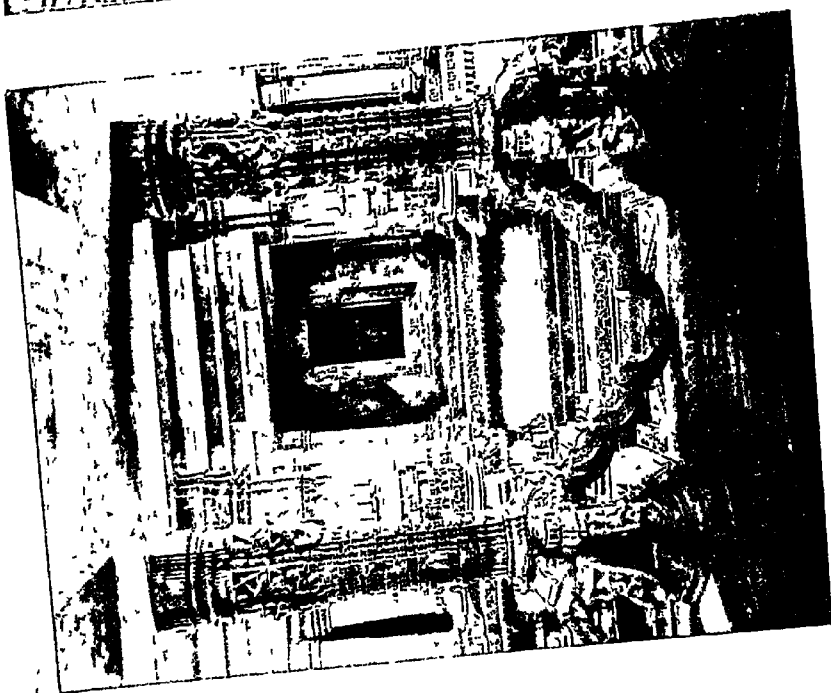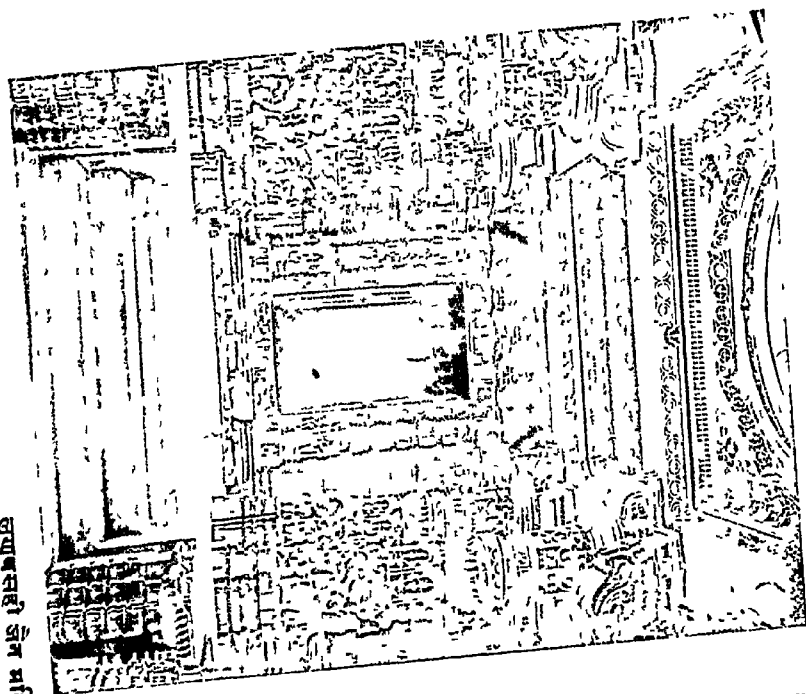
नरसिंहावतार की मूर्त्ति । जैन मन्दिर आबू
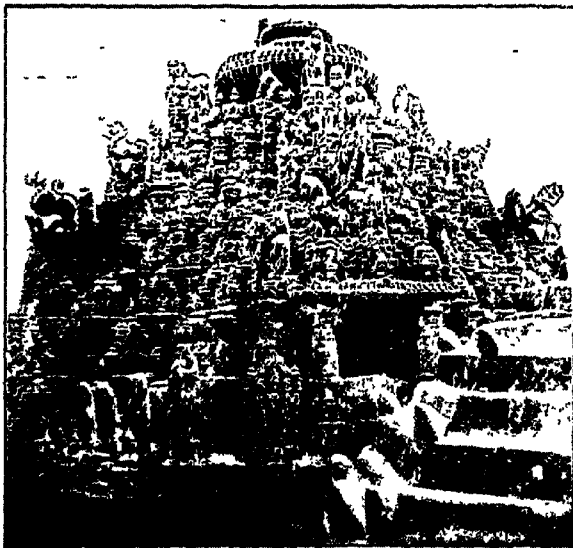
जेसलमेर के जैन मन्दिर के सांभरण का सुन्दर दृश्य
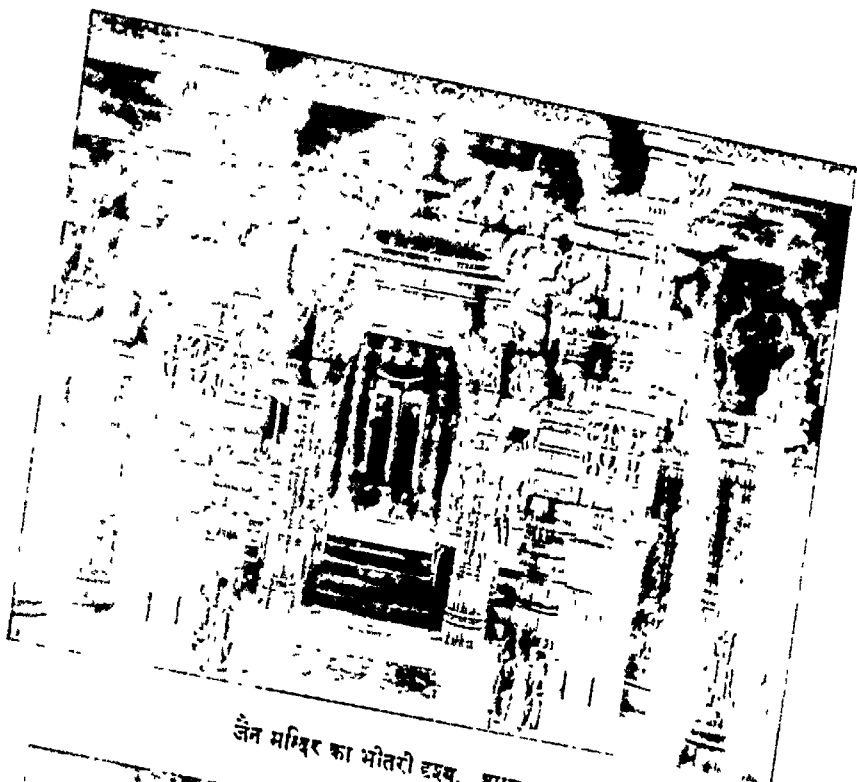
जैन मन्दिर का भीतरी दृश्य, आबू
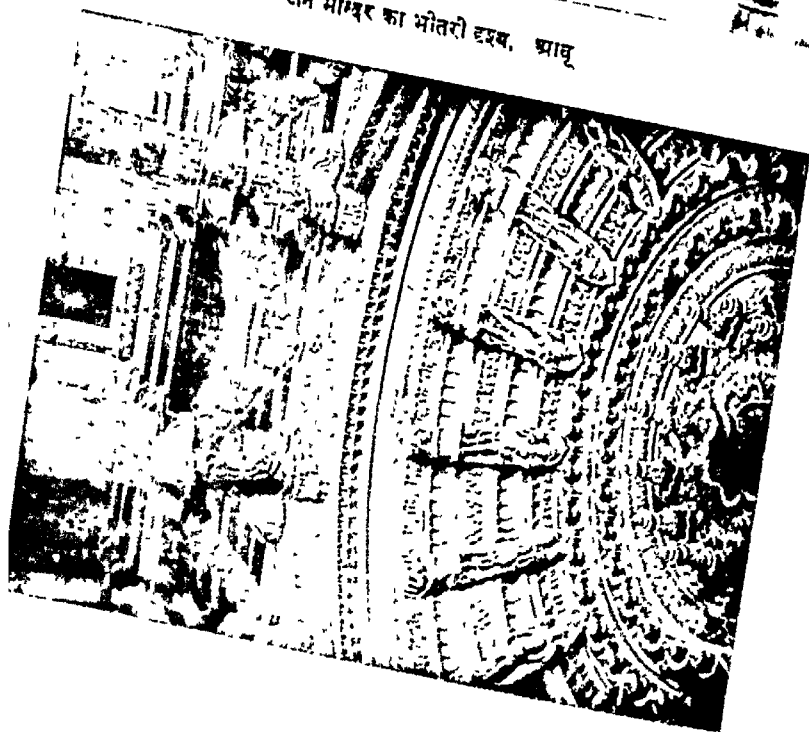
वज्रलेप—

मंदिर आदि की अधिक मजबूती के लिये प्राचीन जमाने में जो दीवाल आदि के ऊपर लेप किया जाता था, वह बृहत्संहिता में वज्रलेप के नाम से इस प्रकार प्रसिद्ध है—

आमं तिन्दुकमामं कपित्थकं पुष्पमपि च शाल्मल्याः ।
बीजानि शल्लकीनां धन्वनवल्को वचा चेति ॥ १ ॥
एतैः सलिलद्रोणः क्वाथयितव्योऽष्टभागशेषश्च ।
अवतार्योऽस्य च कल्को द्रव्यैरेतैः समनुयोज्यः ॥ २ ॥
श्रीवासकरसगुग्गुलुभल्लातककुन्दुरूकसर्जरसैः ।
अतसीबिल्वैश्च युतः कल्कोऽयं वज्रलेपाख्यः ॥ ३ ॥

टी०—तिन्दुकं तिन्दुकफलं, आममपक्वम् । कपित्थकं कपित्थकफलमामेव। शाल्मल्याः शाल्मलिवृक्षस्य च पुष्पम् । शल्लकीनां शल्लकीवृक्षाणां बीजानि । धन्वनवल्को धन्वनवृक्षस्य वल्कस्त्वक् । वचा च । इत्येवं प्रकारः ॥ एतैर्द्रव्यैः सह सलिलद्रोणः क्वाथयितव्यः । द्रोणः पलशतद्वयं षट्पञ्चाशदाधिकम् । यावदष्टभागावशेषो भवति, द्वात्रिंशत्पलानि अवशिष्यन्त इत्यर्थः । ततोऽष्टभागावशेषोऽवतार्योऽवतारणीयो ग्राह्य इत्यर्थः । अस्य चाष्टभागशेषस्यतद्द्रव्यैर्वक्ष्यमाणैः कल्कश्चूर्णः समनुयोज्यो विधातव्यः । तच्चूर्णसंयुक्तः कार्य इत्यर्थः । कैः इत्याह—श्रीवासकेति श्रीवासकः प्रसिद्धवृक्षनिर्यासः । रसो बोलः, गुग्गुलुः प्रसिद्धः, भल्लातकः प्रसिद्ध एव। कुन्दुरुको देवदारुवृक्षनिर्यासः । सर्जरसः सर्जरसवृक्षनिर्यासः । एतैः तथा अतसी प्रसिद्धा । बिल्वं श्रीफलं एतैश्च युतः समवेतः । अयं कल्को वज्रलेपाख्यः, वज्रलेपेत्याख्या नाम यस्य ॥ १ । २ । ३ ॥

कच्चे तेंदुफल, कच्चे कैंथफल, सेमल के पुष्प, शालवृक्ष के बीज धामनवृक्ष की छाल, और वच इन औषधों को बराबर लेकर एक द्रोण भर पानी में अर्थात् २५६ पल=१०२४ तोला पानी में डाल कर क्वाथ बनावें। जब पानी आठवां भाग रह जाय, तब नीचे उतार कर उसमें श्रीवासक (सरो) वृक्ष का गोंद, हीराबोल, गुग्गुल, भीलवाँ, देवदारु का गोंद (कुंदुरु), राल, अलसी और बेलफल, इन बराबर औषधों का चूर्ण डाल देने से वज्रलेप तैयार होता है।

वज्रलेप का गुण—

प्रासादहर्म्यवलभी-लिङ्गप्रतिमासु कुड्यकूपेषु।
सन्तप्तो दातव्यो वर्षसहस्रायुतस्थायी ॥ ४ ॥
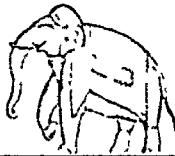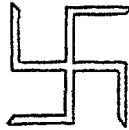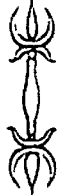
प्रासादो देवप्रासादः। हर्म्यम्। वलभी वातायनम्। लिङ्गं शिवलिङ्गम्। प्रतिमार्चा। एतासु तथा कुड्येषु भित्तिषु। कूपेषूदकोद्गारेषु। सन्तप्तोऽत्युष्णो दातव्यो देयः। वर्षसहस्रायुतस्थायी भवति। वर्षाणां सहस्रायुतं वर्षकोटिं तिष्ठतीत्यर्थः॥४॥

उक्त वज्रलेप देवमंदिर, मकान, बरमदा, शिवलिंग, प्रतिमा (मूर्त्ति), दीवार और कूआ इत्यादि ठिकाने बहुत गरम २ लगाने से उन मकान आदि की करोड़ वर्ष की स्थिति रहती है।

चौबीस तीर्थंकरों के अनुक्रमसे लां –

1 वृषभ बैल	२ हाथी	३ घोड़ा	४ बानर
५ क्रौंच	६ पद्म-कमल	७ स्वस्तिक	८ चंद्रमा
९ मगर	१० श्रीवत्स	११ गेंडा	१२ भैंसा
१३ शूकर	१४ सीचाना-बाज	१५ वज्र	१६ हरिण
१७ बकरा	१८ नंदावर्त्त	१९ कलश	२० कछुआ
२१ नील कमल	२२ शंख	२३ सर्प	२४ सिंह

जिनेश्वर देव और उनके शासन देवों का स्वरूप—

जिनेश्वर देव और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप निर्वाणकलिका, प्रवचनसारोद्धार, आचारदिनकर, त्रिषष्टीशलाकापुरुषचरित्र आदि ग्रंथों मे निम्न प्रकार है। उनमें प्रथम आदिनाथ और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तत्राद्यं कनकावदातवृषलाञ्छनमुत्तराषाढाजातं धनूराशिं चेति। तथा तत्तीर्थोत्पन्नगोमुखयक्षं हेमवर्णं गजवाहनं चतुर्भुजं वरदाक्षसूत्रयुतदक्षिणपाणिं मातुलिङ्गपाशान्वितवामपाणिं चेति। तथा तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नामप्रतिचक्राभिधानां यक्षिणीं हेमवर्णां, गरुडवाहनामष्टभुजां वरदबाणचक्रपाशयुक्तदक्षिणकरां धनुर्वज्रचक्राङ्कुशवामहस्तां चेति ॥ १ ॥

प्रथम 'आदिनाथ' (ऋषभदेव) नामके तीर्थंकर सुवर्ण के वर्ण जैसी कान्तिवाले हैं, उनको वृषभ (बैल) का चिन्ह है तथा जन्म नक्षत्र उत्तराषाढा और धनराशि है।

उनके तीर्थ में 'गोमुख' नामका यक्ष सुवर्ण के वर्णवाला, [1]हाथी की सवारी करनेवाला, चार भुजावाला, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और माला, बाँयीं हाथों में बीजोरा और पाश (फांसी) को धारण करनेवाला है।

उन्हीं आदिनाथ के तीर्थ में अप्रतिचक्रा (चक्रेश्वरी) नामकी देवी सुवर्ण के वर्णवाली, [2]गरुड़ की सवारी करनेवाली, [3]आठ भुजावाली, दाहिनी चार भुजाओं में वरदान, बाण, फांसी और चक्र बाँयीं चार भुजाओं में धनुष्य, वज्र, चक्र और अंकुश को धारण करनेवाली है।

---

१ आचारदिनकर में हाथी और बैल ये दो सवारी माना है।

२ सिद्धाचल आदि कईएक जगह सिंह की सवारी और चार भुजावाली भी देखने में आती है। एवं श्रीपाल रास में सिंहारूढा मानी है।

३ रूपमंडन और वसुनंदिकृत प्रतिष्ठासार में बारह और चार भुजावाली भी मानी हैं—आठ भुजा में चक्र, दो भुजा में वज्र, एक भुजा में बीजोरा और एक में वरदान। चार भुजावाली में ऊपर के दोनों हाथों में चक्र और नीचे के दो हाथ वरदान और बीजोरा युक्त माना है।

दूसरे अजितनाथ और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

द्वितीयमजितस्वामिनं हेमाभं गजलाञ्छनं रोहिणीजातं वृषराशिं चेति। तथा तत्तीर्थोत्पन्नं महायक्षाभिधानं यक्षेश्वरं चतुर्मुखं श्यामवर्णं मातङ्गवाहनमष्टपाणिं वरदमुद्गराक्षसूत्रपाशान्वितदक्षिणपाणिं बीजपूरकाभयाङ्कुशशक्तियुक्तवामपाणिपल्लवं चेति। तथा तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नामजिताभिधानां यक्षिणीं गौरवर्णां लोहासनाधिरूढां चतुर्भुजां वरदपाशाधिष्ठितदक्षिणकरां बीजपूरकाङ्कुशयुक्तवामकरां चेति ॥ २ ॥

दूसरे 'अजितनाथ' नामके तीर्थंकर हैं, उनके शरीर का वर्ण सुवर्ण वर्ण का है, वे हाथी के लांछनवाले हैं, रोहिणी नक्षत्र में जन्म है और वृष राशि है।

उनके तीर्थ में 'महायक्ष' नामका यक्ष चार मुखवाला, कृष्ण वर्ण का, हाथी के उपर सवारी करनेवाला, आठ भुजावाला, दाहिनी चार भुजाओं में वरदान मुद्गर, माला और फांसी को धारण करने वाला, बाँयीं चार भुजाओं में बीजोरा, अभय, अंकुश और शक्ति को धारण करनेवाला है।

उन्हीं अजितनाथदेव के तीर्थ में 'अजिता' (अजितबला) नामकी यक्षिणी गौरवर्णवाली [1]लोहासन पर बैठनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और पाश (फांसी) को धारण करनेवाली, बाँयीं दो भुजाओं में बीजोरा और अंकुश को धारण करनेवाली है ॥ २ ॥

तीसरे संभवनाथ और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा तृतीयं सम्भवनाथं हेमाभं अश्वलाञ्छनं मृगशिरजातं मिथुनराशिं चेति। तस्मिंस्तीर्थे समुत्पन्नं त्रिमुखयक्षेश्वरं त्रिमुखं त्रिनेत्रं श्यामवर्णं मयूरवाहनं षड्भुजं नकुलगदाभययुक्तदक्षिणपाणिं मातुलिङ्गनागाक्षसूत्रान्वितवामहस्तं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां दुरितारिदेवीं गौर-

1 आचारदिनकर में गौ की सवारी माना है। दे० ला० सूरत में जो 'चतुर्विंशतिजिनानंद स्तुति' सचित्र छपी है, उसमें बकरे का वाहन दिया है, वह अशुद्ध मालूम होता है।

वर्णां मेषवाहनां चतुर्भुजां वरदाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणकरां फलाभयान्वित-वामकरां चेति ॥ ३ ॥

तीसरे 'सम्भवनाथ' नामके तीर्थंकर हैं, उनका वर्ण सुवर्ण वर्ण का है, घोड़े के लांछन वाले हैं, जन्म नक्षत्र मृगशिर और मिथुन राशि है।

उनके तीर्थ में 'त्रिमुख' नामका यक्ष, तीन मुख, तीन तीन नेत्रवाला, कृष्ण वर्ण का, मोर की सवारी करनेवाला, छः भुजावाला, दाहिनी तीन भुजाओं में नौला, गदा और अभय को धारण करनेवाला, बाँयीं तीन भुजाओं में बीजोरा, [1]सांप और माला को धारण करनेवाला है।

उन्हीं के तीर्थ में 'दुरितारि' नामकी देवी गौर वर्णवाली, मींढा की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और माला, बाँयीं दो भुजाओं में फल[2] और अभय को धारण करनेवाली है ॥ ३ ॥

चौथे अभिनंदनजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा चतुर्थमभिनन्दनजिनं कनकद्युतिं कपिलाञ्छनं श्रवणोत्पन्नं मकर-राशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नमीश्वरयक्षं श्यामवर्णं गजवाहनं चतुर्भुजं मातुलिङ्गा-क्षसूत्रयुतदक्षिणपाणिं नकुलाङ्कुशान्वितवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां कालिकादेवीं श्यामवर्णां पद्मासनां चतुर्भुजां वरदपाशाधिष्ठित-दक्षिणभुजां नागाङ्कुशान्वितवामकरां चेति ॥ ४ ॥

अभिनंदन नामके चौथे तीर्थंकर हैं, उनके शरीर का वर्ण सुवर्ण वर्ण का है, बंदर का लाञ्छन है, जन्म नक्षत्र श्रवण और मकर राशि है।

उनके तीर्थ में 'ईश्वर' नामके यक्ष कृष्णवर्ण का, हाथी की सवारी करने वाला, चार भुजावाला, दाहिनी दो भुजाओं में बीजोरा और माला, बाँयीं दो भुजाओं में न्यौला और अंकुश को धारण करनेवाला है।

---

१ त्रिषष्टीशलाका पुरुष चरित्र में 'रस्सा' धारण करनेवाला माना है।

२ चतुर्विंशतिजिनेन्द्रचरित्र में 'फणिभृद्' सर्प लिखा है। 'चतुर्विंशतिजिनस्तुति' जो दे० ला० सूरत में सचित्र छपी है उसमें 'फल' के ठिकाने फलक (ढाल) दिया है, वह अशुद्ध है क्योंकि ऐसा सर्वत्र देखने में आता है कि एक हाथ में खड्ग हो तो दूसरे हाथ में ढाल होती है। परन्तु खड्ग न हो तो ढाल भी नहीं होनी चाहिये। ढाल का सम्बन्ध खड्ग के साथ है। ऐसी कई जगह भूल की है।

उनके तीर्थ में 'कालिका' नामकी यक्षिणी कृष्णवर्ण की, पद्म (कमल) पर बैठी हुई, चार भुजावाली दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और फांसी, बाँयीं दो भुजाओं में नाग और अंकुश को धारण करनेवाली है ॥ ४ ॥

पांचवें सुमतिनाथजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा पञ्चमं सुमतिजिनं हेमवर्णं क्रौञ्चलाञ्छनं मघोत्पन्नं सिंहराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नं तुम्बरुयक्षं श्वेतवर्णं गरुडवाहनं चतुर्भुजं वरदशक्तियुतदक्षिणपाणिं नागपाशयुक्तवामहस्तं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां महाकालीं देवीं सुवर्णवर्णां पद्मवाहनां चतुर्भुजां वरदपाशाधिष्ठितदक्षिणकरां मातुलिङ्गाङ्कुशयुक्तवामभुजां चेति ॥ ५ ॥

सुमतिनाथजिन नामके पांचवें तीर्थंकर हैं, उनके शरीर का वर्ण सुवर्ण वर्ण का है, क्रौंच पक्षी का लाञ्छन है, जन्म नक्षत्र मघा और सिंह राशि है।

उनके तीर्थ में 'तुंबरु' नामका यक्ष सफेद वर्ण का, गरुड़ पर सवारी करने वाला, चार भुजावाला, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और शक्ति, [1]बाँयीं दो भुजाओं में नाग और पाश को धारण करनेवाला है।

उनके तीर्थ में 'महाकाली' नामकी देवी सुवर्ण वर्णवाली, कमल का वाहनवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और पाश, बाँयीं दो भुजाओं में बीजोरा और अंकुश को धारण करनेवाली है ॥ ५ ॥

छट्ठे पद्मप्रभजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा षष्ठं पद्मप्रभं रक्तवर्णं कमललाञ्छनं चित्रानक्षत्रजातं कन्याराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नं कुसुमं यक्षं नीलवर्णं कुरङ्गवाहनं चतुर्भुजं फलाभययुक्तदक्षिणपाणिं नकुलाक्षसूत्रयुक्तवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नामच्युतां देवीं श्यामवर्णां नरवाहनां चतुर्भुजां वरदबाणान्वितदक्षिणकरां कार्मुकाभययुतवामहस्तां चेति ॥ ६ ॥

पद्मप्रभ नामके छट्ठे तीर्थंकर हैं, उनके शरीर का वर्ण लालवर्ण का है, कमल का लाञ्छन है, जन्म नक्षत्र चित्रा और कन्या राशि है।

---

१ प्रवचनसारोद्धार आचारदिनकर और त्रिषष्टीचरित्र में बाँयीं दो भुजाओं में शस्त्र गदा और नागपाश माना है।

उनके तीर्थ में 'कुसुम' नामका यक्ष नीलवर्ण का, हरिण की सवारी करने वाला, चार भुजावाला, दाहिनी दो भुजाओं में [1]फल और अभय बाँयीं दो भुजाओं में न्यौला और माला को धारण करनेवाला है।

उनके तीर्थ में 'अच्युता' (श्यामा) नामकी देवी कृष्ण वर्णवाली, पुरुष की सवारी करनेवाली, [2]चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और बाण, बाँयीं दो भुजाओं में धनुष और अभय को धारण करनेवाली है ॥ ६ ॥

सातवें सुपार्श्वजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा सप्तमं सुपार्श्वं हेमवर्णं स्वस्तिकलाञ्छनं विशाखोत्पन्नं तुलाराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नं मातङ्गयक्षं नीलवर्णं गजवाहनं चतुर्भुजं बिल्वपाशयुक्तदक्षिणपाणिं नकुलकाङ्कुशान्वितवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां शान्तादेवीं सुवर्णवर्णां गजवाहनां चतुर्भुजां वरदाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणकरां शूलाभययुतवामहस्तां चेति ॥ ७ ॥

सुपार्श्वजिन नामके सातवें तीर्थंकर हैं, उनके शरीर का वर्ण सुवर्ण वर्ण का है, स्वस्तिक लांछन है, जन्म नक्षत्र विशाखा और तुला राशि है।

उनके तीर्थ में 'मातंग' नामका यक्ष नीलवर्ण का, हाथी की सवारी करने वाला, चार भुजावाला, दाहिनी दो भुजाओं में बिलु फल और पाश (फांसी), बाँयी दो भुजाओं में [3]न्यौला और अंकुश को धारण करनेवाला है।

उनके तीर्थ में 'शान्ता' नामकी देवी सुवर्ण वर्णवाली, हाथी के ऊपर सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और माला, बाँयीं दो भुजाओं में शूली और अभय को धारण करनेवाली है ॥ ७ ॥

---

१ दे० ला० सूरत में छपी हुई च० विं० जि० स्तुति में फल के ठिकाने ढाल बनाया है वह अशुद्ध है।

२ आचारदिनकर में दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और पाश, बाँयीं दो भुजाओं में बीजोरा और अंकुश धारण करना माना है।

३ आचारदिनकर में 'वज्र' लिखा है।

आठवें चंद्रप्रभजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथाष्टमं चन्द्रप्रभजिनं धवलवर्णं चन्द्रलाञ्छनं अनुराधोत्पन्नं वृश्चिकराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नं विजययक्षं हरितवर्णं त्रिनेत्रं हंसवाहनं द्विभुजं दक्षिणहस्ते चक्रं वामे मुद्गरमिति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां भृकुटिदेवीं पीतवर्णां वराह (विडाल ?) वाहनां चतुर्भुजां खड्गमुद्गरान्वितदक्षिणभुजां फलकपरशुयुतवामहस्तां चेति ॥ ८ ॥

चंद्रप्रभजिन नामके आठवें तीर्थंकर हैं, उनके शरीर का वर्ण सफेद है, चंद्रमा का लाञ्छन है, जन्म नक्षत्र अनुराधा और वृश्चिक राशि है।

उनके तीर्थ में 'विजय' नामका यक्ष [1]हरावर्ण वाला, तीन नेत्रवाला, हंस की सवारी करनेवाला, दो भुजावाला, दाहिनी भुजा में [2]चक्र और बाँयें हाथ में मुद्गर को धारण करनेवाला है।

उनके तीर्थ में 'भृकुटि' (ज्वाला) नामकी देवी पीले वर्ण की, [3]वराह या बिलाव (?) की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में खड्ग और मुद्गर, बाँयीं दो भुजाओं में ढाल और फरसा को धारण करनेवाली है ॥८॥

नववें सुविधिजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा नवमं सुविधिजिनं धवलवर्णं मकरलाञ्छनं मूलनक्षत्रजातं धनूराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नमजितयक्षं श्वेतवर्णं कूर्मवाहनं चतुर्भुजं मातुलिङ्गाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणपाणिं नकुलकुन्तान्वितवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां सुतारादेवीं गौरवर्णां वृषवाहनां चतुर्भुजां वरदाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणभुजां कलशाङ्कुशान्वितवामपाणिं चेति ॥ ९ ॥

---

१ आचारदिनकर में श्यामवर्ण लिखा है। २ चतु० जि० चरित्र में खड्ग लिखा है।

३ आचारदिनकर प्रवचनसारोद्धार आदि ग्रंथों में 'वराळक' नामके प्राणी विशेष की सवारी माना है। त्रिषष्टि चरित्र में तथा चतु० जि० चरित्र में हंस वाहन लिखा है। दिगंबराचार्य ने महामहिष (भैंसा) की सवारी माना है।

१ आदिनाथ (ऋषभदेव) के शासनदेव और देवी—

२ अजितनाथ के शासनदेव और देवी—
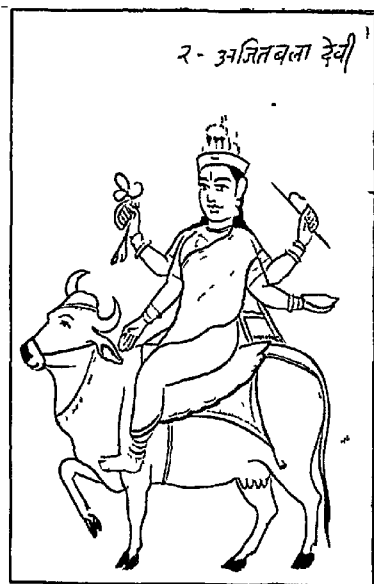
३ संभवनाथ के शासनदेव और देवी–

४ अभिनंदनजिन के शासनदेव और देवी–

५ सुमतिनाथ के शासनदेव और देवी–

६ पद्मप्रभजिन के शासनदेव और देवी–

७ सुपार्श्वजिन के शासनदेव और देवी-

८ चन्द्रप्रभुजिन के शासनदेव और देवी-

सुविधिजिन नामके नववें तीर्थंकर हैं, उनके शरीर का वर्ण सफेद है, मगर का लांछन, जन्म नक्षत्र मूल और धन राशि है।

उनके तीर्थ में 'अजित' नामका यक्ष सफेद वर्ण का, कछुए की सवारी करने वाला, चार भुजावाला दाहिनी दो भुजाओं में बीजोरा और माला, बाँयीं दो भुजाओं में न्यौला और माला को धारण करनेवाला है।

उनके तीर्थ में 'सुतारा' नामकी देवी गौरवर्ण की, वृषभ (बैल) की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और माला; बाँयीं दो भुजाओं में कलश और अंकुश को धारण करनेवाली है ॥ ९ ॥

दशवें शीतलजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा दशमं शीतलनाथं हेमाभं श्रीवत्सलाञ्छनं पूर्वाषाढोत्पन्नं धनूराशिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नं ब्रह्मयक्षं चतुर्मुखं त्रिनेत्रं धवलवर्णं पद्मासनमष्टभुजं मातुलिङ्गमुद्गरपाशाभययुक्तदक्षिणपाणिं नकुलकगदाङ्कुशाक्षसूत्रान्वितवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां अशोकां देवीं मुद्गवर्णां पद्मवाहनां चतुर्भुजां वरदपाशयुक्तदक्षिणकरां फलाङ्कुशयुक्तवामकरां चेति ॥ १० ॥

शीतलजिन नाम के दसवें तीर्थंकर हैं, उनका वर्ण सुवर्ण वर्ण का है, श्रीवत्स का लाञ्छन, जन्म नक्षत्र पूर्वाषाढा और धनु राशि है।

उनके तीर्थ में 'ब्रह्मयक्ष' नाम का यक्ष चार मुखवाला, प्रत्येक मुख तीन २ नेत्रवाला, सफेद वर्ण का, कमल के आसनवाला, आठ भुजा वाला, दाहिने चार हाथों में बीजोरा, मुद्गर, पाश, और अभय; बाँयें चार हाथों में न्यौला, गदा अंकुश और माला को धारण करनेवाला है।

उनके तीर्थ में 'अशोका' नाम की देवी मूंग के वर्णवाली, कमल के आसन वाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और पाश; बाँयीं दो भुजाओं में [1]फल और अंकुश को धारण करनेवाली है ॥ १० ॥

[1] दे० ला० सूरत में छपी हुई च० वि० जि० स्तु० में हाथ बना दिया है, यह अशुद्ध है।

ग्यारहवें श्रेयांसजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथैकादशं श्रेयांसं हेमवर्णं गण्डकलाञ्छनं श्रवणोत्पन्नं मकरराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नमीश्वरयक्षं धवलवर्णं त्रिनेत्रं वृषभवाहनं चतुर्भुजं मातुलिङ्गगदान्वितदक्षिणपाणिं नकुलाक्षसूत्रयुक्तवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां मानवीं देवीं गौरवर्णां सिंहवाहनां चतुर्भुजां वरदमुद्गरान्वितदक्षिणपाणिं कलशाङ्कुशयुक्तवामकरां चेति ॥ ११ ॥

श्रेयांसजिन नाम के ग्यारहवें तीर्थंकर हैं, उनके शरीर का वर्ण सुवर्ण वर्ण का है, खड्गी का लाञ्छन है, जन्म नक्षत्र श्रवण और मकर राशि है।

उनके तीर्थ में 'ईश्वर' नाम का यक्ष सफेद वर्णवाला, तीन नेत्रवाला, बैल की सवारी करनेवाला, चार भुजावाला, दाहिनी दो भुजाओं में बीजोरा और गदा; बाँयीं दो भुजाओं में न्यौला और माला को धारण करनेवाला है।

उनके तीर्थ में 'मानवी' (श्रीवत्सा) नामकी देवी गौरवर्णवाली, सिंह की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और [1]मुद्गर, बाँयीं दो भुजाओं में [2]कलश और अंकुश को धारण करनेवाली है ॥ ११ ॥

बारहवें वासुपूज्यजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा द्वादशं वासुपूज्यं रक्तवर्णं महिषलाञ्छनं शतभिषजि जातं कुम्भराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नं कुमारयक्षं श्वेतवर्णं हंसवाहनं चतुर्भुजं मातुलिङ्गबाणान्वितदक्षिणपाणिं नकुलकधनुर्युक्तवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां प्रचण्डादेवीं श्यामवर्णां अश्वारूढां चतुर्भुजां वरदशक्तियुक्तदक्षिणकरां पुष्पगदायुक्तवामपाणिं चेति ॥ १२ ॥

वासुपूज्यजिन नामके बारहवें तीर्थंकर हैं, उनके शरीर का वर्ण लाल है, भैंसा के लाञ्छनवाले हैं, जन्मनक्षत्र शतभिषा और कुंभराशि है।

उनके तीर्थ में 'कुमार' नाम का यक्ष सफेद वर्णवाला, हंस की सवारी करनेवाला, चार भुजावाला, दाहिनी दो भुजाओं में बीजोरा और बाण को; बांयें दो हाथों में न्यौला और धनुष को धारण करनेवाला है।

१ प्रवचनसारोद्धार में पाश (फांसी) लिखा है। २ त्रिषष्टि ग्रंथ में कुलिश (वज्र) लिखा है।

उनके तीर्थ में 'प्रचण्डा' (प्रवरा) नाम की देवी कृष्ण वर्णवाली, घोड़े पर सवारी करने वाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और शक्ति; बाँयीं दो भुजाओं में पुष्प और गदा को धारण करनेवाली है ॥ १२ ॥

तेरहवें विमलजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा त्रयोदशं विमलनाथं कनकवर्णं वराहलाञ्छनं उत्तरभाद्रपदाजातं मीनराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नं षण्मुखं यक्षं श्वेतवर्णं शिखिवाहनं द्वादशभुजं फलचक्रबाणखड्गपाशाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणपाणिं, नकुलचक्रधनुःफलकाङ्कुशाभययुक्तवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां विदितां देवीं हरितालवर्णां पद्मारूढां चतुर्भुजां बाणपाशयुक्तदक्षिणपाणिं धनुर्नागयुक्तवामपाणिं चेति ॥ १३ ॥

विमलजिन नाम के तेरहवें तीर्थंकर सुवर्ण वर्णवाले हैं, सूअर के लांछनवाले हैं, जन्म नक्षत्र उत्तराभाद्रपदा और मीन राशि है।

उनके तीर्थ में 'षण्मुख' नाम का यक्ष सफेद वर्ण का, मयूर की सवारी करनेवाला, बारह भुजावाला, दाहिनी छः भुजाओं में [1]फल, चक्र, बाण, खड्ग, पाश और माला बाँयीं छः भुजाओं में न्यौला, चक्र, धनुष, ढाल, अंकुश और अभय को धारण करनेवाला है।

उनके तीर्थ में 'विदिता' (विजया) नाम की देवी हरताल के वर्णवाली, कमल के आसनवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में बाण और पाश तथा बांयीं दो भुजाओं में धनुष और सांप को धारण करनेवाली है ॥ १३ ॥

चौदहवें अनन्तजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा चतुर्दशं अनन्तं जिनं हेमवर्णं श्येनलाञ्छनं स्वातिनक्षत्रोत्पन्नं तुलाराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नं पातालयक्षं त्रिमुखं रक्तवर्णं मकरवाहनं षड्भुजं पद्मखड्गपाशयुक्तदक्षिणपाणिं नकुलफलकाक्षसूत्रयुक्तवामपाणिं

१ दे० ला० सूरत में च० विं० जि० स्तुति में यहां भी फल के ठिकाने ढाल दिया है, उसकी भूल है।

चेति । तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां अङ्कुशां देवीं गौरवर्णां पद्मवाहनां चतु-र्भुजां खड्गपाशयुक्तदक्षिणकरां चर्मफलकाङ्कुशयुतवामहस्तां चेति ॥ १४ ॥

अनन्तजिन नाम के चौदहवें तीर्थंकर हैं, उनके शरीर का वर्ण सुवर्ण रंग का है, श्येन (बाज) पक्षी के लाञ्छनवाले, जन्म नक्षत्र स्वाति और तुला राशि वाले हैं।

उनके तीर्थ में 'पाताल' नाम का यक्ष, तीन मुखवाला, लाल वर्णवाला, मगर के वाहनवाला, छः भुजावाला, दाहिनी तीन भुजाओं में कमल, खड्ग और पाश; बाँयीं तीन भुजाओं में न्यौला, ढाल और माला को धारण करनेवाला है।

उन्हीं के तीर्थ में 'अंकुशा' नाम की देवी गौर वर्णवाली, कमल के वाहन वाली, [1] चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में खड्ग और पाश; बाँयें दो भुजाओं में ढाल और अंकुश को धारण करनेवाली है ॥ १४ ॥

पन्द्रहवें धर्मनाथजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा पञ्चदशं धर्मजिनं कनकवर्णं वज्रलाञ्छनं पुष्योत्पन्नं कर्कराशिं चेति । तत्तीर्थोत्पन्नं किन्नरयक्षं त्रिमुखं रक्तवर्णं कूर्मवाहनं षड्भुजं बीज-पूरकगदाभययुक्तदक्षिणपाणिं नकुलपद्माक्षमालायुक्तवामपाणिं चेति । तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां कन्दर्पां देवीं गौरवर्णां मत्स्यवाहनां चतुर्भुजां उत्पलाङ्कुशयुक्तदक्षिणकरां पद्माभययुक्तवामहस्तां चेति ॥ १५ ॥

धर्मनाथजिन नाम के पन्द्रहवें तीर्थंकर हैं, ये सुवर्ण वर्णवाले, वज्र के लाञ्छन-वाले जन्म नक्षत्र पुष्य और कर्क राशिवाले हैं।

उनके तीर्थ में 'किन्नर' नाम का यक्ष, तीन मुखवाला, लाल वर्णवाला, कछुए का वाहनवाला, छः भुजावाला, दाहिनी भुजाओं में बीजोरा, गदा और अभय; बाँयीं हाथों में न्यौला, कमल और माला को धारण करनेवाला है।

उन्हीं के तीर्थ में 'कदर्पा' (पन्नगा) नाम की देवी, गौर वर्णवाली, मछली के वाहनवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में कमल और अंकुश; बाँयीं भुजाओं में पद्म और अभय को धारण करनेवाली है ॥ १५ ॥

१—चतु० वि० त्रि० चरित्र में दाहिने हाथ में ढाल और बाँयें हाथ में अंकुश, इस प्रकार दो हाथवाली माना है।

९ सुविधिजिन के शासनदेव और देवी-

९ - अजित यक्ष

९ - सुतारा देवी

१० शीतलजिन के शासनदेव और देवी-

११ श्रेयांसजिन के शासनदेव और देवी–

११ - ईश्वर यक्ष

११ - मानवी (श्रीवत्सा) देवी

१२ वासुपूज्यजिन के शासनदेव और देवी–

१२ - कुमार यक्ष

१२ - प्रचंडा (प्रवरा) देवी

१३ विमलनाथ के शासनदेव और देवी-

१४ अनन्तनाथ के शासनदेव और देवी-

१५ धर्मनाथ के शासनदेव और देवी—

१६ शान्तिनाथ के शासनदेव और देवी—

सोलहवें शान्तिजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा षोडशं शान्तिनाथं हेमवर्णं मृगलाञ्छनं भरण्यां जातं मेषराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नं गरुडयक्षं वराहवाहनं क्रोडवदनं श्यामवर्णं चतुर्भुजं बीजपूरकपद्मयुक्तदक्षिणपाणिं नकुलाक्षसूत्रवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां निर्वाणीं देवीं गौरवर्णां पद्मासनां चतुर्भुजां पुस्तकोत्पल-युक्तदक्षिणकरां कमण्डलुकमलयुतवामहस्तां चेति ॥ १६ ॥

शान्तिजिन नाम के सोलहवें तीर्थंकर हैं, ये सुवर्ण वर्ण वाले, हरिण के लाञ्छनवाले, जन्मनक्षत्र भरणी और मेष राशिवाले हैं।

उनके तीर्थ में 'गरुड' नाम का यक्ष [1]सूअर के वाहनवाला, सूअर के मुख-वाला, कृष्णवर्णवाला, चार भुजावाला, दाहिनी दो भुजाओं में बीजोरा और कमल, बांयें दो हाथों में न्यौला और माला को धारण करनेवाला है।

उन्हीं के तीर्थ में 'निर्वाणी' नाम की देवी [2]गौरवर्णवाली, कमल के वाहनवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में पुस्तक और कमल; वाँयीं भुजाओं में कमंडलु और कमल को धारणकरनेवाली है ॥ १६ ॥

सत्रहवें कुंथुजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा सप्तदशं कुन्थुनाथं कनकवर्णं छागलाञ्छनं कृत्तिकाजातं वृषभ-राशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नं गन्धर्वयक्षं श्यामवर्णं हंसवाहनं चतुर्भुजं वरद-पाशान्वितदक्षिणभुजं मातुलिङ्गाङ्कुशाधिष्ठितवामभुजं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां बलां देवीं गौरवर्णां मयूरवाहनां चतुर्भुजां बीजपूरकशूलान्वित-दक्षिणभुजां मुषुण्ढिपद्मान्वितवामभुजां चेति ॥ १७ ॥

कुन्थुजिन नाम के सत्रहवें तीर्थंकर हैं, ये सुवर्ण वर्णवाले, बकरे के लाञ्छन-वाले, जन्मनक्षत्र कृत्तिका और वृष राशिवाले हैं।

---

१ त्रिषष्टीशलाका पुरुष चरित्र में 'हाथी' की सवारी लिखा है।

२ आचारदिनकर में सुवर्ण वर्णवाली लिखा है।

उनके तीर्थ में 'गंधर्व' नाम का यक्ष कृष्ण वर्णवाला, हंस के वाहनवाला, चार भुजावाला, दाहिनी भुजाओं में वरदान और पाश, बाँयीं भुजाओं में बीजोरा और अंकुश को धारण करनेवाला है।

उन्हीं के तीर्थ में 'बला' (अच्युता) नाम की देवी [1]गौरवर्णवाली, मोर के वाहनवाली, चार भुजावाली, दाहिने हाथों में बीजोरा और शूली को; बाँयीं हाथों में लोहे की कीले लगी हुई गोल [2]लकड़ी और कमल को धारण करनेवाली है॥ १७॥

अठारहवें अरनाथ और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा अष्टादशमं अरनाथं हेमाभं नन्द्यावर्त्तलाञ्छनं रेवतीनक्षत्रजातं मीनराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नं यक्षेन्द्रयक्षं षण्मुखं त्रिनेत्रं श्यामवर्णं शंख-वाहनं द्वादशभुजं मातुलिंगबाणखड्गमुद्गरपाशाभययुक्तदक्षिणपाणिं नकुल-धनुश्चर्मफलकशूलाङ्कुशाक्षसूत्रयुक्तवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समु-त्पन्नां धारिणीं देवीं कृष्णवर्णां चतुर्भुजां पद्मासनां मातुलिङ्गोत्पलान्वित-दक्षिणभुजां पाशाक्षसूत्रान्वितवामकरां चेति॥ १८॥

अठारहवें 'अरनाथ' नाम के तीर्थंकर हैं, वे सुवर्ण वर्णवाले, नन्दावर्त्त के लाञ्छनवाले, जन्मनक्षत्र रेवती और मीन राशिवाले हैं।

उनके तीर्थ में 'यक्षेन्द्र' नाम का यक्ष छः मुखवाला, प्रत्येक मुख तीन २ नेत्रवाला, कृष्ण वर्णवाला, शंख का वाहनवाला, बारह भुजावाला, दाहिने हाथों में बीजोरा, बाण, खड्ग, मुद्गर पाश और अभय; बांयें हाथों में न्योला, धनुष, ढाल, शूल, अंकुश और माला को धारण करनेवाला है।

उन्हीं के तीर्थ में 'धारिणी' नाम की देवी कृष्ण वर्णवाली, चार भुजावाली, कमल के आसनवाली, दाहिनी भुजाओं में बीजोरा और कमल, बांयीं भुजाओं में [3]पाश और माला को धारण करनेवाली है॥ १८॥

---

१ आ० दि० और प्र० सा० में 'सुवर्ण वर्णवाली' माना है।

२ 'मुषुण्ढी स्याद् दारुमयी वृत्तायःकीलसंचिता' इति हैमकोशे।

३ प्रवचनसारोद्धार त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र और आचारदिनकर में 'पद्म' लिखा है।

उन्नीसवें मल्लिजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथैकोनविंशतितमं मल्लिनाथं प्रियङ्गुवर्णं कलशलाञ्छनं अश्विनीनक्षत्र-जातं मेषराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नं कुबेरयक्षं चतुर्मुखमिन्द्रायुधवर्णं गरुड-वदनं गजवाहनं अष्टभुजं वरदपरशुशूलाभययुक्तदक्षिणपाणिं बीजपूरकश-क्तिमुद्गराक्षसूत्रयुक्तवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां वैरोट्यां देवीं कृष्णवर्णां पद्मासनां चतुर्भुजां वरदाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणकरां मातुलिंग-शक्तियुतवामहस्तां चेति ॥ १६ ॥

मल्लिनाथ नामके उन्नीसवें तीर्थंकर हैं, ये प्रियंगु (हरे) वर्णवाले, कलश के लाञ्छनवाले, जन्मनक्षत्र, अश्विनी और मेष राशिवाले हैं।

उनके तीर्थ में 'कुबेर' नामका यक्ष चार मुखवाला, इंद्र के आयुध के वर्ण-वाला (पंचरंगी), गरुड़ के जैसा मुखवाला, हाथी की सवारी करनेवाला, आठ भुजा वाला, दाहिनी भुजाओं में वरदान, फरसा, शूल और अभय को; बाँयीं भुजाओं में बीजोरा, शक्ति, मुद्गर और माला को धारण करनेवाला है।

उन्हीं के तीर्थ में 'वैरोट्या' नामकी देवी कृष्ण वर्णवाली, कमल के वाहन वाली, चार भुजा वाली, दाहिने भुजाओं वरदान और माला; बाँयीं भुजाओं में बीजोरा और शक्ति को धारण करनेवाली है ॥ १६ ॥

बीसवें मुनिसुव्रतजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा विंशतितमं मुनिसुव्रतं कृष्णवर्णं कूर्मलाञ्छनं श्रवणजातं मकर-राशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नं वरुणयक्षं चतुर्मुखं त्रिनेत्रं धवलवर्णं वृषभवाहनं जटामुकुटमण्डितं अष्टभुजं मातुलिंगगदाबाणशक्तियुतदक्षिणपाणिं नकुल-कपद्मधनुःपरशुयुतवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां नरदत्तां देवीं गौरवर्णां भद्रासनारूढां चतुर्भुजां वरदाक्षसूत्रयुतदक्षिणकरां बीजपूरक-शूलयुतवामहस्तां चेति ॥ २० ॥

मुनिसुव्रतजिन नामके बीसवें तीर्थंकर हैं, ये कृष्ण वर्णवाले, कछुए के लांछनवाले, जन्म नक्षत्र श्रवण और मकर राशिवाले हैं।

उनके तीर्थ में 'वरुण' नामका यक्ष चार मुखवाला, प्रत्येक मुख तीन २ नेत्र वाला, सफेद[1] वर्णवाला, बैल के वाहनवाला, शिरपर जटा के मुकुट से सुशोभित, आठ भुजावाला, दाहिनी भुजाओं में बीजोरा, गदा, बाण और शक्ति को; बाँयीं भुजाओं में न्योला, कमल[2], धनुष और फरसा को धारण करनेवाला है।

उन्हीं के तीर्थ में 'नरदत्ता' नामकी देवी गौर वर्णवाली[3], भद्रासन पर बैठी हुई, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में वरदान और माला; बाँयीं भुजाओं में बीजोरा और शूल को धारण करनेवाली है ॥ २० ॥

इक्कीसवें नमिजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथैकविंशतितमं नमिजिनं कनकवर्णं नीलोत्पललाञ्छनं अश्विनीजातं मेषराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नं भृकुटियक्षं चतुर्मुखं त्रिनेत्रं हेमवर्णं वृषभवाहनं अष्टभुजं मातुलिङ्गशक्तिमुद्गराभययुक्तदक्षिणपाणिं नकुलपरशुवज्राक्षसूत्रवामपाणिं चेति। नमेर्गान्धारीदेवीं श्वेतां हंसवाहनां चतुर्भुजां वरदखड्गयुक्तदक्षिणभुजद्वयां बीजपूरकुंभ(कुन्त ?)युतवामपाणिद्वयां चेति ॥२१॥

नमिजिन नामके इक्कीसवें तीर्थंकर हैं, ये सुवर्ण वर्णवाले, नील कमल के लांछनवाले, जन्म नक्षत्र अश्विनी और मेष राशिवाले हैं।

उनके तीर्थ में 'भृकुटि' नामका यक्ष चार मुखवाला, प्रत्येक मुख तीन २ नेत्रवाला, सुवर्ण वर्णवाला, बैल का वाहनवाला, आठ भुजावाला, दाहिने हाथों में बीजोरा, शक्ति, मुद्गर और अभय; बाँयीं हाथों में न्योला, फरसा, वज्र और माला को धारण करनेवाला है।

उन्हीं के तीर्थ में 'गांधारी' नामकी देवी सफेद वर्णवाली, हंस के वाहनवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में वरदान और तलवार; बाँयीं भुजाओं में बीजोरा और कुंभकलश (भाला?) को धारण करनेवाली है ॥ २१ ॥

१ प्रवचनसारोद्धार में कृष्णवर्ण लिखा है।

२ त्रि० षि० शि० चरित्र में माला लिखा है।

३ प्रवचनसारोद्धार और आचारदिनकर में सुवर्ण वर्ण लिखा है

१७ कुंथुनाथ के शासनदेव और देवी:-

१७ - गंधर्व यक्ष

१७ बलादेवी

१८ अरनाथ के शासनदेव और देवी:-

१८ - यक्षेन्द्र यक्ष

१८ - धारिणी देवी

१९ मल्लिनाथ के शासनदेव और देवी-

२० मुनिसुव्रताजिन के शासनदेव और देवी-

२१ नमिनाथजिन के शासनदेव और देवी-

२२ नेमिनाथजिन के शासनदेव और देवी-

२२ - गोमेध यक्ष

२२ - अम्बिका देवी

२३ पार्श्वनाथजिनके शासनदेव और देवी-
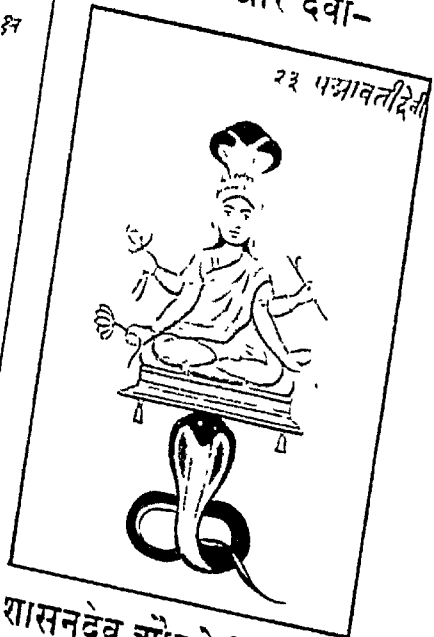
२४ महावीरजिनके शासनदेव और देवी-

बाईसवें नेमिनाथ और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा द्वाविंशतितमं नेमिनाथं कृष्णवर्णं शङ्खलाञ्छनं चित्राजातं कन्याराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नं गोमेधयक्षं त्रिमुखं श्यामवर्णं पुरुषवाहनं षड्भुजं मातुलिङ्गपरशुचक्रान्वितदक्षिणपाणिं नकुलकशूलशक्तियुतवामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां कूष्माण्डीं देवीं कनकवर्णां सिंहवाहनां चतुर्भुजां मातुलिङ्गपाशयुक्तदक्षिणकरां पुत्रांकुशान्वितवामकरां चेति ॥ २२ ॥

नेमनाथ जिन बाईसवें तीर्थंकर हैं, ये कृष्ण वर्णवाले, शंख का लांछनवाले, जन्म नक्षत्र चित्रा और कन्या राशिवाले हैं।

उनके तीर्थ में 'गोमेध' नामका यक्ष, तीन मुखवाला, कृष्ण वर्णवाला, पुरुष की सवारी करनेवाला, छः भुजावाला, दाहिनी भुजाओं में बीजोरा, फरसा और चक्र; बाँयें हाथों में न्योला, शूल और शक्ति को धारण करनेवाला है।

उन्हीं के तीर्थ में 'कूष्माण्डी' अपर 'अम्बिका' नामकी देवी, सुवर्ण वर्णवाली, सिंह की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिने हाथों में [1]बीजोरा और पाश; बाँयें हाथों में पुत्र और अंकुश को धारण करनेवाली है ॥ २२ ॥

तेईसवें पार्श्वनाथ और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा त्रयोविंशतितमं पार्श्वनाथं प्रियंगुवर्णं फणिलाञ्छनं विशाखाजातं तुलाराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नं पार्श्वयक्षं गजमुखमुरगफणामण्डितशिरसं श्यामवर्णं कूर्मवाहनं चतुर्भुजं बीजपूरकोरगयुतदक्षिणपाणिं नकुलकाहियुत वामपाणिं चेति। तस्मिन्नेव तीर्थे समुत्पन्नां पद्मावतीं देवीं कनकवर्णां कुक्कुटवाहनां चतुर्भुजां पद्मपाशान्वितदक्षिणकरां फलांकुशाधिष्ठितवामकरां चेति ॥ २३ ॥

पार्श्वनाथ जिन नामके तेईसवें तीर्थंकर हैं, ये प्रियंगु (हरे) वर्णवाले, सांप के लांछनवाले, जन्म नक्षत्र विशाखा और तुला राशि वाले हैं।

---

१ प्रवचनसारोद्धार त्रिषष्टीशलाकापुरुषचरित्र और आचारदिनकर में 'आम्रलुंबी' लिखा है।

उनके तीर्थ में 'पार्श्व' नामका यक्ष हाथी के मुखवाला, शिर पर साँप की फणीवाला, कृष्ण वर्णवाला, कछुए की सवारी करनेवाला, चार भुजावाला, दाहिनी भुजाओं में बीजोरा और [1]साँप; बाँयीं भुजाओं में न्यौला और साँप को धारण करनेवाला है।

उन्हीं के तीर्थ में 'पद्मावती' नामकी देवी सुवर्ण वर्णवाली, [2]मुर्गे की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में कमल और पाश; बाँयीं भुजाओं में फल और अंकुश को धारण करनेवाली है ॥ २३ ॥

चौवीसवें महावीरजिन और उनके यक्ष यक्षिणी का स्वरूप—

तथा चतुर्विंशतितमं वर्द्धमानस्वामिनं कनकप्रभं सिंहलाञ्छनं उत्तराफाल्गुन्यां जातं कन्याराशिं चेति। तत्तीर्थोत्पन्नं मातङ्गयक्षं श्यामवर्णं गजवाहनं द्विभुजं दक्षिणे नकुलं वामे बीजपूरकमिति। तत्तीर्थोत्पन्नां सिद्धायिकां हरितवर्णां सिंहवाहनां चतुर्भुजां पुस्तकाभययुक्तदक्षिणकरां मातुलिङ्गवीणान्वितवामहस्तां चेति ॥ २४ ॥

वर्द्धमान स्वामी (महावीर स्वामी) नामके चौवीसवें तीर्थंकर हैं, ये सुवर्ण वर्णवाले, सिंह के लांछनवाले, जन्म नक्षत्र उत्तराफाल्गुनी और कन्या राशिवाले हैं।

उनके तीर्थ में 'मातंग' नामका यक्ष कृष्ण वर्णवाला, हाथी की सवारी करनेवाला, दो भुजावाला, दाहिने हाथ में न्यौला और बाँयीं हाथ में बीजोरा को धारण करनेवाला है।

उन्हीं के तीर्थ में 'सिद्धायिका' नामकी देवी हरे वर्णवाली, [3]सिंह की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में पुस्तक और अभय, [4]बाँयीं भुजाओं में बीजोरा और वीणा को धारण करनेवाली है ॥ २४ ॥

---

१ आचारदिनकर में 'गदा' लिखा है।

२ प्रवचनसारोद्धार त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र और आचारदिनकर में—'कुर्कुटोरगवाहनां' अर्थात् कुर्कुट जाति के 'सांप' की सवारी लिखा है।

३ च० त्रि० नि० चरित्र में हाथी का वाहन लिखा है।

४ आचारदिनकर में बाँयें हाथों में पाश और कमल धारण करना लिखा है।

सोलह विद्यादेवी का स्वरूप।

प्रथम रोहिणीदेवी का स्वरूप—

आद्यां रोहिणीं धवलवर्णां सुरभिवाहनां चतुर्भुजामक्षसूत्रबाणान्वित-दक्षिणपाणिं शङ्खधनुर्युक्तवामपाणिं चेति ॥ १ ॥

प्रथम 'रोहिणी' नामक विद्यादेवी सफेद वर्णवाली, कामधेनु गौ पर सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में माला और बाण तथा बाँयीं भुजाओं में शंख और धनुष को धारण करनेवाली है ॥ १ ॥

दूसरी प्रज्ञप्तिदेवी का स्वरूप—

प्रज्ञप्तिं श्वेतवर्णां मयूरवाहनां चतुर्भुजां वरदशक्तियुक्तदक्षिणकरां मातुलिंगशक्तियुक्तवामहस्तां चेति ॥ २ ॥

'प्रज्ञप्ति' नामकी विद्यादेवी सफेद वर्णवाली, मोर पर सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और शक्ति तथा बाँयीं भुजाओं में बीजोरा और शक्ति को धारण करनेवाली है ॥ २ ॥

आचारदिनकर में दो हाथवाली माना है, एक हाथ में शक्ति और दूसरे हाथ में कमल धारण करनेवाली माना है।

तीसरी वज्रश्रृङ्खलादेवी का स्वरूप—

वज्रश्रृंखलां शंखावदातां पद्मवाहनां चतुर्भुजां वरदश्रृंखलान्वित-दक्षिणकरां पद्मश्रृंखलाधिष्ठितवामकरां चेति ॥ ३ ॥

'वज्रश्रृंखला' नामकी विद्यादेवी शंख के जैसी सफेद वर्णवाली, कमल के आसनवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और साँकल तथा बाँयीं भुजाओं में कमल और साँकल को धारण करनेवाली है ॥ ३ ॥

आचारदिनकर में सुवर्ण वर्णवाली और दो भुजावाली, एक हाथ में साँकल और दूसरे हाथ में गदा धारण करनेवाली माना है।

चौथी वज्रांकुशी देवी का स्वरूप—

वज्राङ्कुशां कनकवर्णां गजवाहनां चतुर्भुजां वरदवज्रयुतदक्षिणकरां मातुलिङ्गाङ्कुशयुक्तवामहस्तां चेति ॥ ४ ॥

'वज्रांकुशा' नामकी विद्यादेवी सुवर्ण के जैसी कान्तिवाली, हाथी की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी दो भुजाओं में वरदान और वज्र तथा बाँयीं भुजाओं में बीजोरा और अकुश को धारण करनेवाली है ॥ ४ ॥

आचारदिनकर में चार हाथ क्रमशः तलवार, वज्र, ढाल और भाला युक्त माना है।

पांचवीं अप्रतिचक्रादेवी का स्वरूप—

अप्रतिचक्रां तडिद्वर्णां गरुडवाहनां चतुर्भुजां चक्रचतुष्टयभूषितकरां चेति ॥ ५ ॥

'अप्रतिचक्रा' नामकी विद्यादेवी बीजली के जैसी चमकती हुई कान्तिवाली, गरुड की सवारी करनेवाली और चारों ही भुजाओं में चक्र को धारण करनेवाली है ॥ ५ ॥

छट्ठी पुरुषदत्तादेवी का स्वरूप—

पुरुषदत्तां कनकावदातां महिषीवाहनां चतुर्भुजां वरदासियुक्तदक्षिणकरां मातुलिङ्गखेटकयुतवामहस्तां चेति ॥ ६ ॥

'पुरुषदत्ता' नामकी विद्यादेवी सुवर्ण के जैसी कान्तिवाली, भैंस की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में वरदान और तलवार तथा बाँयीं भुजाओं में बीजोरा और ढाल को धारण करनेवाली है ॥ ६ ॥

आचारदिनकर में तलवार और ढाल युक्त दो हाथवाली माना है।

सातवीं कालीदेवी का स्वरूप—

कालीं देवीं कृष्णवर्णां पद्मासनां चतुर्भुजां अक्षसूत्रगदालंकृतदक्षिणकरां वज्राभययुतवामहस्तां चेति ॥ ७ ॥

विद्यादेवियों का स्वरूप—

विद्यादेवियों का स्वरूप–

५ अप्रतिचक्रा देवी

६ पुरुषदत्ता देवी

७ काली देवी

८ महाकाली देवी
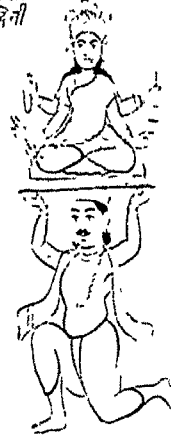
विद्यादेवियों का स्वरूप-

विद्यादेवियों का स्वरूप-

'काली' नामकी विद्यादेवी कृष्ण वर्णवाली, कमल के आसनवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में अक्षमाला और गदा तथा बाँयीं भुजाओं में वज्र और अभय को धारण करनेवाली है ॥ ७ ॥

आचारदिनकर में गदा और वज्रयुक्त दो हाथवाली माना है।

आठवीं महाकालीदेवी का स्वरूप—

महाकालीं देवीं तमालवर्णां पुरुषवाहनां चतुर्भुजां अक्षसूत्रवज्रान्वितदक्षिणकरामभयघण्टालंकृतवामहस्तां चेति ॥ ८ ॥

'महाकाली' नामकी विद्यादेवी तमाखू के जैसी वर्णवाली, पुरुष की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में अक्षमाला और वज्र तथा बाँयीं भुजाओं में अभय और घंटा को धारण करनेवाली है ॥ ८ ॥

आचारदिनकर में सफेद वर्णवाली, दाहिनी भुजाओं में माला और फल तथा बाँयीं भुजाओं में वज्र और घंटा को धारण करनेवाली माना है। किन्तु शोभनमुनिकृत जिनचतुर्विंशति का में 'धृतपविफलाक्षालीघण्टैः करैः' अर्थात् वज्र, फल, माला और घंटा को धारण करनेवाली माना है।

नववीं गौरीदेवी का स्वरूप—

गौरीं देवीं कनकगौरीं गोधावाहनां चतुर्भुजां वरदमुसलयुतदक्षिणकरामक्षमालाकुवलयालंकृतवामहस्तां चेति ॥ ८ ॥

'गौरी' नामकी विद्यादेवी सुवर्ण वर्णवाली, गोह (विषखपरा) की सवारी करनेवाली, चार भुज वाली, दाहिनी भुजाओं में वरदान और मुसल तथा बाँयीं भुजाओं में माला और कमल को धारण करनेवाली है ॥ ९ ॥

आचारदिनकर में सफेद वर्णवाली और कमल को धारण करनेवाली माना है।

दसवीं गांधारीदेवी का स्वरूप—

गांधारीदेवीं नीलवर्णां कमलासनां चतुर्भुजां वरदमुसलयुतदक्षिणकरां अभयकुलिशयुतवामहस्तां चेति ॥ १० ॥

'गांधारी' नामकी दशवीं विद्यादेवी नील (आकाश) वर्णवाली, कमल के आसनवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में वरदान और मुसल तथा बाँयीं भुजाओं में अभय और वज्र को धारण करनेवाली है ॥ १० ॥

आचारदिनकर में कृष्ण वर्णवाली तथा मुसल और वज्र को धारण करनेवाली माना है।

ग्यारहवीं महाज्वालादेवी का स्वरूप—

सर्वास्त्रमहाज्वालां धवलवर्णां वराहवाहनां असंख्यप्रहरणयुतहस्तां चेति ॥ ११ ॥

सर्वास्त्रादेवी नामान्तर 'महाज्वाला' नामकी ग्यारहवीं विद्यादेवी सफेद वर्णवाली, सुअर की सवारी करनेवाली और असंख्य शस्त्र युक्त हाथवाली है ॥ ११ ॥

आचारदिनकर में बिलाव की सवारी करनेवाली और ज्वालायुक्त दो हाथवाली माना है। शोभनमुनिकृत जिनचतुर्विंशतिका में वरालक का वाहन माना है।

बारहवीं मानवीदेवी का स्वरूप—

मानवीं श्यामवर्णां कमलासनां चतुर्भुजां वरदपाशालंकृतदक्षिणकरां अक्षसूत्रविटपालंकृतवामहस्तां चेति ॥ १२ ॥

'मानवी' नामकी बारहवीं विद्यादेवी कृष्ण वर्णवाली, कमल के आसनवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजा वरदान और पाश तथा बाँयीं भुजा माला और वृक्षयुक्त सुशोभित है ॥ १२ ॥

आचारदिनकर में नील वर्णवाली, नीलकमल के आसनवाली और वृक्षयुक्त हाथवाली माना है।

तेरहवीं वैरोट्यादेवी का स्वरूप—

वैरोट्यां श्यामवर्णां अजगरवाहनां चतुर्भुजां खड्गोरगालंकृतदक्षिणकरां खेटकाहियुतवामकरां चेति ॥ १३ ॥

'वैरोट्या' नामकी तेरहवीं विद्यादेवी कृष्ण वर्णवाली, अजगर की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में तलवार और साँप तथा बाँयीं भुजाओं में ढाल और साँप को धारण करनेवाली माना है ॥ १३ ॥

आचारदिनकर में गौरवर्णवाली, सिंह की सवारी करनेवाली, दाहिना एक हाथ तलवारयुक्त और दूसरा हाथ ऊंचा, बाँयां एक हाथ साँपयुक्त और दूसरा वरदानयुक्त माना है।

चौदहवीं अच्छुप्तादेवी का स्वरूप—

अच्छुप्तां तडिद्वर्णां तुरगवाहनां चतुर्भुजां खड्गबाणयुतदक्षिणकरां खेटकाहि[1]युतवामकरां चेति ॥ १४ ॥

'अच्छुप्ता' नामकी चौदहवीं विद्यादेवी बीजली के जैसी कान्तिवाली, घोड़े की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में तलवार और बाण तथा बाँयीं भुजाओं में ढाल और साँप को धारण करनेवाली है ॥ १४ ॥

आचारदिनकर और शोभनमुनिकृत चतुर्विंशति जिनस्तुति में साँप के स्थान पर धनुष धारण करने का माना है।

पंद्रहवीं मानसीदेवी का स्वरूप—

मानसीं धवलवर्णां हंसवाहनां चतुर्भुजां वरदवज्रालंकृतदक्षिणकरां अक्षवलयाशनियुक्तवामकरां चेति ॥ १५ ॥

'मानसी' नामकी पंद्रहवीं विद्यादेवी सफेद वर्णवाली, हंस की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजा वरदान और वज्र तथा बाँयीं भुजा माला और वज्र से अलंकृत है ॥ १५ ॥

आचारदिनकर में सुवर्ण वर्णवाली तथा वज्र और वरदानयुक्त हाथवाली माना है।

---

१ यह पाठ अशुद्ध मालूम होता है, यहां धनुष का पाठ होना चाहिये, क्योंकि बाण के साथ धनुष का संबंध रहता है।

सोलहवीं महामानसीदेवी का स्वरूप—

महामानसीं देवीं धवलवर्णां सिंहवाहनां चतुर्भुजां वरदासियुक्तदक्षिणकरां कुण्डिकाफलकयुतवामहस्तां चेति ॥ १६ ॥

'महामानसी' नामकी सोलहवीं विद्यादेवी सफेद वर्णवाली, सिंह की सवारी करनेवाली, चार भुजावाली, दाहिनी भुजाओं में वरदान और तलवार तथा बाँयीं भुजाओं में कुंडिका और ढाल को धारण करनेवाली माना है ॥ १६ ॥

आचारदिनकर में तलवार और वरदानयुक्त दो हाथ तथा मगर की सवारी माना है।

जय विजयादि चार महा प्रतिहारी देवी का स्वरूप।

"द्वारेषु पूर्वविधिनैव सुवर्णवप्रे,
पाशांकुशाऽभयदमुद्गरपाणयोऽमूः।
देव्यो जयापि विजयाप्यजिताऽपराजि-
ताख्ये च चक्रुरखिलं प्रतिहारकर्म ॥ १ ॥"

पद्मानन्दमहाकाव्ये सर्ग १४ श्लो० ४६

समवसरण के सुवर्णगढ़ के पूर्वादि द्वारों में पाश, अंकुश, अभय और मुद्गर को धारण करनेवाली जया, विजया अजिता और अपराजिता नामकी चार देवी द्वारपाल का कार्य करती हैं।

दिगम्बर जैनशास्त्रानुसार तीर्थंकरो के शासनदेव यक्षों और यक्षिणियों का स्वरूप.

१—गौमुख यक्ष का स्वरूप—

सवोत्तरोर्ध्वकरदीप्रपरश्वधाक्ष-सूत्रं तथाऽधरकराङ्कफलेष्टदानम् ।
प्राग्गोमुखं वृषमुखं वृषगं वृषाङ्क-भक्तं यजे कनकभं वृषचक्रशीर्षम् ॥१॥

वृषभ के चिह्नवाले श्री आदिनाथ जिन के अधिष्ठायिक देव 'गोमुख' नामका यक्ष है वह सुवर्ण के जैसी कांतिवाला, गौके मुख सदृश मुखवाला, बैलकी सवारी करने वाला, मस्तक पर धर्मचक्र को धारण करनेवाला और चार भुजावाला है। ऊपर के दाहिने हाथ में माला और बाँये हाथ में फरसा तथा नीचेके बाँये हाथ में बीजोरे का फल और दाहिने हाथमें वरदान धारण करनेवाला है ॥ १ ॥

१—चक्रेश्वरी (अप्रतिहतचक्रा) देवी का स्वरूप—

भर्माभाद्यकरद्वयालकुलिशा चक्राङ्कहस्ताष्टका,
सव्यासव्यशयोल्लसत्फलवरा यन्मूर्त्तिरास्तेऽम्बुजे ।
तार्क्ष्ये वा सह चक्रयुग्मरुचकत्यागैश्चतुर्भिः करैः,
पञ्चेष्वास शतोन्नतप्रभुनतां चक्रेश्वरीं तां यजे ॥ १ ॥
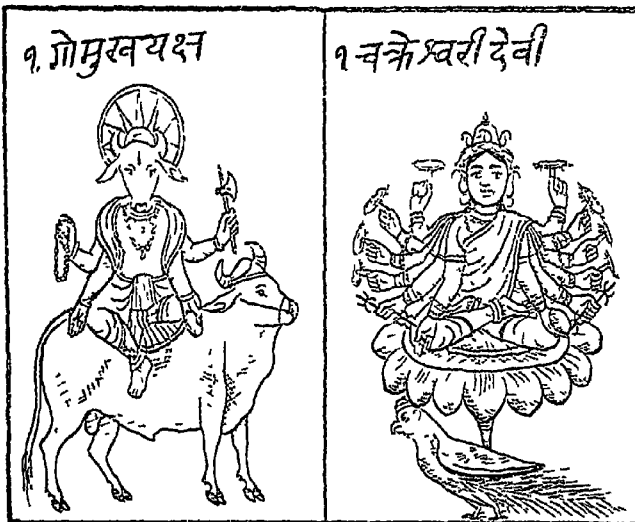
पांचसौ धनुष के शरीर वाले श्रीआदिनाथ जिनेश्वर की शासन देवी 'चक्रेश्वरी' नामकी देवी है। वह सुवर्ण के जैसी वर्ण वाली, कमल के ऊपर बैठी हुई, * गरुड की सवारी करने वाली और बारह भुजावाली है। दो तरफ के दो हाथमें वज्र, दो तरफ के चार २ हाथों में आठ चक्र, नीचे के बांये हाथमें फल और दाहिने हाथमें वरदान को धारण करने वाली है। प्रकारान्तर से चार भुजा वाली भी मानी है, ऊपर के दोनो हाथों में चक्र, नीचे के बांये हाथ में बीजोरा और दाहिने हाथ में वरदान को धारण करनेवाली है ॥ १ ॥

२—महायक्ष का स्वरूप—

चक्रत्रिशूलकमलाङ्कुशवामहस्तो निस्त्रिंशदण्डपरशूव्रवराण्यपाणिः ।
चामीकरद्युतिरिभाङ्कनतो महादि-यक्षोऽर्च्यतो (हि) जगतश्चतुराननोऽसौ ॥ २ ॥

हाथी के चिह्नवाले श्री अजितनाथ जिनेश्वर का शासनदेव 'महायक्ष' नाम का यक्ष है। वह सुवर्ण के जैसी कान्ति वाला, हाथी की सवारी करने वाला, चार मुख वाला और आठ भुजा वाला है। बांये चार हाथों में चक्र, त्रिशूल, कमल और अंकुश को, तथा दाहिने चार हाथों में तलवार, दण्ड, फरसा और वरदान को धारण करनेवाला है ॥ २ ॥
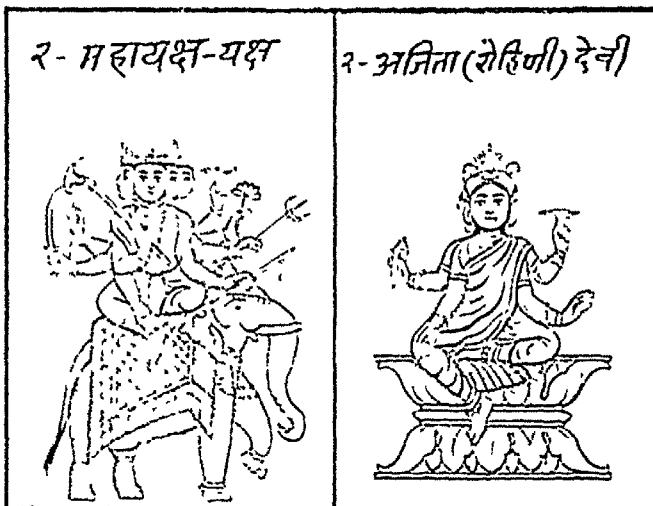
* वसुनंदी प्रतिष्ठासारमें गरुड और कमल का आसन माना है।

२—अजिता (रोहिणी) देवी का स्वरूप—

स्वर्णद्युतिशङ्खरथाङ्गशस्त्रा लोहासनस्थाभयदानहस्ता।
देवं धनुः सार्द्धचतुश्शतोच्चं वन्दारुवीष्ठामिह रोहिणीष्टेः ॥ २ ॥

साढ़े चार सौ धनुप के शरीरवाले श्रीअजितनाथ जिनेश्वर की शासन देवी 'रोहिणी' नाम की देवी है। वह सुवर्ण के जैसी कान्तिवाली, लोहासन पर बैठनेवाली और चार भुजा वाली है। तथा उसके हाथ शंख, चक्र, अभय और वरदान युक्त हैं ॥ २ ॥

३—त्रिमुख यक्ष का स्वरूप—

चक्रासिसृण्युपगसव्यसयोऽन्यहस्तै-र्दण्डत्रिशूलमुपयन् शितकर्त्तिकां च,
वाजिध्वजप्रभुनतः शिखिगोऽञ्जनाभ-स्त्र्यक्षःप्रतीक्षतु बलिं त्रिमुखाख्ययक्षः ॥३॥

घोड़े के चिह्नवाले श्रीसंभवनाथ के शासन देव 'त्रिमुख' नामका यक्ष है, वह कृष्ण वर्णवाला, मोर की सवारी करनेवाला, तीन २ नेत्र युक्त तीन मुखवाला और छह भुजावाला है। बाँये हाथों में चक्र, तलवार और अंकुश को तथा दाहिने हाथों में दंड, त्रिशूल और तीक्ष्ण कतरनी को धारण करने वाला है।

३—प्रज्ञप्ति (नम्रा) देवी का स्वरूप—

पक्षिस्थार्द्धेन्दुपरशु-फलासीढीवरैः सिता।
चतुश्चापशतोच्चार्हद्-भक्ता प्रज्ञप्तिरिज्यते ॥ ३ ॥
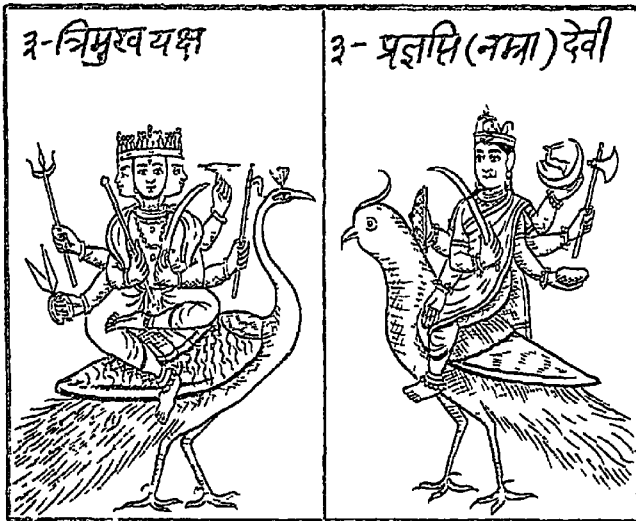
चार सौ धनुष के शरीर वाले श्रीसंभवनाथ की शासनदेवी 'प्रज्ञप्ति' नामकी देवी है। वह सफेद वर्णवाली, पक्षी की सवारी करनेवाली और छह हाथवाली है। हाथों में अर्द्धचंद्रमा, फरशा, फल, तलवार, इट्टी * (तुम्बी?) और वरदान को धारण करनेवाली है ॥ ३ ॥

४—यक्षेश्वर यक्ष का स्वरूप—

प्रेङ्खद्धनुःखेटकवामपाणिं, सकङ्कपत्रास्यपसव्यहस्तम्।
श्यामं करिस्थं कपिकेतुभक्तं, यक्षेश्वरं यक्षमिहार्चयामि ॥ ४ ॥

वानरके चिह्नवाले श्रीअभिनन्दन जिन के शासनदेव 'यक्षेश्वर' नामका यक्ष है, वह कृष्णवर्णवाला, हाथी की सवारी करनेवाला, और चार भुजावाला है। बाँये हाथों में धनुष और ढालको तथा दाहिने हाथों में बाण और तलवार को धारण करनेवाला है ॥ ४ ॥

४—वज्रशृंखला (दुरितारी) देवी का स्वरूप—

सनागपाशोरुफलाक्षसूत्रा हंसाधिरूढा वरदानुयुक्ता।
हेमप्रभार्द्धत्रिधनुःशतोच्च-तीर्थेशनम्रा पविशृङ्खलार्च्या ॥ ४ ॥

साढ़े तीन सौ धनुष के शरीर वाले श्रीअभिनंदन जिन की शासनदेवी 'वज्रशृंखला' नाम की देवी है, सुवर्ण के जैसी कान्तिवाली, हंसकी सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है। हाथों में नागपाश, बीजोराफल, माला और वरदान को धारण करनेवाली है ॥ ४ ॥

* प्रतिष्ठातिलकमें 'पिंडी' लिखा है।

५—तुम्बरु यक्ष का स्वरूप—

सर्पोपवीतं द्विकपन्नगोर्ध्व-करं स्फुरद्दानफलान्यहस्तम् ।
कोकाङ्कनम्रं गरुडाधिरूढं श्रीतुम्बरं श्यामरुचिं यजामि ॥ ५ ॥

चकवे के चिह्नवाले श्रीसुमतिनाथ के शासन देव 'तुंबरु' नामका यक्ष है । वह कृष्ण वर्णवाला, गरुड की सवारी करनेवाला, सर्पका यज्ञोपवीत (जनेऊ) को धारण करनेवाला, और चार भुजावाला है । इसके ऊपर के दोनों हाथों में सर्प को, नीचे के दाहिने हाथ में वरदान और बाँये हाथ में फल को धारण करनेवाला है ॥ ५ ॥

५—पुरुषदत्ता (खड्गवरा) देवी का स्वरूप—

गजेन्द्रगा वज्रफलोग्रचक्र-वराङ्गहस्ता कनकोज्ज्वलाङ्गी ।
गृह्णातु दण्डत्रिशतोन्नतार्हन् नतार्चनां खड्गवराच्र्यने त्वम् ॥ ५ ॥

तीन सौ धनुष शरीर के प्रमाणवाले श्री सुमतिनाथ की शासन देवी 'खड्गवरा' (पुरुषदत्ता) नामकी देवी है । वह सुवर्ण के वर्णवाली, हाथी की सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है । हाथों में वज्र, फल, चक्र और वरदान को धारण करनेवाली है ।
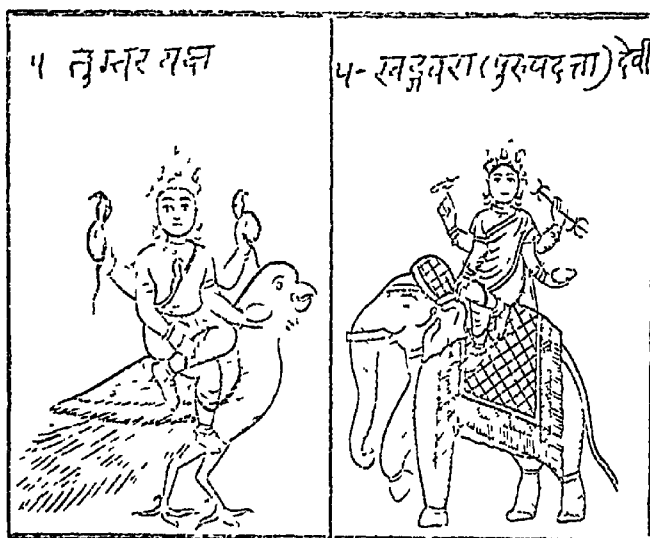
६—पुष्प यक्ष का स्वरूप—

मृगारूढं कुन्तवरापसव्य-करं सखेटाऽभयसव्यहस्तम् ।
श्यामाङ्गमब्जध्वजदेवसेव्यं पुष्पाख्ययक्षं परितर्पयामि ॥ ६ ॥

कमल के चिह्नवाले श्रीपद्मप्रभजिन के शासन देव 'पुष्प' नामका यक्ष है। वह कृष्ण वर्णवाला, हरिण की सवारी करनेवाला और चार * भुजावाला है। दाहिने हाथों में भाला और वरदान को, तथा बाँये हाथों में ढाल और अभय को धारण करनेवाला है ॥ ६ ॥

६—मनोवेगा (मोहनी) देवी का स्वरूप—

तुरङ्गवाहना देवी मनोवेगा चतुर्भुजा ।
वरदा काञ्चनछाया सोल्लासिफलकायुधा ॥ ६ ॥

पद्मप्रभ जिनकी शासनदेवी 'मनोवेगा' (मोहिनी) नामकी देवी है। वह सुवर्ण वर्णवाली, घोड़े की सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है। हाथों में वरदान, तलवार, ढाल और फल को धारण करनेवाली है ॥ ६ ॥
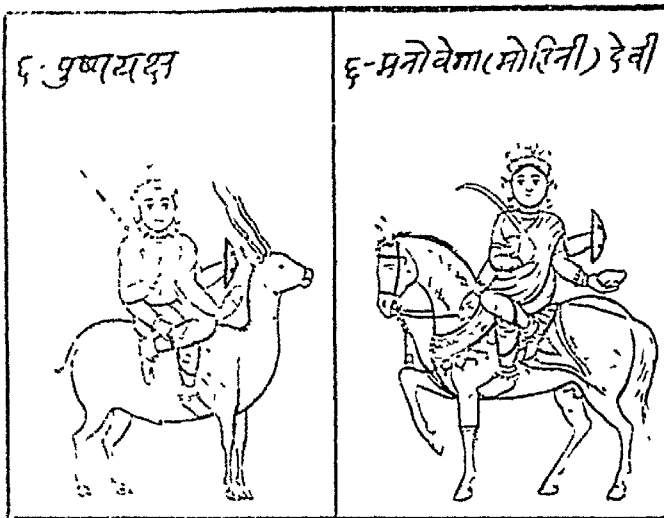
७—मातंग यक्ष का स्वरूप—

सिंहाधिरोहस्य सदण्डशूल-सव्यान्यपाणेः कुटिलाननस्य ।
कृष्णात्विषः स्वास्तिककेतुभक्ते-र्मातङ्गयक्षस्य करोमि पूजाम् ॥ ७ ॥

स्वस्तिक के चिह्नवाले श्रीसुपार्श्वनाथ के शासनदेव 'मातंग' नामका यक्ष है वह कृष्ण वर्णवाला, सिंह की सवारी करनेवाला, कुटिल (टेढा) मुखवाला, दाहिने हाथ में त्रिशूल और बांये हाथ में दंड को धारण करनेवाला है।

---

* वसुनंदि प्रतिष्ठा कल्प में दो भुजावाला माना है।

७—काली (मानवी) देवी का स्वरूप—

सितां गोवृषगां घण्टां फलशूलवरावृताम्।
यजे कालीं द्विको दण्ड-शतोच्छ्रायजिनाश्रयाम् ॥ ७ ॥

दो सौ धनुष के शरीरवाले श्रीसुपार्श्वनाथ की शासनदेवी 'काली' (मानवी) नामकी देवी है। वह सफेद वर्णवाली, बैलकी सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है। हाथों में घंटा, फल, त्रिशूल और वरदान को धारण करनेवाली है ॥ ७ ॥
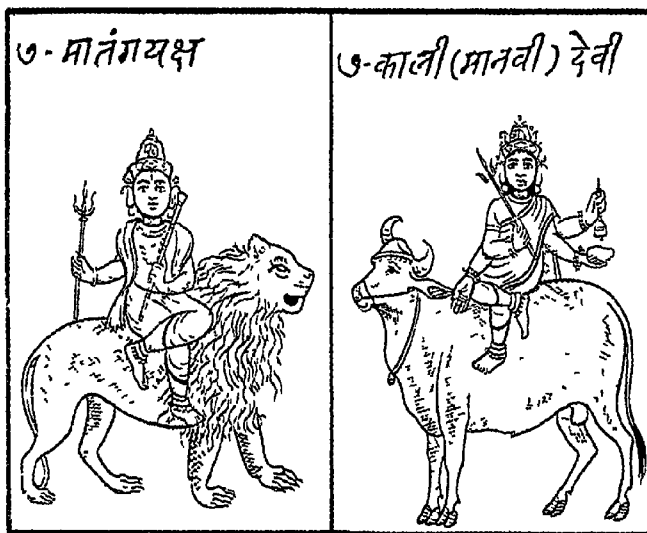
८—श्याम यक्ष का स्वरूप—

यजे स्वधित्युग्रफलाक्षमाला-वराङ्कवामान्यकरं त्रिनेत्रम्।
कपोतपत्रं प्रभयाख्यया च, श्यामं कृतेन्दुध्वजदेवसेवम् ॥ ८ ॥

चंद्रमा के चिह्नवाले श्रीचंद्रप्रभजिन के शासनदेव 'श्याम' नामका यक्ष है। वह कृष्ण वर्णवाला, कपोत (कबूतर) की सवारी करनेवाला, तीन नेत्रवाला और चार भुजावाला है। बाँये हाथों में फरसा और फल को तथा दाहिने हाथों में माला और वरदान को धारण करनेवाला है ॥ ८ ॥

८—ज्वालिनी (ज्वालामालिनी) देवी का स्वरूप—

चन्द्रोज्ज्वलां चक्रशरासपाश-चर्मत्रिशूलेषुझषासिहस्ताम्।
श्रीज्वालिनीं सार्द्धधनुःशतोच्च-जिनानतां कोणगतां यजामि ॥ ८ ॥

उढ सौ धनुष के शरीरवाले श्रीचंद्रप्रभजिन की शासनदेवी 'ज्वालिनी' (ज्वालामालिनी) नामकी देवी है। वह सफेद वर्णवाली, महिष (भैंसा) की सवारी करनेवाली और आठ भुजावाली है हाथों में * चक्र, धनुष, नागपाश, ढाल, त्रिशूल, बाण, मच्छली और तलवार को धारण करनेवाली है ॥ ८ ॥

९.--अजित यक्ष का स्वरूप—

सहाक्षमालावरदानशक्ति-फलापसव्यापरपाणियुग्मः।
स्वारूढकूर्मो मकराङ्कभक्तो गृह्णातु पूजामजितः सिताभः ॥ ९ ॥

मगर के चिह्नवाले श्रीसुविधिनाथ के शासनदेव 'अजित' नामका यक्ष है। वह श्वेत वर्णवाला, कछुआ की सवारी करनेवाला और चार हाथ वाला है। दाहिने हाथों में अक्षमाला और वरदान को तथा बांये हाथों में शक्ति और फल को धारण करनेवाला है ॥ ९ ॥

९.—महाकाली (भृकुटी) देवी का स्वरूप—

कृष्णा कूर्मासना धन्व-शतोन्नतजिनानता।
महाकालीऽयने वज्र-फलमुद्गरदानयुक् ॥ ९ ॥

* हेलाचार्य विरचित ज्वालामालिनी कल्प में आठ हाथों के शस्त्र—त्रिशूल, पाश, मछली, धनुष, बाण, फल, वरदान और चक्र इस प्रकार बतलायें हैं।

एक सौ धनुष के शरीरवाले श्रीसुविधिनाथ जिन की शासनदेवी 'महाकाली' (भृकुटी) नामकी देवी है। वह कृष्ण वर्णवाली, कछुआ की सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है। इस के हाथ वज्र, फल, मुद्गर और वरदान युक्त हैं ॥ ९ ॥

१०—ब्रह्म यक्ष का स्वरूप—

श्रीवृक्षकेतननतो धनुदण्डखेट-वज्राढ्यसव्यसय इन्दुसितोऽम्बुजस्थः ।
ब्रह्मा शरस्वधितिखड्गवरप्रदान-व्यग्रान्यपाणिरुपयातु चतुर्मुखोऽर्चाम् ॥ १० ॥

श्रीवृक्षके चिह्नवाले श्रीशीतलनाथ के शासनदेव 'ब्रह्मा' नामका यक्ष है। वह श्वेतवर्ण वाला, कमल के आसन पर बैठनेवाला, चार मुखवाला और आठ हाथवाला है। बाँयें हाथों में धनुष, दंड, ढाल और वज्र को तथा दाहिने हाथों में बाण, फरसा, तलवार और वरदान को धारण करनेवाला है ॥ १० ॥

१०—मानवी (चामुंडा) देवी का स्वरूप—

झषदामरुचकदानोचितहस्तां कृष्णकालगां हरिताम् ।
नवतिधनुस्तुङ्गजिनप्रणतामिह मानवीं प्रयजे ॥ १० ॥

नवें धनुष के शरीरवाले श्रीशीतलनाथ की शासनदेवी 'मानवी' (चामुंडा) नामकी

देवी है। वह हरे वर्णवाली, काले सुअर की सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है। यह हाथों में मछली, माला, बीजोरा फल और वरदान को धारण करनेवाली है ॥ १० ॥
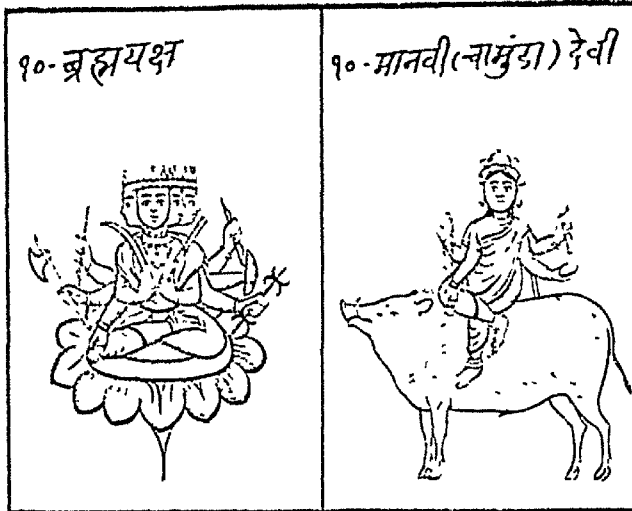
११—ईश्वर यक्ष का स्वरूप—

त्रिशूलदण्डान्वितवामहस्तः करेऽक्षसूत्रं त्वपरे फलं च।
बिभ्रत् सितो गण्डककेतुभक्तो लात्वीश्वरोऽर्चां वृषगस्त्रिनेत्रः ॥ ११ ॥

गेंडा के चिह्नवाले श्रीश्रेयांसनाथ के शासनदेव 'ईश्वर' नामका यक्ष है। वह सफेद वर्णवाला, बैल की सवारी करनेवाला, तीन नेत्रवाला और चार भुजावाला है। बाँयें हाथों में त्रिशूल और दण्ड को, तथा दाहिने हाथों में माला और फल को धारण करनेवाला है ॥ ११ ॥

११—गौरी (गोमेधकी) देवी का स्वरूप—

समुद्गराब्जकलशां वरदां कनकप्रभाम्।
गौरीं यजेऽशीतिधनुः प्राशु देवीं मृगोपगाम् ॥ ११ ॥

अस्सी धनुष के शरीरवाले श्रीश्रेयांसनाथ की शासनदेवी 'गौरी' (गोमेधकी) नाम की देवी है। वह सुवर्ण वर्णवाली, हरिण की सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है। हाथों में मुद्गर, कमल, कलश और वरदान को धारण करनेवाली है ॥ ११ ॥

१२—कुमार यक्ष का स्वरूप—

शुभ्रो धनुर्बभ्रुफलाढ्यसव्य--हस्तोऽन्यहस्तेषुगदेष्टदानः।
लुलायलक्ष्मप्रणतस्त्रिवक्त्रः प्रमोदतां हंसचरः कुमारः ॥ १२ ॥

'भैंसे के चिह्नवाले श्रीवासुपूज्यजिन के शासनदेव 'कुमार' नामका यक्ष है। वह श्वेतवर्णवाला, हंसकी सवारीकरनेवाला, तीन मुखवाला, और छह भुजावाला है। बाँये हाथों में धनुष, नकुल (न्यौला) और फल को, तथा दाहिने हाथों में बाण, गदा और वरदान को धारण करनेवाला है ॥ १२ ॥

१२—गांधारी (विद्युन्मालिनी) देवी का स्वरूप—

सपद्ममुसलाम्भोजदाना मकरगा हरित्।
गांधारी सप्ततीष्वास तुङ्गप्रभुनतार्च्यते ॥ १२ ॥

सत्तर धनुष प्रमाण के शरीरवाले श्रीवासुपूज्यस्वामी की शासन देवी 'गांधारी' (विद्युन्मालिनी) नामकी देवी है। वह हरे वर्णवाली, मगर की सवारी करनेवाली, और चार भुजावाली है। उसके ऊपर के दोनों हाथ कमल युक्त हैं तथा नीचे का दाहिना हाथ वरदान और बायां हाथ मुसल युक्त है ॥ १२ ॥

१३—चतुर्मुख यक्ष का स्वरूप—

यक्षो हरित् सपरशूपरिमाष्टपाणिः, कौक्षेयकाक्षमणिखेटकदण्डमुद्राः ।
बिभ्रच्चतुर्भिरपरैः शिखिगः किराङ्क-नम्रः प्रतृप्यतु यथार्थचतुर्मुखाख्यः ॥ १३ ॥

सुअर के चिह्नवाले श्रीविमलनाथ के शासनदेव 'चतुर्मुख' नामका यक्ष है। वह हरे वर्णवाला, मोरकी सवारी करनेवाला, * चार मुखवाला और बारह भुजावाला है। उपर के आठ हाथों में फरसा को तथा बाकी के चार हाथों में तलवार, माला, ढाल और वरदान को धारण करनेवाला है ॥ १३ ॥

१३—वैरोटी देवी का स्वरूप—

षष्टिदण्डोच्चनीर्धेश-नता गोनसवाहना ।
ससर्पचापसर्पेषु-वैरोटी हरिताऽर्च्यते ॥ १३ ॥

साठ धनुष प्रमाण के शरीरवाले श्रीविमलनाथ की शासनदेवी 'वैरोटी' नामकी देवी है। वह हरे वर्णवाली, साँपकी सवारी करनेवाली, और चार भुजावाली है। उपर के दोनों हाथों सर्प को, नीचे के दाहिने हाथ में बाण और बाँये हाथ में धनुष को धरण करनेवाली है ॥ १३॥

---

* प्रतिष्ठातिलक में छह मुखवाला माना है। यह वास्तव में यथार्थ है क्योंकि बारह भुजा हैं तो छह मुख होने चाहियें।
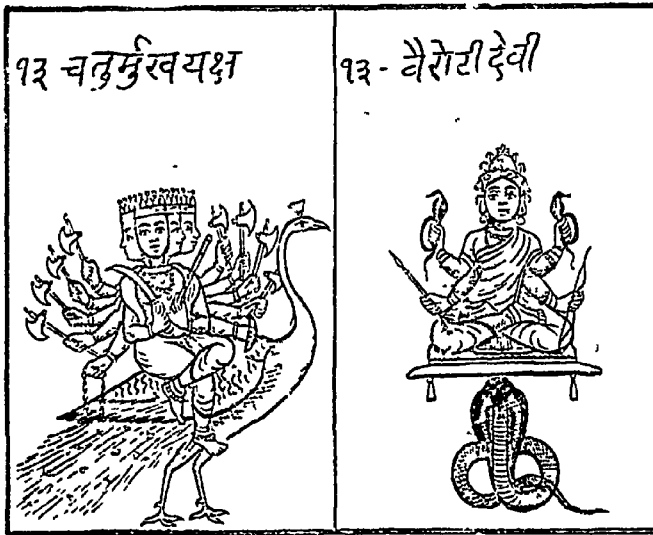
१४--पाताल यक्ष का स्वरूप--

पातालकः सशृणिशूलकजापसव्य-हस्तः कषाहलफलाङ्कितसव्यपाणिः।
सेधाध्वजैकशरणो मकराधिरूढो, रक्तोऽर्च्यतां त्रिफणनागशिरास्त्रिवक्त्रः॥ १४॥

सेहीके चिह्नवाले श्रीअनन्तनाथ के शासन देव 'पाताल' नामका यक्ष है। वह लाल वर्णवाला, मगर की सवारी करनेवाला, तीन मुखवाला, मस्तक पर साँपकी तीनफण को धारण करनेवाला और छह भुजावाला है। दाहिने हाथों में अंकुश, त्रिशूल और कमल को तथा बॉयें हाथोंमें चाबुक, हल और फलको धारण करनेवाला है॥ १४॥

१४--अनन्तमती (विजृंभिणी) देवी का स्वरूप--

हेमाभा हंसगा चाप-फलबाणवरोद्यता।
पञ्चाशच्चापतुङ्गार्हद्-भक्ताऽनन्तमतीज्यते॥ १४॥

पचास धनुप के शरीरवाले श्रीअनन्तनाथ की शासन देवी 'अनन्तमती' (विजृंभिणी) नामकी देवी है। वह सुवर्ण वर्णवाली, हंसकी सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है। यह हाथों में धनुप, बिजोराफल, बाण और वरदान को धारण करनेवाली है॥ १४॥
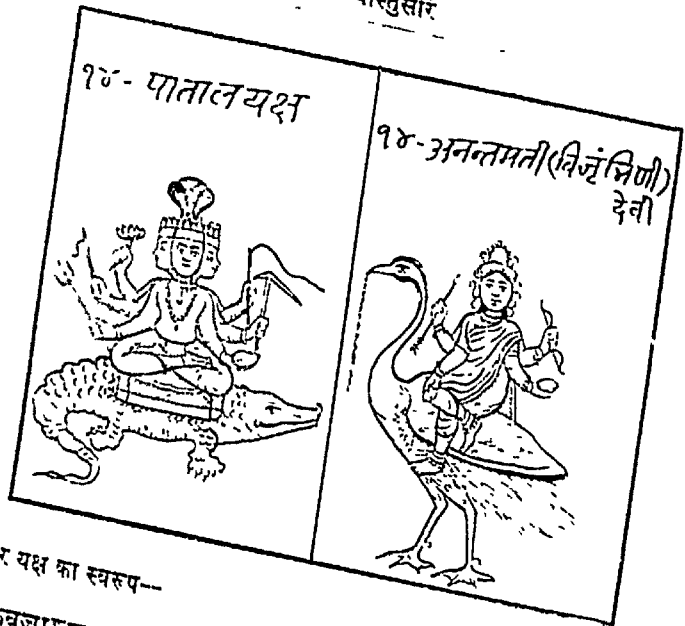
१५--किन्नर यक्ष का स्वरूप--

सचक्रवज्राङ्कुशवामपाणिः, समुद्गराक्षालिवरान्यहस्तः।
प्रवालवर्णस्त्रिमुखो झषस्थो वज्राङ्कभक्तोऽवतु किन्नरोऽर्च्याम् ॥ १५ ॥

वज्र के चिन्हवाले श्रीधर्मनाथ के शासन देव 'किन्नर' नामका यक्ष है। वह प्रवाल (मूँगे) के वर्णवाला, मछली की सवारी करनेवाला, तीन मुखवाला और छह भुजावाला है बांयें हाथोंमें चक्र, वज्र और अंकुश को तथा दाहिने हाथों में मुद्गर, माला और वरदान को धारण करनेवाला है ॥ १५ ॥

१५--मानसी (परभृता) देवी का स्वरूप--

साम्बुजधनुर्दानाङ्कुशशरोत्पला व्याघ्रगा प्रवालनिभा।
नवपञ्चकचापोच्छ्रितजिननम्रा मानसीह मान्येत ॥ १५ ॥

पंतालीस धनुष के शरीर वाले श्रीधर्मनाथ की शासन देवी 'मानसी' (परभृता) नामकी देवी है। वह मूँगेके जैसी लाल कांतिवाली, व्याघ्र (नाहर) की सवारी करनेवाली और छह भुजा वाली है। हाथों में कमल, धनुष, वरदान, अंकुश, बाण और कमल को धारण करनेवाली है ॥१५॥

१६--गरुड यक्ष का स्वरूप--

वक्राननोऽधस्तनहस्तपद्म-फलोऽन्यहस्तार्पितवज्रचक्रः।
मृगध्वजार्हत्प्रणतः सपर्यां, श्यामः किटिस्थो गरुडोऽभ्युपैतु ॥ १६॥

हरिण के चिन्हवाले श्रीशान्तिनाथ के शासन देव 'गरुड' नाम का यक्ष है। वह टेढा मुखवाला (सूअरके मुखवाला) कृष्ण वर्णवाला, सूअर की सवारी करनेवाला और चार भुजा वाला है। नीचेके दोनों हाथों में कमल और फलको, तथा ऊपर के दोनों हाथों में वज्र और चक्रको धारण करनेवाला है॥ १६॥

१६--महामानसी (कन्दर्पा) देवी का स्वरूप—

चक्रफलेढिवराङ्कितकरां महामानसीं सुवर्णाभाम्।
शिखिगां चत्वारिंशद्धनुरुन्नतजिनमतां प्रयजे ॥ १६॥

चालीस धनुष प्रमाण के ऊंचे शरीरवाले श्रीशांतिनाथ की शासनदेवी 'महामानसी' नामकी देवी है। वह सुवर्णवर्णवाली, मयूर की सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है। हाथों में चक्र, फल, ढंढी (?) और वरदान को धारण करनेवाली है॥ १६॥

१७—गंधर्व यक्ष का स्वरूप—

सनागपाशोर्ध्वकरद्वयोऽधः-करद्वयत्तेषुधनुः सुनीलः ।
गन्धर्वयक्षः स्तभकेतुभक्तः पूजामुपैतु श्रितपक्षियानः ॥ १७ ॥

चकरेके चिन्हवाले श्रीकुंथुनाथ के शासनदेव 'गंधर्व' नामका यक्ष है। वह कृष्णवर्ण-वाला, पक्षीकी सवारी करनेवाला और चार भुजावाला है। ऊपर के दोनों हाथों में नागपाश को, तथा नीचे के दो हाथों में क्रमशः धनुष और बाण को धारण करनेवाला है ॥ १७ ॥

१७—जया (गांधारी) देवी का स्वरूप—

सचक्रशङ्खासिवरां रुक्माभां कृष्णकोलगाम् ।
पञ्चत्रिंशद्धनुस्तुङ्गजिननम्रां यजे जयाम् ॥ १७ ॥

पैंतीस धनुष के शरीरवाले श्रीकुंथुनाथ की शासनदेवी 'जया' (गांधारी) नाम की देवी है। वह सुवर्णके वर्णवाली, काले सूअर की सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है। हाथों में चक्र, शंख, तलवार और वरदान को धारण करनेवाली है ॥ १७ ॥

१८—खेन्द्रयक्ष का स्वरूप—

आरभ्योपरिमात्करेषु कलयन् वामेषु चापं पविं,
पाशं मुद्गरमङ्कुशं च वरदं षष्ठेन युञ्जन् परैः ॥
बाणाम्भोजफलस्रगच्छपटली-लीलाविलासांस्त्रिदृक्,
षड्वक्त्रष्टगराङ्कभक्तिरसितः खेन्द्रोऽर्च्यते शङ्खगः ॥ १८ ॥

मछली के चिह्नवाले श्री अरनाथ के शासन देव 'खेन्द्र' नामका यक्ष है। वह कृष्ण वर्णवाला, शंख की सवारी करने वाला, तीन २ नेत्रवाला, ऐसे छह मुखवाला और बारह भुजा वाला है। बांये हाथों में क्रमशः धनुष, वज्र, पाश, मुद्गर, अंकुश और वरदान को तथा दाहिने हाथों में बाण, कमल, बीजोराफल, माला, बडी अक्षमाला और अभय को धारण करनेवाला है ॥१८॥

१८—तारावती (काली) देवी का स्वरूप—

स्वर्णाभां हंसगां सर्प-मृगवज्रवरोद्धुराम् ।
चाये तारावतीं त्रिंशच्चापोच्चप्रभुभाक्तिकाम् ॥ १८ ॥

त्रीश धनुष के शरीरवाले श्री अरनाथ की शासनदेवी 'तारावती' (काली) नामकी देवी है। वह सुवर्ण वर्णवाली, हंसकी सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है। हाथों में सांप, हरिण, वज्र और वरदान को धारण करनेवाली है ॥ १८ ॥

१९- कुबेर यक्ष का स्वरूप—

सफलकधनुर्दण्डपद्मखड्गप्रदरसुपाशवरप्रदाष्टपाणिम् ।
गजगमनचतुर्मुखेन्द्रचापद्युतिकलशाङ्कनतं यजे कुबेरम् ॥ १९ ॥

कलश के चिह्नवाले श्री मल्लिनाथ के शासन देव 'कुबेर' नामका यक्ष है। वह इंद्रके धनुष के जैसे वर्णवाला, हाथी की सवारी करनेवाला, चार मुखवाला और आठ हाथवाला है। हाथों में ढाल, धनुष, दंड, कमल, तलवार, बाण, नागपाश और वरदान को धारण करनेवाला है ॥ १९ ॥

१९.--अपराजिता देवी का स्वरूप—

पञ्चविंशतिचापोच्चदेवसेवापराजिता ।
शरभस्थाच्र्यते खेटफलासिवरयुक् हरित् ॥ १९ ॥

पचीस धनुष के शरीरवाले श्री मल्लिनाथ की शासन देवी 'अपराजिता' नामकी देवी है। वह हरे वर्णवाली, अष्टापद की सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है। हाथों में ढाल, फल, तलवार और वरदान को धारण करनेवाली है।

२०—वरुण यक्ष का स्वरूप—

जटाकिरीटोऽष्टमुखस्त्रिनेत्रो वामान्यखेटासिफलेष्टदानः ।
कूर्माङ्कनम्रो वरुणो वृषस्थः श्वेतो महाकाय उपैतु तृप्तिम् ॥ २० ॥

कछुआ के चिह्नवाले श्री मुनिसुव्रतनाथ के शासन देव 'वरुण' नामका यक्ष है। वह सफेद वर्णवाला, बैल की सवारी करनेवाला, जटा के मुकुटवाला, आठ मुखवाला, प्रत्येक मुख तीन २ नेत्रवाला और चार भुजावाला है। बांये हाथों में ढाल और फल को तथा दाहिने हाथों में तलवार और वरदान को धारण करनेवाला है ॥ २० ॥

२०—बहुरूपिणी देवी का स्वरूप

पीतां विंशतिचापोच्च-स्वामिकां बहुरूपिणीम् ।
यजे कृष्णाहिगां खेटफलखड्गवरोत्तराम् ॥ २० ॥

बीस धनुष के शरीरवाले श्री मुनिसुव्रतजिन की शासन देवी 'बहुरूपिणी' (सुगंधिनी) नामकी देवी है। वह पीले वर्णवाली, काले सांप की सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है। हाथों में ढाल, फल, तलवार और वरदान को धारणकरनेवाली है ॥ २० ॥
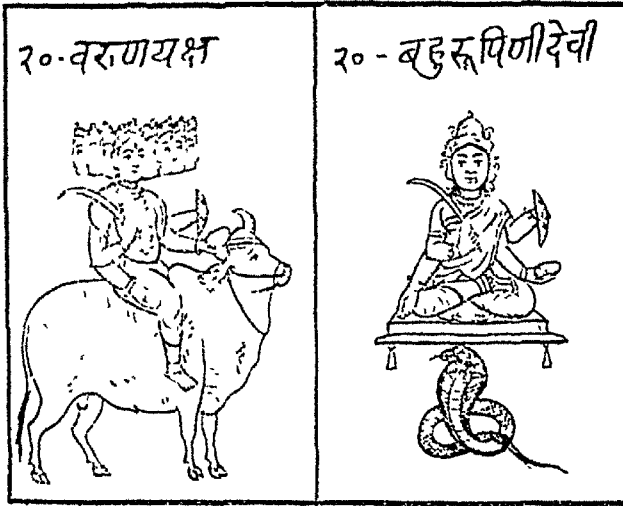
२१—भृकुटी यक्ष का स्वरूप—

खेटासिकोदण्डशराङ्कुशाब्ज–चक्रेष्टदानोल्लसिताष्टहस्तम् ।
चतुर्मुखं नन्दिगमुत्पलाङ्क–भक्तं जपाभं भृकुटिं यजामि ॥ २१ ॥

लाल कमल के चिह्नवाले श्री नमिनाथ के शासन देव 'भृकुटि' नामका यक्ष है। वह लाल वर्णवाला, नन्दी (बैल) की सवारी करनेवाला, चार मुखवाला और आठ हाथवाला है। हाथों में ढाल, तलवार, धनुष, बाण, अंकुश, कमल, चक्र और वरदान को धारण करने वाला है ॥ २१ ॥

२१—चामुंडा (कुसुममालिनी) देवी का स्वरूप—

चामुण्डा यष्टिखेटाक्ष–सूत्रखड्गोत्कटा हरित् ।
मकरस्थार्च्यते पञ्च–दशदण्डोन्नतशभाक् ॥ २१ ॥

पंद्रह धनुष के प्रमाण के ऊंचे शरीरवाले श्री नमिनाथ की शासन देवी 'चामुण्डा' नामकी देवी है। वह हरे वर्णवाली, मगर की सवारी करनेवाली और चार भुजावाली है। हाथों में दंड, ढाल, माला और तलवार को धारण करनेवाली है ॥ २१ ॥

२२—गोमेद यक्ष का स्वरूप—

श्यामस्त्रिवक्त्रो द्रुघणं कुठारं दण्डं फलं वज्रवरौ च बिभ्रत् ।
गोमेदयक्षः क्षितशंखलक्ष्मा पूजां नृवाहोऽर्हतु पुष्पयानः ॥ २२ ॥

शंख के चिह्नवाले श्रीनेमनाथ के शासनदेव 'गोमेद' नामका यक्ष है। वह कृष्ण वर्ण-वाला, तीन मुखवाला, पुष्प के आसनवाला, मनुष्य की सवारी करनेवाला और छह हाथवाला है। हाथों में मुद्गर, फरसा, दंड, फल, वज्र, और वरदान को धारण करनेवाला है ॥ २२ ॥

२२—आम्रा (कुष्माण्डिनी) देवी का स्वरूप—

सव्येकद्युपगप्रियङ्करसुतुकृप्रीत्यै करे बिभ्रतीं,
दिव्याम्रस्तवकं शुभंकरकर-श्लिष्टान्यहस्ताङ्गुलिम् ।
सिंहे भर्तृचरे स्थितां हरितभा-माम्रद्रुमच्छायगां,
वन्दारुं दशकार्मुकोच्छ्रयजिनं देवीमिहाम्रां यजे ॥ २२ ॥

दश धनुष के शरीरवाले श्री नेमनाथ की शासन देवी 'आम्रा' (कुष्माण्डिनी) नाम की देवी है। वह हरे वर्णवाली, सिंह की सवारी करनेवाली, आम की छाया में रहनेवाली,

और दो भुजावाली है। बांये हाथ में प्रियंकर पुत्र की प्रीति के लिये आम की लूम को, तथा दाहिने हाथ में शुभंकर पुत्र को धारण करनेवाली है।

२३—धरण यक्ष का स्वरूप—

ऊर्ध्वाद्विहस्तधृतवासुकिरुद्भटाधः–सव्यान्यपाणिफणिपाशवरप्रणन्ता।
श्रीनागराजककुदं धरणोऽभ्रनीलः, कूर्मश्रितो भजतु वासुकिमौलिरिज्याम्॥ २३॥

नागराज के चिह्नवाले श्रीपार्श्वनाथ भगवान् के शासन देव 'धरण' नामका यक्ष है वह आकाश के जैसे नील वर्णवाला, कछुआ की सवारी करने वाला, मुकुट में सांप का चिह्न वाला और चार भुजावाला है। ऊपर के दोनों हाथों में वासुकि (सर्प) को, नीचे के बांये हाथ में नागपाश को और दाहिने हाथ में वरदान को धारण करनेवाला है॥ २३॥

२३—पद्मावती देवी का स्वरूप—

देवी पद्मावती नाम्ना रक्तवर्णा चतुर्भुजा।
पद्मासनाऽङ्कुशं धत्ते स्वक्षसूत्रं च पङ्कजम्॥
अथवा षड्भुजा देवी चतुर्विंशति: सद्भुजा:।
पाशासिकुन्तबालेन्दु–गदामुसलसंयुतम्॥

भुजाषट्कं समाख्यातं चतुर्विंशतिरुच्यते।
शङ्खासिचक्रबालेन्दु-पद्मोत्पलशरासनम् ॥
शक्तिं पाशाङ्कुशं घण्टां बाणं मुसलखेटकम्।
त्रिशूलं परशुं कुन्तं वज्रं मालां फलं गदाम् ॥
पत्रं च पल्लवं धत्ते वरदा धर्मवत्सला ॥

श्रीपार्श्वनाथ की शासन देवी 'पद्मावती' नामकी देवी है। वह लालवर्णवाली, कमल* के आसनवाली और चार भुजाओं में अंकुश, माला, कमल और वरदान को धारण करनेवाली है। प्रकारांतर से छह और चौवीस भुजावाली भी माना है। छह हाथों में पाश, तलवार, भाला, बालचन्द्रमा, गदा और मुसल को धारण करती है। चौवीस हाथों में क्रमशः—शंख, तलवार, चक्र, बालचन्द्रमा, सफेद कमल, लाल कमल, धनुष, शक्ति, पाश, अंकुश, घंटा, बाण, मूसल, ढाल, त्रिशूल, फरसा, भाला, वज्र, माला, फल, गदा, पान, नवीन पत्तों का गुच्छा और वरदान को धारण करती है ॥ २३ ॥

* आशाधर प्रतिष्ठाकल्प में कुक्कुट सर्प की सवारी करनेवाली और कमल के आसनवाली माना है। मस्तक पर सांप की तीन फणा के चिह्नवाली माना है। मल्लिषेणाचार्यकृत पद्मावतीकल्प में चार हाथों में पाश, फल, वरदान और अंकुश को धारण करनेवाली माना है।

२४—मातंग यक्ष का स्वरूप—

मुद्गप्रभो मूर्द्धनि धर्मचक्रं, बिभ्रत्फलं वामकरेऽथ यच्छन् ।
वरं करिस्थो हरिकेतुभक्तो, मातङ्गयक्षोऽङ्गतु तुष्टिमिष्टया ॥ २४ ॥

सिंह के चिह्नवाले श्रीमहावीरजिन के शासनदेव 'मातंग' नामका यक्ष है। वह मूंग के जैसे हरे वर्णवाला, हाथी की सवारी करनेवाला, मस्तक पर धर्मचक्र को धारण करनेवाला और दो भुजावाला है। बांये हाथ में बीजोराफल, और दाहिने हाथ में वरदान को धारण करनेवाला है ॥ २४ ॥

२४—सिद्धायिका देवी का स्वरूप—

सिद्धायिकां सप्तकरोच्छ्रिताङ्ग-जिनाश्रयां पुस्तकदानहस्ताम् ।
श्रितां सुभद्रासनमत्र यज्ञे, हेमद्युतिं सिंहगतिं यजेहम् ॥ २४ ॥

सात हाथ के ऊंचे शरीरवाले श्रीमहावीरजिन की शासनदेवी 'सिद्धायिका' नामकी देवी है। वह सुवर्णवर्णवाली, भद्रासन पर बैठी हुई, सिंह की सवारी करनेवाली और दो भुजा वाली है। बांया हाथ पुस्तक युक्त और दाहिना हाथ वरदान युक्त है ॥ २४ ॥

दश दिक्पालों का स्वरूप।

१ इंद्र का स्वरूप—

ॐ नमः इन्द्राय तप्तकाञ्चनवर्णाय पीताम्बराय ऐरावणवाहनाय वज्र-हस्ताय पूर्वदिगधीशाय च।

तपे हुए सुवर्ण के वर्ण जैसे, पीले वस्त्रवाले, ऐरावण हाथी की सवारी करनेवाले और हाथ में वज्र को धारण करनेवाले और पूर्व दिशा के स्वामी ऐसे इंद्र को नमस्कार।

२ अग्निदेव का स्वरूप—

ॐ नमः अग्नये आग्नेयदिगधीश्वराय कपिलवर्णाय छागवाहनाय नीलाम्बराय धनुर्बाणहस्ताय च।

अग्नि दिशा के स्वामी, कपिला के वर्ण जैसे (अग्नि वर्णवाले), बकरे की सवारी करनेवाले, नील वर्ण के वस्त्रवाले, [1]हाथ में धनुष और बाण को धारण करनेवाले ऐसे अग्निदेव को नमस्कार।

३ यमदेव का स्वरूप—

ॐ नमो यमाय दक्षिणदिगधीशाय कृष्णवर्णाय चर्मावरणाय महिष-वाहनाय दण्डहस्ताय च।

दक्षिण दिशा के स्वामी, कृष्ण वर्णवाले, चर्म के वस्त्रवाले, भैंसे की सवारी करनेवाले और हाथ में दंड को धारण करनेवाले यमराज को नमस्कार।

४ निर्ऋतिदेव का स्वरूप—

ॐ नमो निर्ऋतये नैर्ऋत्यदिगधीशाय धूम्रवर्णाय व्याघ्रचर्मवृताय मुद्गरहस्ताय प्रेतवाहनाय च।

निर्वाणकलिका में—१ शक्ति को धारण करना माना है।

नैर्ऋत्यकोण के स्वामी, [1]धूम्र के वर्णवाले, व्याघ्रचर्म को पहिरनेवाले, हाथ में [2]मुद्गर को धारण करनेवाले और प्रेत (शव) की सवारी करनेवाले ऐसे निर्ऋति देव को नमस्कार।

५ [3]वरुणदेव का स्वरूप—

ॐ नमो वरुणाय पश्चिमदिगधीश्वराय मेघवर्णाय पीताम्बराय पाश-हस्ताय मत्स्यवाहनाय च।

पश्चिम दिशा के स्वामी, मेघ के जैसे वर्णवाले, पीले वस्त्रवाले हाथ में पाश (फांसी) को धारण करनेवाले और मछली की सवारी करनेवाले ऐसे वरुणदेव को नमस्कार।

६ [4]वायुदेव का स्वरूप—

ॐ नमो वायवे वायव्यदिगधीशाय धूसराङ्गाय रक्ताम्बराय हरिण-वाहनाय ध्वजप्रहरणाय च।

वायुकोण के स्वामी, धूसर (हलका पीला रंग) वर्णवाले, लाल वस्त्रवाले, हरिण की सवारी करनेवाले और हाथ में ध्वजा को धारण करनेवाले ऐसे वायुदेव को नमस्कार।

७ [5]कुबेरदेव का स्वरूप—

ॐ नमो धनदाय उत्तरदिगधीशाय शक्रकोशाध्यक्षाय कनकाङ्गाय श्वेतवस्त्राय नरवाहनाय रत्नहस्ताय च।

उत्तर दिशा के स्वामी, इंद्र के खजानची, सुवर्ण वर्णवाले, सफेद वस्त्रवाले, मनुष्य की सवारी करनेवाले और हाथ में रत्न को धारण करनेवाले ऐसे धनद (कुबेर) देव को नमस्कार।

निर्वाणकलिका में इस प्रकार मतान्तर है—

१ हरित (हरा) वर्णवाले और २ खड्ग को धारण करनेवाले माना है।

३ वरुणदेव सफेद वर्णवाले और मगर की सवारी करनेवाले माना है।

४ वायुदेव भी सफेद वर्ण का माना है।

५ कुबेरदेव नवनिधि पर बैठे हुए, अनेक वर्णवाले, बड़े पेटवाले, हाथ में निचुलक (जल में होनेवाला बेंत) और गदा को धारण करनेवाले माना है।

८ [१]ईशानदेव का स्वरूप—

ॐ नमः ईशानाय ईशानदिगधीशाय श्वेतवर्णाय गजाजिनवृताय वृषभवाहनाय पिनाकशूलधराय च ।

ईशान दिशा के स्वामी, सफेद वर्णवाले, गजचर्म को धारण करनेवाले, बैल की सवारीवाले, हाथ में शिवधनु और त्रिशूल को धारण करनेवाले ऐसे ईशानदेव को नमस्कार ।

९ नागदेव का स्वरूप—

ॐ नमो नागाय पातालाधीश्वराय कृष्णवर्णाय पद्मवाहनाय उरगहस्ताय च ।

पाताललोक के स्वामी, कृष्ण वर्णवाले, कमल के वाहनवाले और हाथ में सर्प को धारण करनेवाले ऐसे नागदेव को नमस्कार ।

१० [२]ब्रह्मदेव का स्वरूप—

ॐ नमो ब्रह्मणे ऊर्ध्वलोकाधीश्वराय काञ्चनवर्णाय चतुर्मुखाय श्वेतवस्त्राय हंसवाहनाय कमलसंस्थाय पुस्तककमलहस्ताय च ।

ऊर्ध्वलोक के स्वामी, सुवर्ण वर्णवाले, चार मुखवाले, सफेद वस्त्रवाले, हंस की सवारी करनेवाले, कमल पर रहनेवाले, हाथ में पुस्तक और कमल को धारण करनेवाले ऐसे ब्रह्मदेव को नमस्कार ।

निर्वाणकलिका के मत से इस प्रकार मतान्तर है—

१ ईशानदेव को तीन नेत्रवाला माना है ।

२ ब्रह्मदेव सफेद वर्णवाले और हाथ में कमंडलु धारण करनेवाले माना है ।

नव ग्रहों का स्वरूप।

१ सूर्य का स्वरूप—

ॐ नमः सूर्याय सहस्रकिरणाय पूर्वदिगधीशाय रक्तवस्त्राय कमल हस्ताय सप्ताश्वरथवाहनाय च।

हजार किरणोंवाले पूर्व दिशा के स्वामी लाल वस्त्रवाले हाथ में कमल को धारण करनेवाले और सात घोड़े के रथ की सवारी करनेवाले सूर्य को नमस्कार।

२ चंद्रमा का स्वरूप—

ॐ नमश्चन्द्राय तारागणाधीशाय वायव्यदिगधीशाय श्वेतवस्त्राय श्वेतदशवाजिवाहनाय सुधाकुम्भहस्ताय च।

ताराओं के स्वामी, वायव्य दिशा के स्वामी, सफेद वस्त्रवाले, सफेद दस घोड़े के रथ की सवारी करनेवाले और हाथ में अमृत के कुंभ को धारण करनेवाले चंद्रमा को नमस्कार।

३ मंगल का स्वरूप—

ॐ नमो मङ्गलाय दक्षिणदिगधीशाय विद्रुमवर्णाय रक्ताम्बराय भूमिस्थिताय कुद्दालहस्ताय च।

दक्षिण दिशा के स्वामी मूंगा के वर्णवाले, लाल वस्त्रवाले, भूमि पर बैठे हुए और हाथ में कुदाल को धारण करनेवाले मंगल को नमस्कार।

४ बुध का स्वरूप—

ॐ नमो बुधाय उत्तरदिगधीशाय हरितवस्त्राय कलहंसवाहनाय पुस्तकहस्ताय च।

निर्वाणकलिका के मत से इस प्रकार मतान्तर है—

१ सूर्य को लाल सिंदूर के वर्णवाला माना है।

२ चंद्रमा के दाहिने हाथ में अक्षसूत्र (माला) और बाँयें हाथ में कुंडी धारण करनेवाला माना है।

३ मंगल के दाहिने हाथ में अक्षसूत्र (माला) और बाँयें हाथ में कुंडी धारण करना माना है।

४ बुध पीले वर्णवाले, हाथों में अक्षसूत्र और कुंडिका माना है।

उत्तर दिशा के स्वामी, हरे वर्णवाले, राजहंस की सवारी करनेवाले और पुस्तक हाथ में रखनेवाले बुध को नमस्कार।

५ गुरु का स्वरूप—

ॐ नमो बृहस्पतये ईशानदिगधीशाय सर्वदेवाचार्याय कांचनवर्णाय पीतवस्त्राय पुस्तकहस्ताय हंसवाहनाय च।

ईशान दिशा के स्वामी, सब देवों का आचार्य, सुवर्ण वर्णवाले, पीले वस्त्र-वाले, हाथ में पुस्तक धारण करनेवाले और हंस की सवारी करनेवाले गुरु को नमस्कार।

६ शुक्र का स्वरूप—

ॐ नमः शुक्राय दैत्याचार्याय आग्नेयदिगधीशाय स्फटिकोज्ज्वलाय श्वेतवस्त्राय कुम्भहस्ताय तुरगवाहनाय च।

दैत्य के आचार्य, आग्नेयकोण का स्वामी, स्फटिक जैसे सफेद वर्णवाले, सफेद वस्त्रवाले, हाथ में घड़े को धारण करनेवाले और घोड़े की सवारी करनेवाले शुक्र को नमस्कार।

७ शनि का स्वरूप—

ॐ नमः शनैश्चराय पश्चिमदिगधीशाय नीलदेहाय नीलाम्बराय परशु-हस्ताय कमठवाहनाय च।

पश्चिम दिशा के स्वामी नील वर्णवाले, नीले वस्त्रवाले, हाथ में फरसा को धारण करनेवाले और कछुए की सवारी करनेवाले शनैश्चर को नमस्कार।

निर्वाणकलिका के मत से इस प्रकार मतान्तर है—

५ गुरु के हाथ में अक्षसूत्र और कुण्डिका माना है।

६ शुक्र के हाथ में अक्षसूत्र और कमण्डलु माना है।

७ शनैश्चर थोड़े कृष्ण वर्णवाले, लम्बे पीले बाल वाले, हाथ में अक्षसूत्र और कमण्डलु को धारण करनेवाले माना है।

८ राहु का स्वरूप—

ॐ नमो राहवे नैर्ऋतदिगधीशाय कज्जलश्यामलाय श्यामवस्त्राय परशुहस्ताय सिंहवाहनाय च ।

नैर्ऋत्य दिशा के स्वामी, काजल जैसे श्याम वर्णवाले, श्याम वस्त्रवाले, हाथ में फरसा को धारण करनेवाले और सिंह की सवारी करनेवाले राहु को नमस्कार ।

९ केतु का स्वरूप—

ॐ नमः केतवे राहुप्रतिच्छन्दाय श्यामाङ्गाय श्यामवस्त्राय पन्नगवाहनाय पन्नगहस्ताय च ।

राहु का प्रतिरूप श्याम वर्णवाले, श्याम वस्त्रवाले, साँप की सवारीवाले और साँप को धारण करनेवाले केतु को नमस्कार ।

आचारदिनकर के मत से क्षेत्रपाल का स्वरूप ।

ॐ नमः क्षेत्रपालाय कृष्णगौरकाञ्चनधूसरकपिलवर्णाय त्रिंशतिभुजदण्डाय बर्बरकेशाय जटाजूटमण्डिताय वासुकीकृतजिनोपवीताय तक्षककृतमेखलाय शेषकृतहाराय नानायुधहस्ताय सिंहचर्मावरणाय प्रेतासनाय कुक्कुरवाहनाय त्रिलोचनाय च ।

कृष्ण, गौर, सुवर्ण, पांडु और भूरे वर्णवाले, बीस भुजावाले, बर्बर केशवाले, बड़ी जटावाले, वासुकी नाग की जनेऊवाले, तक्षकनाग की मेखलावाले, शेषनाग के हारवाले, अनेक प्रकार के शस्त्र को हाथ में धारण करनेवाले, सिंह के चर्म को धारण करनेवाले, प्रेत के आसनवाले, कुत्ते की सवारीवाले और तीन नेत्रवाले ऐसे क्षेत्रपाल को नमस्कार ।

निर्वाणकलिका के मत से इस प्रकार मतान्तर है—

८ राहु अर्द्धकाय से रहित और दोनों हाथ अर्धमुद्रावाले माना है ।

९ केतु हाथ में अक्षसूत्र और कुंडिका धारण करनेवाले माना है ।

निर्वाणकलिका के मत से क्षेत्रपाल का स्वरूप—

क्षेत्रपालं क्षेत्रानुरूपनामानं श्यामवर्णं बर्बरकेशमावृत्तपिङ्गनयनं विकृतदंष्ट्रं पादुकाधिरूढं नग्नं कामचारिणं षड्भुजं मुद्गरपाशडमरुकान्वितदक्षिणपाणिं श्वानाङ्कुशगेडिकायुतवामपाणिं श्रीमद्भगवतो दक्षिणपार्श्वे ईशानाश्रितं दक्षिणाशामुखमेव प्रतिष्ठाप्यम् ।

अपने २ क्षेत्र के नामवाले, श्याम वर्णवाले, बर्बर केशवाले, गोल पीले नेत्रवाले, विरूप बड़े २ दांत वाले, पादुका पर बैठे हुए, नग्न, छः भुजावाले, मुद्गर, फाँसी और डमरू को दाहिने हाथ में और कुत्ता अंकुश और गेडिका (लाठी) को बाँयें हाथ में रखनेवाले, भगवान् की दाहिनी ओर ईशान तरफ दक्षिणाभिमुख स्थापन करना चाहिये ।

माणिभद्र क्षेत्रपाल का स्वरूप—

ढक्काशूलसुदामपाशाङ्कुशखड्गैः । स्वस्करषट्कं युक्तं भात्यायुधवर्गैः ।।

माणिभद्रदेव कृष्ण वर्णवाले, ऐरावण हाथी की सवारी करनेवाले, वराह के मुखवाले, दांत पर जिन मंदिर धारण करनेवाले, छः भुजावाले, दाहिनी भुजाओं में ढाल, त्रिशूल और माला; बाँयीं भुजाओं में नागपाश, अंकुश और तलवार को धारण करनेवाले हैं । ऐसा तपागच्छीय श्री अमृतरत्नसूरि कृत माणिभद्र की आरती में कहा है ।

सरस्वती देवी का स्वरूप—

श्रुतदेवतां शुक्लवर्णां हंसवाहनां चतुर्भुजां वरदकमलान्वितदक्षिणकरां पुस्तकाक्षमालान्वितवामकरां चेति ।

सरस्वती देवी सफेद वर्णवाली, हंस की सवारी करनेवाली, चार [1]भुजावाली, दाहिने हाथों में वरदान और कमल, बाँयें हाथों में पुस्तक और माला को धारण करनेवाली है ।

---

१ आचारदिनकर और सरस्वती के स्तोत्रों में दाहिने हाथों में माला और कमल, बाँयें हाथों में वीणा और पुस्तक को धारण करनेवाली माना है ।

प्रतिष्ठादिक के मुहूर्त्त ।

आरंभसिद्धि, दिनशुद्धि, लग्नशुद्धि, मुहूर्त्त चिन्तामणि, मुहूर्त्त मार्त्तण्ड, ज्योतिष-रत्नमाला और ज्योतिष हीर इत्यादि ग्रंथों के आधार से नीचे के सब मुहूर्त्त लिखे गये हैं।

संवत्सरादिक की शुद्धि—

संवत्सरस्य मासस्य दिनस्यर्क्षस्य सर्वथा ।
कुजवारोज्झिता शुद्धिः प्रतिष्ठायां विवाहवत् ॥ १ ॥

सिंहस्थ गुरु के वर्ष को छोड़कर वर्ष, मास, दिन, नक्षत्र और मंगलवार को छोड़कर दूसरे वार, इन सब की शुद्धि जैसे विवाह कार्य में देखते हैं, उसी प्रकार प्रतिष्ठा कार्य में भी देखना चाहिये ॥ १ ॥

अयन शुद्धि—

गृहप्रवेशत्रिदशप्रतिष्ठा-विवाहचूडाव्रतबन्धपूर्वम् ।
सौम्यायने कर्म शुभं विधेयं यद्गर्हितं तत्खलु दक्षिणे च ॥ २ ॥

गृह प्रवेश, देव की प्रतिष्ठा, विवाह, मुंडन संस्कार और यज्ञोपवितादि व्रत इत्यादि शुभकार्य [1]उत्तरायण में सूर्य हो तब करना शुभ माना है और दक्षिण में सूर्य हो तब ये शुभ कार्य करना अशुभ माना है ॥ २ ॥

मास शुद्धि—

मिग्गसिराइ मासट्ठ चित्तपोसाहिए वि मुत्तु सुहा ।
जइ न गुरु सुक्को वा बालो वुड्ढो अ अत्थमिओ ॥ ३ ।

चैत्र, पौष और अधिक मास को छोड़कर मार्गशिर आदि आठ मास (मार्गशिर, माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ) शुभ हैं। परन्तु गुरु या शुक्र बाल, वृद्ध और अस्त नहीं होने चाहिये ॥ ३ ॥

---

१ मकर आदि छः राशि तक सूर्य उत्तरायण और कर्क आदि छः राशि तक सूर्य दक्षिणायन माना है।

गेहाकारे चेइअ वज्जिज्जा माहमास अगणिभयं ।
सिहरजुअं जिणभुवणे बिंबपवेसो सया भणिओ ॥ ४ ॥
आसाढे वि पइट्ठा कायव्वा केइ सूरिणो भणइ ।
पासायगब्भगेहे विंबपवेसो न कायव्वो ॥ ५ ॥

घरमंदिर का आरम्भ माघ मास में करें तो अग्नि का भय रहे, इसलिये माघ मास में घरमंदिर बनाने का आरम्भ करना अच्छा नहीं। परन्तु शिखरबद्ध मंदिर का आरम्भ और बिम्ब (प्रतिमा) का प्रवेश कराना अच्छा है। आषाढ मास में प्रतिष्ठा करना, ऐसा कोई आचार्य कहते हैं, किन्तु प्रासाद के गर्भगृह (मूलगम्भारा) में बिम्ब प्रवेश नहीं कराना चाहिये ॥ ४ । ५ ॥

तिथि शुद्धि—

छट्ठी रित्तट्ठमी बारसी अ अमावसा गयतिहीओ ।
वुड्ढतिहि कूरदड्ढा वज्जिज्ज सुहेसु कम्मेसु ॥ ६ ॥

छट्ठ, रिक्ता (४-९-१४), आठम, बारस, अमावस, क्षयतिथि, वृद्धितिथि, क्रूरतिथि और दग्धातिथि ये तिथि शुभकार्य में छोड़ना चाहिये ॥ ६ ॥

क्रूर तिथि—

त्रिशश्चतुर्णामपि मेषसिंह-धन्वादिकानां क्रमतश्चतस्रः ।
पूर्णाश्चतुष्कत्रितयस्य तिस्र-स्त्याज्या तिथिः क्रूरयुतस्य राशेः ॥७॥

मेष, सिंह और धन से चार २ राशियों के तीन चतुष्क करना, उनमें प्रथम चतुष्क में प्रतिपदादि चार तिथि और पंचमी, दूसरे चतुष्क में षष्ठी आदि चार तिथि और दशमी, तीसरे चतुष्क में एकादशी आदि चार तिथि और पूर्णिमा इन क्रूर तिथियों में शुभ कार्य वर्जनीय है। उक्त राशि पर सूर्य, मंगल, शनि या राहु आदि कोई पाप ग्रह हो तब क्रूर तिथि माना है अन्यथा नहीं ॥ ७ ॥

क्रूर तिथि यंत्र—

मेष ···	··· १–५	सिंह ···	··· ६–१०	धन	··· ११–१५
वृष ···	··· २–५	कन्या ···	··· ७–१०	मकर	··· १२–१५
मिथुन ···	··· ३–५	तुला ···	··· ८–१०	कुंभ	··· १३–१५
कर्क ···	··· ४–५	वृश्चिक	··· ९–१०	मीन	··· १४–१५

सूर्यदग्धा तिथि—

छग चउ अट्ठमि छट्ठी दसमट्ठमि बार दसमि बीआ उ ।
बारसि चउत्थि बीआ मेसाइसु सूरदड्ढदिणा ॥ ८ ॥

मेष आदि बारह राशियों में सूर्य हो तब क्रम से छठ, चौथ, आठम, छठ, दसम, आठम, बारस, दसम, दूज, बारस, चौथ और दूज ये सूर्यदग्धा तिथि कही जाती हैं ॥ ८ ॥

सूर्यदग्धा तिथि यंत्र—

धनु—मीन संक्रांति में	२	मिथुन—कन्या संक्रांति में	८
वृष— कुंभ ,,	४	सिंह— वृश्चिक ,,	१०
मेष— कर्क ,,	६	तुला— मकर ,,	१२

चन्द्रदग्धा तिथि—

कुंभधणे अजमिहुणे तुलसीहे मयरमीए विसकक्के ।
विच्छियकन्नासु कमा बीआई समतिही उ ससिदड्ढा ॥ ९ ॥

कुंभ और धन का चंद्रमा हो तब दूज, मेष और मिथुन का चंद्र हो तब चौथ, तुला और सिंह का चंद्र हो तब छट्ठ, मकर और मीन का चंद्रमा हो तब आठम, वृष और कर्क का चंद्र हो तब दसम, वृश्चिक और कन्या का चंद्र हो तब बारस, इत्यादिक क्रम से द्वितीयादि सम तिथि चंद्रदग्धा तिथि कही जाती है ॥ ९ ॥

चन्द्रदग्धा तिथि यंत्र—

कुंभ—धन के चंद्र में	२	मकर—मीन के चंद्र में	८
मेष— मिथुन ,,	४	वृष— कर्क ,,	१०
तुला—सिंह ,,	६	वृश्चिक—कन्या ,,	१२

प्रतिष्ठा तिथी—

सियपक्खे पडिवय बीअ पंचमी दसमि तेरसी पुण्णा ।
कसिणे पडिवय बीआ पंचमि सुहया पइट्ठाए ॥ १० ॥

शुक्लपक्ष की एकम, दूज, पांचम, दसम,तेरस और पूनम तथा कृष्णपक्ष की एकम, दूज और पंचमी ये तिथि प्रतिष्ठा कार्य में शुभदायक मानी हैं ॥१० ॥

वार शुद्धि—

आइच्च बुह बिहप्फइ सणिवारा सुंदरा वयग्गहणे ।
विंवपइट्ठाइ पुणो बिहप्फइ सोम बुह सुक्का ॥ ११ ॥

रवि, बुध, बृहस्पति, और शनिवार ये व्रत ग्रहण करने में शुभ माने हैं तथा बिम्ब प्रतिष्ठा में बृहस्पति, सोम, बुध और शुक्र वार शुभ माने हैं ॥ ११ ॥

रत्नमाला में कहा है कि—

तेजस्विनी क्षेमकृदग्निदाह-विधायिनी स्याद्वरदा दृढा च ।
आनंदकृत्कल्पनिवासिनी च, सूर्यादिवारेषु भवेत् प्रतिष्ठा ॥ १२ ॥

रविवार को प्रतिष्ठा करने से प्रतिमा तेजस्वी अर्थात् प्रभावशाली होती है। सोमवार को प्रतिष्ठा करने से कुशल-मंगल करनेवाली, मंगलवार को अग्निदाह, बुधवार को मन वाञ्छित देनेवाली, गुरुवार को दृढ (स्थिर), शुक्रवार को आनंद करनेवाली और शनिवार को की हुई प्रतिष्ठा कल्प पर्यन्त अर्थात् चंद्र सूर्य रहे वहां तक स्थिर रहने वाली होती है ॥ १२ ॥

ग्रहों का उच्चबल—

अजवृषमृगाङ्गनाकुलीरा झषवणिजौ च दिवाकरादितुङ्गाः ।
दशशिखिमनुयुक् तिथीन्द्रियांशै-स्त्रिनवकविंशतिभिश्च तेऽस्तनिचाः ॥१३॥

मेषराशि के प्रथम दश अंश रवि का परमउच्च स्थान, वृषराशि के प्रथम तीन अंश चन्द्रमा का परम उच्च स्थान, मकर के प्रथम अट्ठाईस अंश मंगल का, कन्या के पंद्रह अंश बुध का, कर्क के पांच अंश गुरु का, मीन के सत्ताईस अंश शुक्र का और तुला के प्रथम बीस अंश शनि का परम उच्च स्थान है। उक्त राशियों में कहे हुए ग्रह उच्च हैं और उक्त अंशों में परम उच्च हैं। ये ग्रह अपनी उच्च राशि से सातवीं राशि पर हों तो नीच राशि के माने जाते हैं। अर्थात् सूर्य मेषराशि का उच्च है इससे सातवीं राशि तुला का सूर्य हो तो नीच का माना जाता है। इसमें भी दस अंश तक परम नीच है। इसी प्रकार सब ग्रहों को समझिये ॥ १३ ॥

ग्रहों का स्वाभाविक मित्रबल—

शत्रू मन्दसितौ समश्च शशिजो मित्राणि शेषा रवे-
स्तीक्ष्णांशुर्हिमरश्मिजश्च सुहृदौ शेषाः समाः शीतगोः ।
जीवेन्दूष्णकराः कुजस्य सुहृदो ज्ञोऽरिः सितार्कौ समौ,
मित्रे सूर्यसितौ बुधस्य हिमगुः शत्रुः समाश्चापरे ॥१४॥
सूरेः सौम्यसितावरी रविसुतो मध्योऽपरे स्वन्यथा,
सौम्यार्कौ सुहृदौ समौ कुजगुरू शुक्रस्य शेषावरी ।
शुक्रज्ञौ सुहृदौ समः सुरगुरुः सौरस्य चान्येऽरयो,
ये प्रोक्ताः स्वत्रिकोणभादिषु पुनस्तेऽमी मया कीर्त्तिताः ॥१५॥

सूर्य के शनि और शुक्र शत्रु हैं, बुध समान है और चन्द्रमा, मंगल व बृहस्पति ये मित्र हैं। चन्द्रमा के सूर्य और बुध मित्र हैं तथा मंगल, बृहस्पति, शुक्र और शनि ये समान हैं, शत्रु ग्रह कोई नहीं है। मंगल के सूर्य, चन्द्र और बृहस्पति ये मित्र हैं, बुध शत्रु है और शुक्र व शनि समान हैं। बुध के सूर्य और शुक्र मित्र हैं, चन्द्रमा शत्रु है और मंगल, बृहस्पति व शनि ये समान स्वभाव वाले हैं। गुरु के बुध और शुक्र शत्रु हैं, शनि मध्यम है और सूर्य, चंद्रमा व मंगल मित्र हैं। शुक्र के बुध और शनि मित्र हैं, मंगल और गुरु समान और सूर्य व चंद्रमा शत्रु हैं। शनि के शुक्र और बुध मित्र हैं, बृहस्पति समान और सूर्य, चंद्रमा व मंगल शत्रु हैं। इत्यादिक जो अपने त्रिकोण भवनादि स्थान में कहे हैं, वे मैंने यहां उदाहरण रूप में बतलाये हैं ॥ १४।१५ ॥

ग्रह मैत्री चक्र—

ग्रह	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	चं० मं० बृह०	सूर्य बुध	सू० चं० बृह०	सूर्य शुक्र	सू० चं० मं०	बुध शनि	बुध शुक्र
सम	बुध	मं० बृ० शु० श०	शुक्र शनि	मं० बृ० शनि	शनि	मंगल बृह०	बृहस्पति
शत्रु	शुक्र शनि	०	बुध	चंद्र	बुध शुक्र	सूर्य चंद्र	सू० चं० मं०

ग्रहों का दृष्टिबल—

पश्यन्ति पादतो वृद्ध्या भ्रातृव्योम्नी त्रित्रिकोणके ।
चतुरस्त्रे स्त्रियं स्त्रीवन्मतेनायादिमावपि ॥ १६ ॥

सब ग्रह अपने २ स्थान से तीसरे और दसवें स्थान को एक पाद दृष्टि से, नववें और पांचवें स्थान को दो पाद दृष्टि से, चौथे और आठवें स्थान को तीन पाद दृष्टि से और सातवें स्थान को चार पाद की पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। कोई आचार्य का ऐसा मत है कि—पहले और ग्यारहवें स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। बाकी के दूसरे, छट्ठे और बारहवें स्थान को कोई ग्रह नहीं देखते ॥ १६ ॥

क्या फक्त सातवें स्थान को ही पूर्ण दृष्टि से देखते हैं या कोई अन्य स्थान को भी पूर्ण दृष्टि से देखते हैं? इस विषय में विशेष रूप से कहते हैं—

पश्येत् पूर्णं शनिर्भ्रातृव्योम्नी धर्मधियोर्गुरुः ।
चतुरस्त्रे कुजोऽर्केन्दु-बुधशुक्रास्तु सप्तमम् ॥ १७ ॥

शनि तीसरे और दसवें स्थान को, गुरु नववें और पांचवें स्थान को, मंगल चौथे और आठवें स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखता है। रवि, सोम, बुध और शुक्र ये सातवें स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं ॥ १७ ॥

अर्थात् तीसरे और दसवें स्थान पर दूसरे ग्रहों की एक पाद दृष्टि है, किन्तु शनि की तो पूर्ण दृष्टि है। नववें और पांचवें, चौथे और आठवें और सातवें स्थान पर जैसे अन्य ग्रहों की दो पाद, तीन पाद और पूर्ण दृष्टि है, इसी प्रकार शनि की भी है, इसलिये शनि की एक पाद दृष्टि कोई भी स्थान पर नहीं है। नववें और पांचवें स्थान पर अन्य ग्रहों की दो पाद दृष्टि है, किन्तु गुरु की तो पूर्ण दृष्टि है। जैसे दूसरे ग्रहों की तीसरे और दसवें, चौथे और आठवें और सातवें स्थान पर क्रमशः एक पाद, तीन पाद और पूर्ण दृष्टि है, वैसे गुरु की भी है, इसलिये गुरु की दो पाद दृष्टि कोई स्थान पर नहीं है। चौथे और आठवें स्थान पर अन्य ग्रहों की तीन पाद दृष्टि है, किन्तु मंगल की तो पूर्ण दृष्टि है। जैसे दूसरे ग्रहों की तीसरे और दसवें, नववें और पांचवें और सातवें स्थान पर क्रमशः एक पाद, दो पाद और पूर्ण दृष्टि है, वैसे मंगल की भी है, इसलिये मंगल की तीन पाद दृष्टि कोई भी स्थान पर नहीं है, ऐसा

सिद्ध होता है। रवि, सोम, बुध और शुक्र ये चार ग्रहों की तो सातवें स्थान पर ही पूर्ण दृष्टि होने से दूसरे कोई भी स्थान को पूर्ण दृष्टि से नहीं देखते हैं।

प्रतिष्ठा के नक्षत्र—

मह मिअसिर हत्थुत्तर अणुराहा रेवई सवण मूलं।
पुस्स पुणव्वसु रोहिणि साइ धणिट्ठा पइट्ठाए॥ १८॥

मघा, मृगशीर, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, अनुराधा, रेवती, श्रवण, मूल, पुष्य, पुनर्वसु, रोहिणी, स्वाति और धनिष्ठा ये नक्षत्र प्रतिष्ठा कार्य में शुभ हैं॥ १८॥

शिलान्यास और सूत्रपात के नक्षत्र—

चेइअसुत्तं धुवमिउ कर पुस्स धणिट्ठ सयभिसा साई।
पुस्स तिउत्तर रे रो कर मिग सवणे सिलनिवेसो॥ १९॥

ध्रुवसंज्ञक (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और रोहिणी), मृदुसंज्ञक (मृगशीर, रेवती, चित्रा और अनुराधा), हस्त, पुष्य, धनिष्ठा, शतभिषा और स्वाति इन नक्षत्रों में चैत्य (मन्दिर) का सूत्रपात करना अच्छा है। तथा पुष्य, तीनों उत्तरानक्षत्र, रेवती, रोहिणी, हस्त, मृगशीर और श्रवण इन नक्षत्रों में शिला का स्थापन करना अच्छा है॥ १९॥

प्रतिष्ठाकारक के अशुभ नक्षत्र—

कारावयस्स जम्मरिक्खं दस सोलसं तह ट्ठारं।
तेवीसं पंचवीसं बिंबपइट्ठाइ वज्जिज्जा॥ २०॥

बिम्ब प्रतिष्ठा करनेवाले को अपना जन्मनक्षत्र, दसवाँ, सोलहवाँ, अठारहवाँ, तेवीसवाँ और पचीसवाँ ये नक्षत्र बिम्बप्रतिष्ठा में छोड़ना चाहिये॥ २०॥

बिम्ब प्रवेश नक्षत्र—

सयभिसपुस्स धणिट्ठा मिगसिर धुवमिउ अणहिं सुहवारे।
ससि गुरुसिए उदए गिहे पवेसिज्ज पडिमाओ॥ २१॥

शतभिषा, पुष्य, धनिष्ठा, मृगशीर, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, चित्रा, अनुराधा और रेवती इन नक्षत्रों में, शुभवारों में, चन्द्रमा, गुरु और शुक्र के उदय में प्रतिमा का प्रवेश कराना अच्छा है ॥ २१

जिनबिम्ब करानेवाले धनिक के अनुकूल प्रतिमा स्थापन करते समय नक्षत्र, योनि आदि देखे जाते हैं। कहा है कि—

योनिगणराशिभेदा लभ्यं वर्गश्च नाडीवेधश्च ।
नूतनबिंबविधाने षड्विधमेतद् विलोक्यं ज्ञैः ॥ २२ ॥

योनि, गण, राशिभेद, लेनदेन, वर्ग और नाडिवेध ये छः प्रकार के बल पंडितों को नवीन जिनबिम्ब करवाते समय देखने चाहिये ॥ २२ ॥

नक्षत्रों की योनि—

उडूनां योन्योऽश्व-द्विप-पशु-भुजङ्गा-हि-शुनकौ-
स्व-जा-मार्जारा खुद्वय-वृष-मह-व्याघ्र-महिषाः ।
तथा व्याघ्रै-णै-ए-श्व-कपि-नकुल द्वन्द्व-कपयो,
हरिर्वाजी दन्तावलरिपु-रजः कुञ्जर इति ॥ २३ ॥

अश्विनी नक्षत्र की योनि अश्व, भरणी की हाथी, कृत्तिका की पशु (बकरा) रोहिणी की सर्प, मृगशीर्ष की सर्प, आर्द्रा की श्वान, पुनर्वसु की बिलाव, पुष्य की बकरा, आश्लेषा की बिलाव, मघा की उंदुर, पूर्वाफाल्गुनी की उंदुर, उत्तराफाल्गुनी की गौ, हस्त की महिष, चित्रा की बाघ, स्वाति की महिष, विशाखा की बाघ, अनुराधा की मृग, ज्येष्ठा की मृग, मूल की श्वान, पूर्वाषाढा की वानर, उत्तराषाढा की नकुल, अभिजित् की नकुल, श्रवण की वानर, धनिष्ठा की सिंह, शतभिषा की अश्व, पूर्वाभाद्रपदा की सिंह, उत्तराभाद्रपदा की [1]बकरा और रेवती नक्षत्र की योनि हाथी है ॥ २३ ॥

---

१ अन्य ग्रंथों में गौ योनि लिखा है ।

योनि वैर—

श्वैणं हरीभमहिनभ्रु पशुप्लवंगं, गोव्याघ्रमश्वमहमोतुकमूषिकं च ।
लोकात्तथाऽन्यदपि दम्पतिभर्तृभृत्य-योगेषु वैरमिह वर्ज्यमुदाहरन्ति ॥२४।

श्वान और मृग को, सिंह और हाथी को, सर्प और नकुल को, बकरा और वानर को गौ और बाघ को, घोड़ा और भैंसा को, विलाव और उंदुर को परस्पर वैर है। इस प्रकार लोक में प्रचलित दूसरे वैर भी देखे जाते हैं। यह वैर पति पत्नी, स्वामी सेवक और गुरु शिष्य आदि के सम्बन्ध में छोड़ना चाहिये ॥ २४ ॥

नक्षत्रों के गण—

दिव्यो गणः किल पुनर्वसुपुष्यहस्त-
स्वात्यश्विनीश्रवणपौष्णमृगानुराधाः ।
स्यान्मानुषस्तु भरणी कमलासनर्क्ष-
पूर्वोत्तरात्रितयशंकरदैवतानि । २५ ।
रक्षोगणः पितृभराक्षसवासवैन्द्र-
चित्राद्विदैववरुणाग्निभुजङ्गभानि ।
प्रीतिः स्वयोरति नरामरयोस्तु मध्या,
वैरं पलादसुरयोर्मृतिरन्त्ययोस्तु ॥ २६ ॥

पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, स्वाति, अश्विनी श्रवण, रेवती, मृगशीर्ष और अनुराधा ये नव नक्षत्र देवगणवाले हैं। भरणी, रोहिणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और आर्द्रा ये नव नक्षत्र मनुष्य गण वाले हैं। मघा, मूल, धनिष्ठा ज्येष्ठा, चित्रा, विशाखा, शतभिषा, कृत्तिका और आश्लेषा ये नव नक्षत्र राक्षसगण वाले हैं उनमें एक ही वर्ग में अत्यन्त प्रीति रहे। एक का मनुष्य गण हो और दूसरे का देवगण हो तो मध्यम प्रीति रहे, एक का देवगण हो और दूसरे का राक्षसगण हो तो परस्पर वैर रहे तथा एक का मनुष्यगण हो और दूसरे का राक्षसगण हो तो मृत्यु कारक है ॥ २५ ॥ २६ ॥

राशिकूट—

विसमा अट्ठमे पीई समाउ अट्ठमे रिऊ।
सत्तु छट्टट्ठमं नामरासिहिं परिवज्जए॥
बीयबारसम्मि वज्जे नवपंचमगं तहा।
सेसेसु पीई निद्दिट्ठा जइ दुब्बागहमुत्तमा॥ २७॥

विषम राशि (१-३-५-७-९-११) से आठवीं राशि के साथ मित्रता है, और समराशि (२-४-६-८-१०-१२) से आठवीं राशि के साथ शत्रुता है। एवं विषम राशि से छट्ठी राशि के साथ शत्रुता है और समराशि से छट्ठी राशि मित्र है। इस प्रकार दूजी और बारहवीं तथा नववीं और पांचवीं राशियों के स्वामी के साथ आपस में मित्रता न हो तो उनको भी अवश्य छोड़ना चाहिये। बाकी सप्तम से सप्तम राशि, तीसरी से ग्यारहवीं राशि और दशम चतुर्थ राशि शुभ है॥ २७॥

कितनेक आचार्य राशिकूट का परिहार इस प्रकार बतलाते हैं—

नाडी योनिर्गणास्तारा चतुष्कं शुभदं यदि।
तदौदास्येऽपि नाथानां भकूटं शुभदं मतम्॥ २८॥

यदि नाडी, योनि, गण और तारा ये चारों ही शुभ हों तो राशियों के स्वामी का मध्यस्थपन होने पर भी राशिकूट शुभदायक माना है॥ २८॥

राशियों के स्वामी—

मेषादीशाः कुजः शुक्रो बुधश्चन्द्रो रविर्बुधः।
शुक्रः कुजो गुरुर्मन्दो मन्दो जीव इति क्रमात्॥ २९॥

मेषराशि का स्वामी मंगल, वृष का शुक्र, मिथुन का बुध, कर्क का चंद्रमा, सिंह का रवि, कन्या का बुध, तुला का शुक्र, वृश्चिक का मंगल, धन का गुरु, मकर का शनि, कुंभ का शनि और मिथुन का स्वामी गुरु है। इस प्रकार क्रम से बारह राशियों के स्वामी हैं॥ २९॥

नाडी कूट—

ज्येष्ठार्यम्णेशनीराधिपभयुगयुगं दास्रभं चैकनाडी,
पुष्येन्दुत्वाष्ट्रमित्रान्तकवसुजलभं योनिबुध्न्ये च मध्या ।
वाय्वग्निव्यालविश्वोडुयुगयुगमथो पौष्णभं चापरा स्याद्,
दम्पत्योरेकनाड्यां परिणयनमसन्मध्यनाड्यां हि मृत्युः ॥३०॥

ज्येष्ठा, मूल, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, आर्द्रा, पुनर्वसु, शततारका, पूर्वाभाद्रपद और अश्विनी ये नव नक्षत्रों की आद्य नाडी है। पुष्य, मृगशिर, चित्रा, अनुराधा, भरणी, धनिष्ठा, पूर्वाषाढा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराभाद्रपद ये नव नक्षत्रों की मध्य नाडी है। स्वाति, विशाखा, कृत्तिका, रोहिणी, आश्लेषा, मघा, उत्तराषाढा, श्रवण और रेवती ये नव नक्षत्रों की अन्त्य नाडी है। वर वधू का एक नाडी में विवाह होना अशुभ है और मध्य की एक नाडी में विवाह हो तो मृत्युकारक है ॥ ३० ॥

नाडी फल—

सुअसुहिसेवयसिस्सा घरपुरदेस सुह एगनाडीआ ।
कन्ना पुण परिणीआ हणइ पइं ससुरं सासुं च ॥ ३१ ॥
एकनाडीस्थिता यत्र गुरुर्मन्त्रश्च देवताः ।
तत्र द्वेषं रुजं मृत्युं क्रमेण फलमादिशेत् । ३२ ॥

पुत्र, मित्र, सेवक, शिष्य, घर, पुर और देश ये एक नाडी में हों तो शुभ है। परन्तु कन्या का एक नाडी में विवाह किया जाय तो पति, श्वसुर और सासु का नाशकारक है। गुरु, मंत्र और देवता ये एक नाडी में हों तो शत्रुता, रोग और मृत्यु कारक हैं ॥ ३१ । ३२ ॥

तारा बल—

जनिभान्नवकेषु त्रिषु जनिकर्माधानसञ्ज्ञिताः प्रथमाः ।
ताभ्यस्त्रिपञ्चसप्तमताराः स्युर्न हि शुभाः क्वचन ॥ ३३ ॥

जन्म नक्षत्र या नाम नक्षत्र से आरम्भ करके नव २ की तीन लाइन करनी। इन तीनों में प्रथम २ ताराओं के नाम क्रम से जन्मतारा, कर्मतारा और आधानतारा

जानना। इन तीनों नवकों में तीसरी, पांचवीं और सातवीं तारा कभी भी शुभ नहीं है ॥ ३३ ॥

तारा यंत्र—

जन्म १	संपद्‌ २	विपद् ३	क्षेम ४	यम ५	साधन ६	निधन ७	मैत्री ८	परम मैत्री ९
कर्म १०	,, ११	,, १२	,, १३	,, १४	,, १५	,, १६	,, १७	,, १८
आधान १९	,, २०	,, २१	,, २२	,, २३	,, २४	,, २५	,, २६	,, २७

इन ताराओं में प्रथम, दूसरी और आठवीं तारा मध्यम फलदायक हैं। तीसरी, पांचवीं और सातवीं तारा अधम हैं तथा चौथी, छट्ठी और नववीं तारा श्रेष्ठ हैं। कहा है कि—

ऋक्षं न्यूनं तिथिर्न्यूना क्षपानाथोऽपि चाष्टमः।
तत्सर्वं शमयेत्तारा षट्चतुर्थनवस्थिताः ॥ ३४ ॥

नक्षत्र अशुभ हों, तिथि अशुभ हों और चंद्रमा भी आठवाँ अशुभ हों तो भी इन सब को छट्ठी, चौथी और नववीं तारा हो तो दबा देती है ॥ ३४ ॥

यात्रायुद्धविवाहेषु जन्मतारा न शोभना।
शुभाऽन्यशुभकार्येषु प्रवेशे च विशेषतः ॥ ३५ ॥

यात्रा, युद्ध और विवाह में जन्म की तारा अच्छी नहीं है, किंतु दूसरे शुभ कार्य में जन्म की तारा शुभ है और प्रवेश कार्य में तो विशेष करके शुभ है ॥३५॥

वर्ग बल—

अकचटतपयशवर्गाः खगेशमार्जारसिंहशुनाम्।
सर्पाखुमृगावीनां निजपञ्चमवैरिणामष्टौ ॥ ३६ ॥

अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग और शवर्ग ये आठ वर्ग हैं, उनके स्वामी—अवर्ग का गरुड़, कवर्ग का बिलाव, चवर्ग का सिंह, टवर्ग का

श्वान, तवर्ग का सर्प, पवर्ग का उंदुर, यवर्ग का हरिण और शवर्ग का मींढा (बकरा) है। इन वर्गों में अन्योऽन्य पांचवाँ वर्ग शत्रु होता है ॥ ३६ ॥

लेन देन का विचार—

नामादिवर्गाङ्कमथैकवर्गे, वर्णाङ्कमेव क्रमतोत्क्रमाच्च ।
न्यस्योभयोरष्टहृतावशिष्टे—ऽर्द्धिते विशोपाः प्रथमेन देयाः ॥ ३७ ॥

दोनों के नाम के आद्य अक्षरवाले वर्गों के अंकों को क्रम से समीप रख कर पीछे इसको आठ से भाग देना, जो शेष रहे उसका आधा करना, जो बचे उतने विश्वा प्रथम अंक के वर्गवाला दूसरे वर्ग वाले का करजदार है, ऐसा समझना। इस प्रकार वर्ग के अंकों को उत्क्रम से अर्थात् दूसरे वर्ग के अंक को पहला लिखकर पूर्ववत् क्रिया करना, दोनों में से जिनके विश्वा अधिक हो वह करजदार समझना ॥ ३७ ॥

उदाहरण—महावीर स्वामी और जिनदास इन दोनों के नाम के आद्य अक्षर के वर्गों को क्रम से लिखा तो ६३ हुए, इनको आठ से भाग दिया तो शेष ७ बचे, इनके आधे किये तो साढे तीन विश्वा बचे इसलिये महावीरदेव जिनदास का साढे तीन विश्वा करजदार है। अब उत्क्रम से वर्गों को लिखा तो ३६ हुए, इनको आठ से भाग दिया तो शेष चार बचे, इनके आधे किये तो दो विश्वा बचे, इसलिये जिनदास महावीर देव का दो विश्वा करजदार है। बचे हुए दोनों विश्वा में से अपना लेन देन निकाल लिया तो डेढ विश्वा महावीरदेव का अधिक रहा, इसलिये महावीर-देव डेढ विश्वा जिनदास के करजदार हुए। इसी प्रकार सर्वत्र लेन देन समझना।

योनि, गण, राशि, तारा शुद्धि और नाडीवेध ये पांच तो जन्म नक्षत्र से देखना चाहिये। यदि जन्म नक्षत्र मालूम न हो तो नाम नक्षत्र से देखना चाहिये। किन्तु वर्ग मैत्री और लेन देन तो प्रसिद्ध नाम के नक्षत्र से ही देखना चाहिये, ऐसा आरम्भसिद्धि ग्रंथ में कहा है।

राशि, योनि, नाडी, गण आदि जानने का शतपद्चक्र—

संख्या	नक्षत्र	अक्षर	राशि	वर्ण	वश्य	योनि	राशीश	गण	नाडी
१	अश्विनी	चू. चे. चो. ला.	मेष	क्षत्रिय	चतुष्पद	अश्व	मंगल	देव	आद्य
२	भरणी	ली. लू. ले. लो.	मेष	क्षत्रिय	चतुष्पद	गज	मंगल	मनुष्य	मध्य
३	कृत्तिका	अ. इ. उ. ए.	१ मेष ३ वृष	१ क्षत्रिय ३ वैश्य	चतुष्पद	बकरा	१ मंगल ३ शुक्र	राक्षस	अंत्य
४	रोहिणी	ओ. वा. वी. वु.	वृष	वैश्य	चतुष्पद	सर्प	शुक्र	मनुष्य	अंत्य
५	मृगशिर	वे वो का की	२ वृष २ मिथुन	२ वैश्य २ शूद्र	२ चतुष्पद २ मनुष्य	सर्प	२ शुक्र २ बुध	देव	मध्य
६	आर्द्रा	कु घ ङ, छ.	मिथुन	शूद्र	मनुष्य	श्वान	बुध	मनुष्य	आद्य
७	पुनर्वसु	के को, हा ही	३ मिथुन १ कर्क	३ शूद्र १ ब्राह्मण	३ मनुष्य १ जलचर	मार्जार	३ बुध १ चंद्र	देव	आद्य
८	पुष्य	हु हे. हो. डा.	कर्क	ब्राह्मण	जलचर	बकरा	चंद्रमा	देव	मध्य
९	आश्लेषा	डी डु. डे डो.	कर्क	ब्राह्मण	जलचर	मार्जार	चंद्रमा	राक्षस	अंत्य
१०	मघा	मा. मी. मु. मे	सिंह	क्षत्रिय	वनचर	चूहा	सूर्य	राक्षस	अन्त्य
११	पूर्वा फा०	मो. टा टी टु.	सिंह	क्षत्रिय	वनचर	चूहा	सूर्य	मनुष्य	मध्य
१२	उत्तरा फा०	टे, टो पा, पी.	१ सिंह ३ कन्या	१ क्षत्रिय ३ वैश्य	१ वनचर ३ मनुष्य	गौ	१ सूर्य ३ बुध	मनुष्य	आद्य
१३	हस्त	पु. षा. ण. ठ.	कन्या	वैश्य	मनुष्य	भैंस	बुध	देव	आद्य

१४	चित्रा	पे पो रा री.	२ कन्या २ तुला	२ वैश्य २ शूद्र	मनुष्य	वाघ	२ बुध २ शुक्र	राक्षस	मध्य
१५	स्वाति	रू. रे. रो. ता.	तुला	शूद्र	मनुष्य	भैंस	शुक्र	देव	अंत्य
१६	विशाखा	ती तु. ते तो	३ तुला १ वृश्चिक	३ शूद्र १ ब्राह्मण	३ मनुष्य १ कीडा	व्याघ्र	३ शुक्र १ मंगल	राक्षस	अंत्य
१७	अनुराधा	ना नी नु ने	वृश्चिक	ब्राह्मण	कीडा	हीरण	मंगल	देव	मध्य
१८	ज्येष्ठा	नो या. यी यु.	वृश्चिक	ब्राह्मण	कीडा	हीरण	मंगल	राक्षस	आद्य
१९	मूल	ये. यो. भा भी	धन	क्षत्रिय	मनुष्य	कुत्तर	गुरु	राक्षस	आद्य
२०	पूर्वाषाढा	भु. धा. फ ढा.	धन	क्षत्रिय	मनुष्य चतुष्पद	वानर	गुरु	मनुष्य	मध्य
२१	उत्तराषाढा	भे. भो जा जी.	१ धन ३ मकर	१ क्षत्रिय ३ वैश्य	चतुष्पद	न्यौला	१ गुरु ३ शनि	मनुष्य	अंत्य
२२	श्रवण	खी. खू खे खो	मकर	वैश्य	चतुष्पद जलचर	वानर	शनि	देव	अंत्य
२३	धनिष्ठा	गा. गी गु गे	२ मकर २ कुंभ	२ वैश्य २ शूद्र	२ जलचर २ मनुष्य	सिंह	शनि	राक्षस	मध्य
२४	शतभिषा	गो सा. सी सु	कुंभ	शूद्र	मनुष्य	घोडा	शनि	राक्षस	आद्य
२५	पूर्वाभाद्र	से. सो. दा दी.	३ कुंभ १ मीन	३ शूद्र १ ब्राह्मण	३ मनुष्य १ जलचर	सिंह	३ शनि १ गुरु	मनुष्य	आद्य
२६	उत्तराभाद्र	दु थ झ ञ	मीन	ब्राह्मण	जलचर	गौ	गुरु	मनुष्य	मध्य
२७	रेवती	दे. दो चा ची	मीन	ब्राह्मण	जलचर	हाथी	गुरु	देव	अंत्य

प्रतिष्ठा करानेवाले के साथ तीर्थंकरों के राशि, गण, नाडी आदि का मिलान किया जाता है, इसलिये तीर्थंकरों के राशि आदि का स्वरूप नीचे लिखा जाता है।

तीर्थंकरों के जन्म नक्षत्र—

वैश्वी-ब्राह्म-मृगाः पुनर्वसु-मघा-चित्रा-विशाखास्तथा,
राधा-मूल-जलर्क्ष-विष्णु-वरुणर्त्ता, भाद्रपादोत्तराः।
पौष्णं पुष्य-यमर्क्ष-दाहनयुताः पौष्णाश्विनी वैष्णवा,
दास्त्री त्वाष्ट्र-विशाखिकार्यमयुता जन्मर्क्षमालार्हताम ॥३८॥

उत्तराषाढा १, रोहिणी २, मृगशिर ३, पुनर्वसु ४, मघा ५, चित्रा ६, विशाखा ७, अनुराधा ८, मूल ९, पूर्वाषाढा १०, श्रवण ११, शतभिषा १२, उत्तराभाद्रपद १३, रेवती १४, पुष्य १५, [1]भरणी १६, कृत्तिका १७, रेवती १८, अश्विनी १९, श्रवण २०, अश्विनी २१, चित्रा २२, विशाखा २३ और उत्तराफाल्गुनी २४ ये तीर्थंकरों के क्रमशः जन्म नक्षत्र हैं ॥ ३८ ॥

तीर्थंकरों की जन्म राशि—

चापो गौर्मिथुनद्वयं मृगपतिः कन्या तुला वृश्चिक-
श्चापश्चापमृगास्यकुम्भशफरा मत्स्यः कुलीरो हुडुः।
गौर्मीनो हुडुरेणवक्त्रहुडुकाः कन्या तुला कन्यका,
विज्ञेयाः क्रमतोऽर्हतां मुनिजनैः सूत्रोदिता राशयः ॥३९।

धन १, वृषभ २, मिथुन ३, मिथुन ४, सिंह ५, कन्या ६, तुला ७, वृश्चिक ८, धन ९, धन १०, मकर ११, कुंभ १२, मीन १३, मीन १४, कर्क १५, मेष १६, वृषभ १७, मीन १८, मेष १९, मकर २०, मेष २१, कन्या २२, तुला २३ और कन्या २४ ये तीर्थंकरों की क्रमशः जन्म राशि हैं ॥ ३९ ॥

इसी प्रकार तीर्थंकरों के नक्षत्र, राशि, योनि, गण, नाड़ी और वर्ग आदि को नीचे लिखे हुए जिनेश्वर के नक्षत्र आदि के चक्र से खुलासावार समझ लेना।

---

१ छपे हुए बृहद्धारयायन्त्र में तथा दिनशुद्धि दीपिका में श्री शान्तिनाथजी का 'अश्विनी' नक्षत्र लिखा है यह भूल है, सर्वत्र त्रिषष्टी आदि ग्रंथों में भरणी नक्षत्र ही लिखा हुआ है।

जिनेश्वर के नक्षत्रआदि जानने का चक्र—

क्रम	जिन नाम	नक्षत्र	योनि	गण	[illegible]	राशि	राशीश्वर	नाडी	वर्ग वर्गेश्वर
१	ऋषभदेव	उत्तराषाढा	नकुल	मनुष्य	१	धन	गुरु	अंत्य	१ गरुड
२	अजितनाथ	रोहिणी	सर्प	मनुष्य	४	वृषभ	शुक्र	अंत्य	१ गरुड
३	संभवनाथ	मृगशिर	सर्प	देव	५	मिथुन	बुध	मध्य	८ मेष
४	अभिनंदन	पुनर्वसु	बीडाल	देव	७	मिथुन	बुध	आद्य	१ गरुड
५	सुमति	मघा	उंदर	राक्षस	१	सिंह	सूर्य	अंत्य	८ मेष
६	पद्मप्रभ	चित्रा	व्याघ्र	राक्षस	५	कन्या	बुध	मध्य	६ उंदर
७	सुपार्श्व	विशाखा	व्याघ्र	राक्षस	७	तुला	शुक्र	अंत्य	८ मेष
८	चंद्रप्रभ	अनुराधा	हरिण	देव	८	वृश्चिक	मंगल	मध्य	३ सिंह
९	सुविधि	मूल	श्वान	राक्षस	१	धन	गुरु	आद्य	८ मेष
१०	शीतल	पूर्वाषाढा	वानर	मनुष्य	२	धन	गुरु	मध्य	८ मेष
११	श्रेयांस	श्रवण	वानर	देव	४	मकर	शनि	अंत्य	८ मेष
१२	वासुपूज्य	शतभिषा	अश्व	राक्षस	६	कुंभ	शनि	आद्य	७ हरिण

१३	विमल	उत्तराभाद्रपद	गौ	मनुष्य	८	मीन	गुरु	मध्य	७ हरिण
१४	अनंत	रेवती	हस्ति	देव	६	मीन	गुरु	अंत्य	१ गरुड
१५	धर्मनाथ	पुष्य	अज	देव	८	कर्क	चद्रमा	मध्य	५ सर्प
१६	शान्तिनाथ	भरणी	हस्ति	मनुष्य	२	मेष	मंगल	मध्य	८ मेष
१७	कुंथुनाथ	कृत्तिका	अज	राक्षस	३	वृषभ	शुक्र	अंत्य	२ बिडाल
१८	अरनाथ	रेवती	हस्ति	देव	६	मीन	गुरु	अंत्य	१ गरुड
१६	मल्लिनाथ	अश्विनी	अश्व	देव	१	मेष	मंगल	आद्य	६ उंदर
२०	मुनिसुव्रत	श्रवण	वानर	देव	४	मकर	शनि	अंत्य	६ उंदर
२१	नमिनाथ	अश्विनी	अश्व	देव	१	मेष	मंगल	आद्य	५ सर्प
२२	नेमिनाथ	चित्रा	व्याघ्र	राक्षस	५	कन्या	बुध	मध्य	५ सर्प
२३	पार्श्वनाथ	विशाखा	व्याघ्र	राक्षस	७	तुला	शुक्र	अंत्य	६ उंदर
२४	महावीर	उत्तरा फाल्गुनी	गो	मनुष्य	३	कन्या	बुध	आद्य	६ उंदर

तिथि, वार और नक्षत्र के योग से शुभाशुभ योग होते हैं। उनमें प्रथम रविवार को शुभ योग बतलाते हैं—

भानौ भूत्यै करादित्य-पौष्णब्राह्ममृगोत्तराः ।
पुष्यमूलाश्विवासव्य-श्चैकाष्टनवमी तिथिः ॥ ४० ॥

रविवार को हस्त, पुनर्वसु, रेवती, मृगशीर, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, पुष्य, मूल, अश्विनी और धनिष्ठा इन नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र तथा प्रतिपदा, अष्टमी और नवमी इन तिथियों में से कोई तिथि हो तो शुभ योग होता है। उनमें तिथि और वार या नक्षत्र और वार ऐसे दो २ का योग हो तो द्विक शुभ योग, एवं तिथि वार और नक्षत्र इन तीनों का योग हो तो त्रिक शुभ योग समझना। इसी प्रकार अशुभ योगों में भी समझना ॥ ४० ॥

रविवार को अशुभ योग—

न चार्के वारुणं याम्यं विशाखात्रितयं मघा ।
तिथिः षट्सप्तरुद्रार्क-मनुसंख्या तथेष्यते ॥ ४१ ॥

रविवार को शतभिषा, भरणी, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा और मघा इन नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र तथा छट्ठ, सातम, ग्यारस, बारस और चौदस इन तिथियों में से कोई तिथि हो तो अशुभ योग होता है ॥ ४१ ॥

सोमवार को शुभ योग—

सोमे सिद्ध्यै मृगब्राह्म-मैत्राण्यार्यमणं करः ।
श्रुतिः शतभिषक् पुष्य-स्तिथिस्तु द्विनवाभिधा ॥ ४२ ॥

सोमवार को मृगशीर, रोहिणी, अनुराधा, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, श्रवण, शतभिषा और पुष्य इन नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र तथा दूज या नवमी तिथि हो तो शुभ योग होता है ॥ ४२ ॥

सोमवार को अशुभ योग—

न चन्द्रे वासवाषाढा-त्रयार्द्राश्विद्विदैवतम् ।
सिद्ध्यै चित्रा च सप्तम्येकादस्यादित्रयं तथा ॥ ४३ ॥

सोमवार को धनिष्ठा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित्, आर्द्रा, अश्विनी, विशाखा और चित्रा इन नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र तथा सातम, ग्यारस, बारस और तेरस इन तिथियों में से कोई तिथि हो तो अशुभ योग होता है ॥ ४३ ॥

मंगलवार को शुभ योग—

भौमेऽश्विपौष्णाहिर्बुध्न्य-मूलराधार्यमाग्निभम् ।
मृगः पुष्यस्तथाश्लेषा जया षष्ठो च सिद्धये ॥ ४४ ॥

मंगलवार को अश्विनी, रेवती, उत्तराभाद्रपदा, मूल, विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, कृत्तिका, मृगशीर, पुष्य और आश्लेषा इन नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र तथा त्रीज, आठम, तेरस और छट्ठ इन तिथियों में से कोई तिथि हो तो शुभ योग होता है ॥ ४४ ॥

मंगलवार को अशुभ योग—

न भोमे चोत्तराषाढा-मघार्द्रावासवत्रयम् ।
प्रतिपद्दशमी रुद्-प्रमिता च मता तिथिः ॥ ४५ ॥

मंगलवार को उत्तराषाढा, मघा, आर्द्रा, धनिष्ठा, शतभिषा और पूर्वाभाद्रपदा इनमें से कोई नक्षत्र तथा पडवा, दसम और ग्यारस इनमें से कोई तिथि हो तो अशुभ योग होता है ॥ ४५ ॥

बुधवार को शुभ योग—

बुधे मैत्रं श्रुति ज्येष्ठा-पुष्यहस्ताग्निभत्रयम् ।
पूर्वाषाढार्यमर्क्षे च तिथिर्भद्रा च भूतये ॥ ४६ ॥

बुधवार को अनुराधा, श्रवण, ज्येष्ठा, पुष्य, हस्त, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर, पूर्वाषाढा और उत्तराफाल्गुनी इनमें से कोई नक्षत्र तथा दूज, सातम और बारस इनमें से कोई तिथि हो तो शुभ योग होता है ॥ ४६ ॥

बुधवार को अशुभ योग—

न बुधे वासवाश्लेषा-रेवतीत्रयवारुणम् ।
चित्रामूलं तिथिश्रेष्ठा जयेकेन्द्रनवाङ्किता ॥ ४७ ॥

बुधवार को धनिष्ठा, आश्लेषा, रेवती, अश्विनी, भरणी, शतभिषा, चित्रा और मूल इनमें से कोई नक्षत्र तथा तीज, आठम, तेरस, पडवा, चौदस और नवमी इनमें से कोई तिथि हो तो अशुभ योग होता है ॥ ४७ ॥

गुरुवार को शुभ योग—

गुरौ पुष्याश्विनादित्य-पूर्वाश्लेषाश्च वासवम् ।
पौष्णं स्वातित्रयं सिद्ध्यै पूर्णाश्चैकादशी तथा ॥ ४८ ॥

गुरुवार को पुष्य, अश्विनी, पुनर्वसु, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, आश्लेषा, धनिष्ठा, रेवती, स्वाति, विशाखा और अनुराधा इनमें से कोई नक्षत्र तथा पांचम, दसम, पूर्णिमा या एकादशी तिथि हो तो शुभ योग होता है ॥ ४८ ॥

गुरुवार को अशुभ योग—

न गुरौ वारुणाग्नेय चतुष्कार्यमणद्वयम् ।
ज्येष्ठा भूत्यै तथा भद्रा तुर्या षष्ठ्यष्टमी तिथिः ॥ ४९ ॥

गुरुवार को शतभिषा, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर, आर्द्रा, उत्तराफाल्गुनी, हस्त और ज्येष्ठा इनमें से कोई नक्षत्र तथा दूज, सातम, बारस, चौथ, छट्ठ और आठम इनमें से कोई तिथि हो तो अशुभ योग होता है ॥ ४९ ॥

शुक्रवार को शुभयोग—

शुक्रे पौष्णाश्विनाषाढा मैत्रं मार्गं श्रुतिद्वयम् ।
यौनादित्ये करो नन्दात्रयोदश्यौ च सिद्धये ॥ ५० ॥

शुक्रवार को रेवती, अश्विनी, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अनुराधा, मृगशीर, श्रवण, धनिष्ठा, पूर्वाफाल्गुनी, पुनर्वसु और हस्त इन नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र तथा एकम, छट्ठ, ग्यारस और तेरस इनमें से कोई तिथि हो तो शुभ योग होता है ॥ ५० ॥

शुक्रवार को अशुभ योग—

न शुक्रे भूतये ब्राह्म पुष्यं सार्पं मघाभिजित् ।
ज्येष्ठा च द्वित्रिसप्तम्यो रिक्ताख्यास्तिथयस्तथा ॥ ५१ ॥

शुक्रवार को रोहिणी, पुष्य, आश्लेषा, मघा, अभिजित् और ज्येष्ठा इनमें से कोई नक्षत्र तथा दूज, त्रीज, सातम, चौथ, नवमी और चौदस इनमें से कोई तिथि हो तो अशुभ योग होता है ॥ ५१ ॥

शनिवार को शुभ योग—

शनौ ब्राह्मश्रुतिद्वन्द्वा-श्विमरुद्गुरुमित्रभम् ।
मघा शतभिषक् सिद्ध्यै रिक्ताष्टम्यौ तिथी तथा ॥ ५२ ॥

शनिवार को रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, अश्विनी, स्वाति, पुष्य, अनुराधा मघा और शतभिषा इनमें से कोई नक्षत्र तथा चौथ, नवमी, चौदस और अष्टमी इनमें से कोई तिथि हो तो शुभ योग होता है ॥ ५२ ॥

शनिवार को अशुभ योग—

न शनौ रेवती सिद्ध्यै वैश्वमार्यमणत्रयम् ।
पूर्वामृगश्च पूर्णाख्या तिथिः षष्ठी च सप्तमी ॥ ५३ ॥

शनिवार को रेवती, उत्तराषाढा, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा और मृगशीर इनमें से कोई नक्षत्र तथा पांचम, दसम, पूनम, छट्ठ और सातम इनमें से कोई तिथि हो तो अशुभ योग होता है ॥ ५३ ॥

उक्त सात वारों के शुभाशुभ योगों में सिद्धि, अमृतसिद्धि आदि शुभ योगों का तथा उत्पात, मृत्यु आदि अशुभ योगों का समावेश हो गया है, उनको पृथक् २ संज्ञा पूर्वक जानने के लिये नीचे लिखे हुए यंत्र में देखो ।

शुभाशुभ योग चक्र—

योग	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
चरयोग	पू. षा उ षा	आर्द्रा	विशाखा	रोहिणी	शतभिषा	मघा	मूल
क्रकचयोग	१२ ति	११ ति.	१० ति.	६ ति	८ ति	७ ति	६ ति
दग्ध योग	१२ ति.	११ ति.	५ ति	३ ति	६ ति	८ ति.	६ ति
विषाख्य योग	४ ति.	६ ति	७ ति.	२ ति	८ ति.	९ ति	७ ति
हुताशन योग	१२ ति	६ ति	७ ति	८ ति	६ ति	१० ति	११ ति
यमघंट योग	मघा	विशाखा	आर्द्रा	मूल	कृत्तिका	रोहिणी	हस्त
दग्ध योग	भरणी	चित्रा	उ पा.	धनिष्ठा	उ फा	ज्येष्ठा	रेवती
उत्पात	विशाखा	पूर्वाषाढा	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ० फा.
मृत्यु	अनुराधा	उत्तराषाढा	शतभिषा	अश्विनी	मृगशीर	आश्लेषा	हस्त
काण	ज्येष्ठा	अभिजित्	पू. भा	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा
सिद्धि	मूल.	श्रवण	उ. भा.	कृत्तिका	पुनर्वसु	पू. फा.	स्वाति
सर्वार्थ सिद्धि योग	ह. मू. उत्तरा ३. पुष्य. अश्वि.	श्र. रो. मृ. अनु. पुष्य	अश्विनी. उ भा. कृ. आ.	रो. अनु. ह. कृ. मृगशिरा	रे. अनु. अश्विनी पुष्य. पुन	रे. अनु. अश्विनी पुन. श्र.	श्रवण रोहिणी स्वाति
अमृत सिद्धि	हस्त	मृगशिर	अश्विनी	अनुराधा	पुष्य	रेवती	रोहिणी
वज्रमुसल	भरणी	चित्रा	उ. षा.	धनिष्ठा	उ. फा.	ज्येष्ठा	रेवती
शत्रुयोग	भरणी	पुष्य	उ. षा.	आर्द्रा	विशाखा	रेवती	शतभिष

रवियोग—

योगो रवेर्भात् कृत४-तर्क६ नन्द ९—
दिग्१० विश्व१३ विंशोडुषु सर्वसिद्ध्यै ।
आद्ये१ न्द्रिया५ श्व७ द्विप८ रुद्र११ सारी १५—
राजो१६ डुषु प्राणहरस्तु हेयः ॥ ५४ ॥

सूर्य जिस नक्षत्र पर हो, उस नक्षत्र से दिन का नक्षत्र चौथा, छट्ठा, नववाँ, दसवाँ, तेरहवाँ या वीसवाँ हो तो रवियोग होता है, यह सब प्रकार से सिद्धिकारक हैं। परन्तु सूर्य नक्षत्र से दिन का नक्षत्र पहला, पांचवाँ, सातवाँ, आठवाँ, ग्यारहवाँ पंद्रहवाँ या सोलहवाँ हो तो यह योग प्राण का नाशकारक है॥ ५४ ॥

कुमारयोग—

योगः कुमारनामा शुभः कुजज्ञेन्दुशुक्रवारेषु ।
अश्वाद्यैर्द्व्यन्तरितै-र्नन्दादशपञ्चमीतिथिषु ॥ ५५ ॥

मंगल, बुध, सोम और शुक्र इनमें से कोई एक वार को अश्विनी आदि दो २ अंतरवाले नक्षत्र हों अर्थात् अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, हस्त, विशाखा, मूल, श्रवण और पूर्वाभाद्रपद इनमें से कोई एक नक्षत्र हो; तथा एकम, छट्ठ, ग्यारस, दसम और पांचम इनमें से कोई एक तिथि हो तो कुमार नाम का शुभ योग होता है। यह योग मित्रता, दीक्षा, व्रत, विद्या, गृह प्रवेशादिक कार्य्यों में शुभ है। परन्तु मंगलवार को दसम या पूर्वाभाद्र नक्षत्र, सोमवार को ग्यारस या विशाखा नक्षत्र, बुधवार को पडवा या मूल या अश्विनी नक्षत्र, शुक्रवार को दसम या रोहिणी नक्षत्र हो तो उस दिन कुमार योग होने पर भी शुभ कारक नहीं है। क्योंकि इन दिनों में कर्क, संवर्त्तक, काण, यमघंट आदि अशुभ योग की उत्पत्ति है, इसलिये इन विरुद्ध योगों को छोड़कर कुमार योग में कार्य्य करना चाहिये ऐसा श्रीहरिभद्रसूरि कृत लग्न-शुद्धि प्रकरण में कहा है॥ ५५ ॥

राजयोग—

राजयोगो भरण्याद्ये-द्व्यन्तरैर्भैः शुभावहः ।
भद्रातृतीयाराकासु कुजज्ञभृगुभानुषु ॥ ५६ ॥

मंगल, बुध, शुक्र और रवि इनमें से कोई एक वार को भरणी आदि दो २ अंतरवाले नक्षत्र हों अर्थात् भरणी, मृगशिरा, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, चित्रा, अनुराधा, पूर्वाषाढा, धनिष्ठा और उत्तराभाद्रपदा इनमें से कोई नक्षत्र हो तथा दूज, सातम, बारस, तीज और पूनम इनमें से कोई तिथि हो तो राजयोग नाम का शुभ कारक योग होता है। इस योग को पूर्णभद्राचार्य ने तरुण योग कहा है ॥ ५६ ॥

स्थिर योग—

स्थिरयोगः शुभो रोगो-च्छेदादौ शनिजीवयोः ।
त्रयोदश्यष्टरिक्तासु द्व्यन्तरैः कृत्तिकादिभिः॥ ५७ ॥

गुरुवार या शनिवार को तेरस, अष्टमी, चौथ, नवमी और चौदस इनमें से कोई तिथि हो तथा कृत्तिका आदि दो २ अंतरवाले नक्षत्र हों अर्थात् कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, उत्तराफाल्गुनी, स्वाति, ज्येष्ठा, उत्तराषाढा, शतभिषा और रेवती इनमें से कोई नक्षत्र हो तो रोग आदि के विच्छेद में शुभकारक ऐसा स्थिरयोग होता है। इस योग में स्थिर कार्य करना अच्छा है ॥ ५७ ॥

वज्रपात योग—

वज्रपातं त्यजेद् द्वित्रिपञ्चषट्सप्तमे तिथौ ।
मैत्रेऽथ त्र्युत्तरे पैत्र्ये ब्राह्मे मूलकरे क्रमात् ॥ ५८ ॥

दूज को अनुराधा, तीज को तीनों उत्तरा (उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढा या उत्तराभाद्रपदा), पंचमी को मघा, छट्ठ को रोहिणी और सातम को मूल या हस्त नक्षत्र हो तो वज्रपात नाम का योग होता है। यह योग शुभकार्य में वर्जनीय है। नारचंद्र टिप्पन में तेरस को चित्रा या स्वाति, सातम को भरणी, नवमी को पुष्य और दसमी को आश्लेषा नक्षत्र हो तो वज्रपात योग माना है। इस वज्रपात योग में शुभ कार्य करें तो छः मास में कार्य करनेवाले की मृत्यु होती है, ऐसा हर्षप्रकाश में कहा है ॥ ५८ ॥

कालमुखी योग—

चउउत्तर पंचमघा कत्तिअ नवमीइ तइअ अणुराहा।

अट्ठमि रोहिणि सहिआ कालमुही जोगि मास छगि मच्चू॥ ५९॥

चौथ को तीनों उत्तरा, पंचमी को मघा, नवमी को कृत्तिका, तीज को अनुराधा और अष्टमी को रोहिणी नक्षत्र हो तो कालमुखी नाम का योग होता है। इस योग में कार्य करनेवाले की छः मास में मृत्यु होती है॥ ५९॥

यमल और त्रिपुष्कर योग—

मंगल गुरु सणि भद्दा मिगचित्त धणिट्ठिआ जमलजोगो।

किति पुण उ-फ विसाहा पू-भ उ-खाहिं तिपुक्करओ॥ ६०॥

मंगल, गुरु या शनिवार को भद्रा (२-७-१२) तिथि हो या मृगशिर, चित्रा या धनिष्ठा नक्षत्र हो तो यमल योग होता है। तथा उस वार को और उसी तिथि को कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, पूर्वाभाद्रपदा या उत्तराषाढा नक्षत्र हो तो त्रिपुष्कर योग होता है॥ ६०॥

पंचक योग—

पंचग धणिट्ठ अद्धा मयकिच्चवज्जिज्ज जामदिसिगमणं।

एसु तिसु सुहं असुहं विहिअं दु ति पण गुणं होइ॥ ६१॥

धनिष्ठा नक्षत्र के उत्तरार्द्ध से रेवती नक्षत्र तक (ध-श-पू-उ-रे) पांच नक्षत्र की पंचक संज्ञा है। इस योग में मृतक कार्य और दक्षिण दिशा में गमन नहीं करना चाहिये। उक्त तीनों योगों में जो शुभ या अशुभ कार्य किया जाय तो क्रम से दूना, तीगुना और पंचगुना होता है॥ ६१॥

अवला योग—

कित्तिअपभिइ चउरो सणि बुहि ससि सूर वार जुत्त कमा।

पंचमि बिइ एगारसि बारसि अवला सुहे कज्जे॥ ६२॥

कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिर और आर्द्रा नक्षत्र के दिन क्रमशः शनि, बुध, सोम और रविवार हो तथा पंचमी, दूज, ग्यारस और बारस तिथि हो तो अवला नाम

का योग होता है। अर्थात् कृत्तिका नक्षत्र, शनिवार और पंचमी तिथि; रोहिणी नक्षत्र, बुधवार और दूज तिथि; मृगशिर नक्षत्र, सोमवार और एकादशी तिथि; आर्द्रा नक्षत्र रविवार और बारस तिथि हो तो अवला योग होता है। यह शुभ कार्य में वर्जनीय है ॥ ६२ ॥

तिथि और नक्षत्र से मृत्यु योग—

मूलद्दसाइचित्ता असेस सयभिसयकत्तिरेवइआ ।
नंदाए भद्दाए भद्दवया फग्गुणी दो दो ॥ ६३ ॥
विजयाए मिगसवणा पुस्सऽस्सिणिभरणिजिट्ठ रित्ताए ।
आसाढदुग विसाहा अणुराह पुणव्वसु महा य ॥ ६४ ॥
पुन्नाइ कर धणिट्ठा रोहिणि इअमयगऽवत्थनक्खत्ता ।
नंदिपइट्ठापमुहे सुहकज्जे वज्जए मइमं ॥ ६५ ॥

नंदा तिथि (१-६-११) को मूल, आर्द्रा, स्वाति चित्रा, आश्लेषा, शतभिषा, कृत्तिका या रेवती नक्षत्र हो, भद्रा तिथि (२-७-१२) को पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी या उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र हो, जया तिथि (३-८-१३) को मृगशिर, श्रवण, पुष्य, अश्विनी, भरणी या ज्येष्ठा नक्षत्र हो, रिक्ता तिथि (४-९-१४) को पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, विशाखा, अनुराधा, पुनर्वसु या मघा नक्षत्र हो, पूर्णा तिथि (५-१०-१५) को हस्त, धनिष्ठा या रोहिणी नक्षत्र हो तो ये सब नक्षत्र मृतक अवस्थावाले कहे जाते हैं। इसलिये इनमें नंदी, प्रतिष्ठा आदि शुभ काय करना मतिमान् छोड़ दें ॥ ६३ से ६५ ॥

अशुभ योगों का परिहार—

कुयोगास्तिथिवारोत्था-स्तिथिभोत्था भवारजाः ।
हूणवंगखशेष्वेव वर्ज्यास्त्रितयजास्तथा ॥ ६६ ॥

तिथि और वार के योग से, तिथि और नक्षत्र के योग से, नक्षत्र और वार के योग से तथा तिथि नक्षत्र और वार इन तीनों के योग से जो अशुभ योग होवे हैं, वे सब हूण (उडीसा), बङ्ग (बंगाल) और खश (नेपाल) देश में वर्जनीय हैं। अन्य देशों में वर्जनीय नहीं हैं ॥ ६६ ॥

रविजोग राजजोगे कुमारजोगे असुद्ध दिअहे वि ।
जं सुहकज्जं कीरइ तं सव्वं बहुफलं होइ ॥ ६७ ॥

अशुभ योग के दिन यदि रवियोग, राजयोग या कुमारयोग हो तो उस दिन जो शुभ कार्य किये जाय वे सब बहुत फलदायक होते हैं ॥ ६७ ॥

अयोगे सुयोगोऽपि चेत् स्यात् तदानी-
मयोगं निहत्यैष सिद्धिं तनोति ।
परे लग्नशुद्ध्या कुयोगादिनाशं,
दिनार्द्धोत्तरं विष्टिपूर्वं च शस्तम् ॥ ६८ ॥

अशुभ योग के दिन यदि शुभ योग हो तो वह अशुभ योग को नाश करके सिद्धि कारक होता है । कितनेक आचार्य कहते हैं कि लग्नशुद्धि से कुयोगों का नाश होता है । भद्रातिथि दिनार्द्ध के बाद शुभ होती है ॥ ६८ ॥

कुतिहि-कुवार-कुजोगा विट्ठी वि अ जम्मरिक्ख दड्ढतिही ।
मज्झएहदिणाओ परं सव्वंपि सुभं भवेऽवस्सं ॥ ६९ ॥

दुष्टतिथि, दुष्टवार, दुष्टयोग, विष्टि (भद्रा), जन्मनक्षत्र और दग्धतिथि ये सब मध्याह्न के बाद अवश्य करके शुभ होते हैं ॥ ६९ ॥

अयोगास्तिथिवारर्क्ष-जाता येऽमी प्रकीर्त्तिताः ।
लग्ने ग्रहबलोपेते प्रभवन्ति न ते क्वचित् ॥ ७० ॥
यत्र लग्नं विना कर्म क्रियते शुभसञ्ज्ञकम् ।
तत्रैतेषां हि योगानां प्रभावाज्जायते फलम् ॥ ७१ ॥

तिथि वार और नक्षत्रों से उत्पन्न होने वाले जो कुयोग कहे हुए हैं, वे सब बलवान ग्रह युक्त लग्न में कभी भी समर्थ नहीं होते हैं अर्थात् लग्नबल अच्छा हो तो कुयोगों का दोष नहीं होता। जहां लग्न विना ही शुभ कार्य करने में आवे वहां ही उन योगों के प्रभाव से फल होता है ॥ ७०-७१ ॥

लग्न विचार—

लग्नं श्रेष्ठं प्रतिष्ठायां क्रमान्मध्यमथावरम् ।
द्व्यङ्गं स्थिरं च भूयोभि-र्गुणैराढ्यं चरं तथा ॥ ७२ ॥

जिनदेव की प्रतिष्ठा में द्विस्वभाव लग्न श्रेष्ठ है, स्थिर लग्न मध्यम और चर लग्न कनिष्ठ है। यदि चर लग्न अत्यंत बलवान शुभ ग्रहों से युक्त हो तो ग्रहण कर सकते हैं ॥ ७२ ॥

द्विस्वभाव	मिथुन ३	कन्या ६	धन ९	मीन १२	उत्तम
स्थिर	वृष २	सिंह ५	वृश्चिक ८	कुंभ ११	मध्यम
चर	मेष १	कर्क ४	तुला ७	मकर १०	अधम

सिंहोदये दिनकरो घटभे विधाता,
नारायणस्तु युवतौ मिथुने महेशः ।
देव्यो द्विमूर्त्तिभवनेषु निवेशनीयाः,
क्षुद्राश्चरे स्थिरगृहे निखिलाश्च देवाः ॥ ७३ ॥

सिंह लग्न में सूर्य की, कुंभ लग्न में ब्रह्मा की, कन्या लग्न में नारायण (विष्णु) की, मिथुन लग्न में महादेव की, द्विस्वभाववाले लग्न में देवियों की, चर लग्न में क्षुद्र (व्यंतर आदि) देवों की और स्थिर लग्न में समस्त देवों की प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ ७३ ॥

श्रीलल्लाचार्य ने तो इस प्रकार कहा है—

सौम्यैर्देवाः स्थाप्याः क्रूरैर्गन्धर्वयक्षरक्षांसि ।
गणपतिगणांश्च नियतं कुर्यात् साधारणे लग्ने ॥ ७४ ॥

सौम्य ग्रहों के लग्न में देवों की स्थापना करनी और क्रूर ग्रहों के लग्न में गन्धर्व, यक्ष और राक्षस इनकी स्थापना करनी तथा गणपति और गणों की स्थापना साधारण लग्न में करनी चाहिये ॥ ७४ ॥

लग्न में ग्रहों का होरा नवमांशादिक बल देखा जाता है, इसलिये प्रसंगोपात यहां लिखता हूं। आरम्भसिद्धिवार्तिक में कहा है कि—तिथि आदि के बल से चंद्रमा

का बल सौ गुणा है, चंद्रमा से लग्न का बल हजार गुणा है और लग्न से होरा आदि षड्वर्ग का बल उत्तरोत्तर पांच २ गुणा अधिक बलवान् है।

होरा और द्रेष्काण का स्वरूप—

होरा राश्यर्द्धमोजर्क्षे-ऽर्केन्द्वोरिन्द्वर्कयोः समे।

द्रेष्काणा भे त्रयस्तु स्व-पञ्चम-त्रित्रिकोणपाः ॥ ७५ ॥

राशि के अर्द्ध भाग को होरा कहते हैं, इसलिये प्रत्येक राशि में दो दो होरा हैं। मेष आदि विषम राशि में प्रथम होरा रवि की और दूसरी चंद्रमा की है। वृष आदि सम राशि में प्रथम होरा चंद्रमा की और दूसरी होरा सूर्य की है।

प्रत्येक राशि में तीन२ द्रेष्काण हैं, उनमें जो अपनी राशि का स्वामी है वह प्रथम द्रेष्काण का स्वामी है। अपनी राशि से पांचवीं राशि का जो स्वामी है वह दूसरे द्रेष्काण का स्वामी है और अपनी राशि से नववीं राशि का जो स्वामी है वह तीसरे द्रेष्काण का स्वामी है ॥ ७५ ॥

नवमांश का स्वरूप—

नवांशाः स्युरजादीना-मजैणतुलकर्कतः।

वर्गोत्तमाश्चरादौ ते प्रथमः पञ्चमोऽन्तिमः ॥ ७६ ॥

प्रत्येक राशि में नव२ नवमांश हैं। मेष राशि में प्रथम नवमांश मेष का, दूसरा वृष का, तीसरा मिथुन का, चौथा कर्क का, पांचवां सिंह का, छट्ठा कन्या का, सातवां तुला का, आठवां वृश्चिक का और नववां धन का है। इसी प्रकार वृष राशि में प्रथम नवमांश मकर से, मिथुन राशि में प्रथम नवमांश तुला से, कर्कराशि में प्रथम नवमांश कर्क से गिनना। इसी प्रकार सिंह और धनराशि के नवमांश मेष की तरह, कन्या और मकर का नवमांश वृष की तरह, तुला और कुंभ का नवमांश मिथुन की तरह, वृश्चिक और मीन का नवमांश कर्क की तरह जानना।

चर राशियों में प्रथम नवमांश वर्गोत्तम, स्थिर राशियों में पांचवाँ नवमांश और द्विस्वभाव राशियों में नववां नवमांश वर्गोत्तम है। अर्थात् सब राशियों में अपना२ नवमांश वर्गोत्तम है ॥ ७६ ॥

प्रतिष्ठा विवाह आदि में नवमांश की प्राधान्यता है। कहा है कि—

लग्ने शुभेऽपि यद्यंशः क्रूरः स्यान्नेष्टसिद्धिदः।

लग्ने क्रूरेऽपि सौम्यांशः शुभदोंऽशो बली यतः ॥ ७७ ॥

लग्न शुभ होने पर भी यदि नवमांश क्रूर हो तो इष्टसिद्धि नहीं करता है। और लग्न क्रूर होने पर भी नवमांश शुभ हो तो शुभकारक है, कारण कि अंश ही बलवान् है। क्रूर अंश में रहा हुआ शुभ ग्रह भी क्रूर होता है और शुभ अंश में रहा हुआ क्रूर ग्रह शुभ होता है। इसलिये नवमांश की शुद्धि अवश्य देखना चाहिये ॥ ७७ ॥

प्रतिष्ठा में शुभाशुभ नवमांश—

अंशास्तु मिथुनः कन्या धन्वाद्याद्धं च शोभनाः।

प्रतिष्ठायां वृषः सिंहो वणिग् मीनश्च मध्यमाः ॥ ७८ ॥

प्रतिष्ठा में मिथुन, कन्या और धन का पूर्वार्द्ध इतने अंश उत्तम हैं। तथा वृष, सिंह, तुला और मीन इतने अंश मध्यम हैं ॥ ७८ ॥

द्वादशांश और त्रिंशांश का स्वरूप—

स्युर्द्वादशांशाः स्वगृहादधीशा-स्त्रिंशांशकेष्वोजयुजोस्तु राश्योः।

क्रमोत्क्रमादर्थ-शरा-ष्ट-शैले-न्द्रियेषु भौमार्किगुरुज्ञशुक्राः ॥ ७९ ॥

प्रत्येक राशि में बारह २ द्वादशांश हैं। जिस नाम की राशि हो उसी राशि का प्रथम द्वादशांश और बाकी के ग्यारह द्वादशांश उसके पीछे की क्रमशः ग्यारह राशियों के नाम का जानना। इन द्वादशांशों के स्वामी राशियों के जो स्वामी हैं वे ही हैं।

प्रत्येक राशि में तीस त्रिंशांश हैं। इनमें मेष, मिथुन आदि विषम राशि के पांच, पांच, आठ, सात और पांच अंशों के स्वामी क्रम से मंगल, शनि, गुरु, बुध और शुक्र हैं। वृष आदि सम राशि के त्रिंशांश और उनके स्वामी भी उत्क्रम से जानना, अर्थात् पांच, सात, आठ, पांच और पांच त्रिंशांशों के स्वामी क्रम से शुक्र, बुध, गुरु, शनि और मंगल हैं ॥ ७९ ॥

षड्वर्ग की स्थापना का यंत्र—

राशि	राशि स्वामी	होरा	द्रेष्काणेश	नवांशेश	द्वादशांशेश	त्रिंशांशेश
मेष	मंगल	रवि चंद्र	मंगल रवि गुरु	म शु बु च र बु शु म गु	म शु बु च र बु शु म गु श श गु	५ म ५ श ८ गु ७ बु ५ शु
वृष	शुक्र	चंद्र रवि	शुक्र बुध शनि	श श गु म शु बु च र बु	शु बु च र बु शु म गु श श गु म	५ शु ७ बु ८ गु ५ श ५ म
मिथुन	बुध	रवि चंद्र	बुध शुक्र शनि	शु म गु श श गु म शु बु	बु च र बु शु म गु श श गु म शु	५ म ५ श ८ गु ७ बु ५ शु
कर्क	चंद्र	चंद्र रवि	चंद्र मंगल गुरु	च र बु शु म गु श श गु	च र बु शु म गु श श गु म शु बु	५ शु ७ बु ८ गु ५ श ५ म
सिंह	रवि	रवि चंद्र	रवि गुरु मंगल	म शु बु च र बु शु म गु	र बु शु म गु श श गु म शु बु च	५ मं ५ श ८ गु ७ बु ५ शु
कन्या	बुध	चंद्र रवि	बुध शनि शुक्र	श श गु म शु बु च र बु	बु शु म गु श श गु म शु बु च र	५ शु ७ बु ८ गु ५ श ५ म
तुला	शुक्र	रवि चंद्र	शुक्र शनि बुध	शु म गु श श गु म शु बु	शु म गु श श गु म शु बु च र बु	५ म ५ श ८ गु ७ बु ५ शु
वृश्चिक	मंगल	चंद्र रवि	मंगल गुरु चंद्र	च र बु शु म गु श श गु	म गु श श गु म शु बु च र बु शु	५ शु ७ बु ८ गु ५ श ५ म
धन	गुरु	रवि चंद्र	गुरु मंगल रवि	म शु बु च र बु शु म गु	गु श श गु म शु बु च र बु शु म	५ मं ५ श ८ गु ७ बु ५ शु
मकर	शनि	चंद्र रवि	शनि शुक्र बुध	श श गु म शु बु च र बु	श श गु म शु बु च र बु शु म गु	५ शु ७ बु ८ गु ५ श ५ म
कुंभ	शनि	रवि चंद्र	शनि बुध शुक्र	शु म गु श श गु म शु बु	श गु म शु बु च र बु शु म गु श	५ मं ५ श ८ गु ७ बु ५ शु
मीन	गुरु	चंद्र रवि	गुरु चंद्र मंगल	च र बु शु म गु श श गु	गु मं शु बु च र बु शु म गु श श	५ शु ७ बु ८ गु ५ श ५ म

लग्न कुण्डली में चंद्रमा का बल अवश्य देखना चाहिये। कहा है कि—

लग्नं देहः षट्कवर्गोऽङ्गकानि, प्राणश्चन्द्रो धातवः खेचरेन्द्राः।
प्राणे नष्टे देहधात्वङ्गनाशो, यत्नेनातश्चन्द्रवीर्यं प्रकल्प्यम् ॥ ८० ॥

लग्न शरीर है, षड्वर्ग ये अंग हैं, चन्द्रमा प्राण है और अन्य ग्रह सप्त धातु हैं। प्राण का विनाश हो जाने से शरीर, अंगोपांग और धातु का भी विनाश हो जाता है। इसलिये प्राणरूप चन्द्रमा का बल अवश्य लेना चाहिये ॥ ८० ॥

लग्न में सप्तम आदि स्थान की शुद्धि—

रविः कुजोऽर्कजो राहुः शुक्रो वा सप्तमस्थितः।
हन्ति स्थापककर्तारौ स्थाप्यमप्यविलम्बितम् ॥ ८१ ॥

रवि, मंगल, शनि, राहु या शुक्र यदि सप्तम स्थान में रहा हो तो स्थापन करानेवाले गुरु का और करनेवाले गृहस्थ का तथा प्रतिमा का भी शीघ्र ही विनाश कारक है ॥ ८१ ॥

त्याज्या लग्नेऽब्धयो मन्दात् षष्ठे शुक्रेन्दुलग्नपाः।
रन्ध्रे चन्द्रादयः पञ्च सर्वेऽस्तेऽब्जगुरू समौ ॥ ८२ ॥

लग्न में शनि, रवि, सोम या मंगल, छट्ठे स्थान में शुक्र, चन्द्रमा या लग्न का स्वामी, आठवें स्थान में चंद्र, मंगल, बुध, गुरु या शुक्र वर्जनीय है तथा सप्तम स्थान में कोई भी ग्रह हो तो अच्छा नहीं हैं। किन्तु कितनेक आचार्यों का मत है कि चन्द्रमा या गुरु सातवें स्थान में हों तो मध्यम फलदायक है ॥ ८२ ॥

प्रतिष्ठा कुण्डली में ग्रह स्थापना—

प्रतिष्ठायां श्रेष्ठो रविरुपचये शीतकिरणः,
स्वधर्माढ्ये तत्र क्षितिजरविजौ त्र्यायरिपुगौ।
बुधस्वर्ग्याचार्यौ व्ययनिधनवर्जौ भृगुसुतः,
सुतं यावल्लग्नान्नवमदशमायेष्वपि तथा ॥ ८३ ॥

प्रतिष्ठा के समय लग्न कुण्डली में सूर्य यदि उपचय (३-६-१०-११) स्थान में रहा हो तो श्रेष्ठ है। चन्द्रमा धन और धर्म स्थान सहित पूर्वोक्त स्थानों में

(२-३-६-६-१०-११) रहा हो तो श्रेष्ठ है। मंगल और शनि तीसरे, ग्यारहवें और छट्ठे स्थान में रहे हों तो श्रेष्ठ हैं। बुध और गुरु बारहवें और आठवें इन दोनों स्थानों को छोड़कर बाकी कोई भी स्थान में रहे हों ता अच्छे हैं, शुक्र लग्न से पांचवें स्थान तक (१-२-३-४-५) तथा नवम, दसम और ग्यारहवाँ इन स्थानों में रहा हो तो श्रेष्ठ है ॥ ८३ ॥

लग्नमृत्युसुतास्तेषु पापा रन्ध्रे शुभाः स्थिताः।
त्याज्या देवप्रतिष्ठायां लग्नषष्ठाष्टगः शशी ॥ ८४ ॥

पापग्रह (रवि मंगल, शनि, राहु और केतु) यदि पहले, आठवें, पांचवें और सातवें स्थान में रहे हों, शुभग्रह आठवें स्थान में रहे हों और चन्द्रमा पहले, छठे या आठवें स्थान में रहा हो, इस प्रकार कुण्डली में ग्रह स्थापना हो तो वह लग्न देव की प्रतिष्ठा में त्याग करने योग्य है ॥ ८४ ॥

नारचंद्र में कहा है कि—

त्रिरिपा१ वासुतखे२ स्वत्रिकोणकेन्द्रे३ विरैस्मरेऽत्रा४ग्न्यर्थे ५।
लाभे६ क्रूर१ बुधा२ चित३ भृग४ शशि५ सर्वे६ क्रमेण शुभाः ॥८५॥

क्रूग्रह तीसरे और छट्ठे स्थान में शुभ हैं, बुध पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे, पांचवें या दसवें स्थान में रहा हो तो शुभ है। गुरु दूसरे, पांचवें, नववें और केन्द्र (१-२-३-४) स्थान में शुभ है। शुक्र (६-५-१-४-१०) इन पांच स्थानों में शुभ है। चन्द्रमा दूसरे और तीसरे स्थान में शुभ है। और समस्त ग्रह ग्यारहवें स्थान में शुभ हैं ॥ ८५ ॥

खेऽर्कः केन्द्रारिधर्मेषु शशी ज्ञोऽरिनवास्तगः।
षष्ठेज्य स्वत्रिगः शुक्रो मध्यमाः स्थापनात्तणे ॥ ८६ ॥
आरेन्द्वर्काः सुतेऽस्तारिरिष्फे शुक्रस्त्रिगो गुरुः।
विमध्यमाः शनिर्धीखे सर्वे शेषेषु निन्दिताः ॥ ८७ ॥

दसवें स्थान में रहा हुआ सूर्य, केन्द्र (१-४-७-१०), अरि (६) और धर्म (९) स्थान में रहा हुआ चंद्र, छट्ठे, सातवें और नववें स्थान में रहा हुआ बुध, छट्ठे स्थान में गुरु, दूसरे व तीसरे स्थान में शुक्र हो तो प्रतिष्ठा के समय में मध्यम फलदायक है।

मंगल, चंद्र और सूर्य पांचवें स्थान में, शुक्र छट्ठे, सातवें या बारहवें स्थानें में, गुरु तीसरे स्थान में, शनि पांचवें या दसवें स्थान में हो तो विमध्यम फलदायक है। इनके सिवाय दूसरे स्थानों में सब ग्रह अधम हैं ॥ ८६–८७ ॥

प्रतिष्ठा में ग्रह स्थापना यंत्र—

वार	उत्तम	मध्यम	विमध्यम	अधम
रवि	३-६-११	१०	५	१-२-४-७-८-९-१२
सोम	२-३-११	१-४-६-७-९-१०	५	८ १२
मंगल	३-६-११-	०	५	१-२-४-७ ८-९ १०-१२
बुध	१-२-३-४-५ १०-११	६-७-९	०	८-१२
गुरु	१ २-४-५-९-७-१०-११	६	३	८-१२
शुक्र	१-४-५-९-१०-११	२-३	६-७-१२	८
शनि	३-६-११	०	५-१०	१-२-४-७ ८ ९-१२
रा के	३-६-११	२-४-५-८ ९-१०-१२	०	१-७

जिनदेव प्रतिष्ठा मुहूर्त—

बलवति सूर्यस्य सुते बलहीनेऽङ्गारके बुधे चैव ।
मेषवृषस्थे सूर्ये क्षपाकरे चार्हती स्थाप्या ॥ ८८ ॥

शनि बलवान् हो, मंगल और बुध बलहीन हों तथा मेष और वृष राशि में सूर्य और चन्द्रमा रहे हों तब अरिहंत (जिनदेव) की प्रतिमा स्थापन करना चाहिये ॥ ८८ ॥

महादेव प्रतिष्ठा मुहूर्त—

बलहीने त्रिदशगुरौ बलवति भौमे त्रिकोणसंस्थे वा ।
असुरगुरौ चायस्थे महेश्वरार्चा प्रतिष्ठाप्या ॥ ८९ ॥

गुरु बलहीन हो, मंगल बलवान् हो या नवम पंचम स्थान में रहा हो, शुक्र ग्यारहवें स्थान में रहा हो ऐसे लग्न में महादेव की प्रतिष्ठा करना चाहिये ॥ ८९ ॥

ब्रह्मा प्रतिष्ठा मुहूर्त्त—

बलहीने त्वसुरगुरौ बलवति चन्द्रात्मजे विलग्ने वा ।
त्रिदशगुरावायस्थे स्थाप्या ब्राह्मी तथा प्रतिमा ॥ ९० ॥

शुक्र बलहीन हो, बुध बलवान् हो या लग्न में रहा हो, गुरु ग्यारहवें स्थान में रहा हो ऐसे लग्न में ब्रह्मा की प्रतिमा स्थापन करना चाहिये ॥ ९० ॥

देवी प्रतिष्ठा मुहूर्त्त—

शुक्रोदये नवम्यां बलवति चन्द्रे कुजे गगनसंस्थे ।
त्रिदशगुरौ बलयुक्ते देवीनां स्थापयेदर्चाम् ॥ ९१ ॥

शुक्र के उदय में, नवमी के दिन, चन्द्रमा बलवान् हो, मंगल दसवें स्थान में रहा हो और गुरु बलवान् हो ऐसे लग्न में देवी की प्रतिमा स्थापन करना चाहिये ॥ ९१ ॥

इंद्र, कार्त्तिक स्वामी, यक्ष, चंद्र और सूर्य प्रतिष्ठा मुहूर्त्त—

बुधलग्ने जीवे वा चतुष्टयस्थे भृगौ हिबुकसंस्थे ।
वासवकुमारयक्षेन्दु-भास्कराणां प्रतिष्ठा स्यात् ॥ ९२ ॥

बुध लग्न में रहा हो, गुरु चतुष्टय (१-४-७-१०) स्थान में रहा हो और शुक्र चतुर्थ स्थान में रहा हो ऐसे लग्न में इन्द्र, कार्त्तिकेय, यक्ष, चंद्र और सूर्य की प्रतिष्ठा करना चाहिये ॥ ९२ ॥

ग्रह प्रतिष्ठा मुहूर्त्त—

यस्य ग्रहस्य यो वर्गस्तेन युक्ते निशाकरे ।
प्रतिष्ठा तस्य कर्त्तव्या स्वस्ववर्गोदयेऽपि वा ॥ ९३ ॥

जिस ग्रह का जो वर्ग (राशि) हो, उस वर्ग से युक्त चंद्रमा हो तब या अपने २ वर्ग का उदय हो तब ग्रहों की प्रतिष्ठा करना चाहिये ॥ ९३ ॥

बलहीन ग्रहों का फल—

बलहीनाः प्रतिष्ठाय रवीन्दुगुरुभार्गवाः ।

गृहेश-गृहिणी-सौख्य-स्वानि हन्युर्यथाक्रमम् ॥ ६४ ॥

सूर्य बलहीन हो तो घर के स्वामी का, चंद्रमा बलहीन हो तो स्त्री का, गुरु बलहीन हो तो सुख का और शुक्र बलहीन हो तो धन का विनाश होता है ॥ ६४ ॥

प्रासाद विनाश कारक योग—

तनु-बन्धु-सुत-द्यून-धर्मेषु तिमिरान्तकः ।

सकर्मसु कुजार्को च संहरन्ति सुरालयम् ॥ ६५ ॥

पहला, चौथा, पांचवाँ, सातवाँ या नववाँ इन पांचों में से किसी स्थान में सूर्य रहा हो तथा उक्त पांच स्थानों में या दसवें स्थान में मंगल या शनि रहा हो तो देवालय का विनाश कारक है ॥ ६५ ॥

अशुभ ग्रहों का परिहार—

सौम्यवाक्पतिशुक्राणां य एकोऽपि बलोत्कटः ।

क्रूरैरयुक्तः केन्द्रस्थः सद्योऽरिष्टं पिनष्टि सः ॥ ६६ ॥

बुध, गुरु और शुक्र इनमें से कोई एक भी बलवान् हो, एवं इनके साथ कोई क्रूर ग्रह न रहा हो और केन्द्र में रहे हों तो वे शीघ्र ही अरिष्ट योगों का नाश करते हैं ॥ ६६ ॥

बलिष्ठः स्वोच्चगो दोषानशीतिं शीतरश्मिजः ।

वाक्पतिस्तु शतं हन्ति सहस्रं वा सुरार्चितः ॥ ६७ ॥

बलवान् होकर अपना उच्च स्थान में रहा हुआ बुध अस्सी दोषों का, गुरु सौ दोषों का और शुक्र हजार दोषों का नाश करता है ॥ ६७ ॥

बुधो विनार्केण चतुष्टयेषु, स्थितः शतं हन्ति विलग्नदोषान् ।

शुक्रः सहस्रं विमनोभवेषु, सर्वत्र गीर्वाणगुरुस्तु लक्षम् ॥ ६८ ॥

सूर्य के साथ नहीं रहा हुआ बुध चार केन्द्र में से कोई केन्द्र में रहा हो तो लग्न के एक सौ दोषों का विनाश करता है । सूर्य के साथ नहीं रहा हुआ शुक्र

सातवें स्थान के सिवाय कोई भी केन्द्र में रहा हो तो लग्न के हजार दोषों का नाश करता है और सूर्य रहित गुरु चार में से कोई केन्द्र में रहा हो तो लग्न के लाख दोषों का विनाश करता है ॥ ९८ ॥

तिथिवासरनक्षत्रयोगलग्नक्षणादिजान् ।
सबलान् हरतो दोषान् गुरुशुक्रौ विलग्नगौ ॥ ९९ ॥

तिथि, वार, नक्षत्र, योग, लग्न और मुहूर्त्त से उत्पन्न होने वाले प्रबल दोषों को लग्न में रहे हुए गुरु और शुक्र नाश करते हैं ॥ ९८ ॥

लग्नजातान्नवांशोत्थान् क्रूरदृष्टिकृतानपि ।
हन्याज्जीवस्तनौ दोषान् व्याधीन् धन्वन्तरिर्यथा ॥ १०० ॥

लग्न से, नवांशक से और क्रूरदृष्टि से उत्पन्न होने वाले दोषों को लग्न में रहा हुआ गुरु नाश करता है, जैसे शरीर में रहे हुए रोगों को धन्वंतरी नाश करता है ॥ १०० ॥

शुभग्रह की दृष्टि से क्रूरग्रह का शुभपन—

लग्नात् क्रूरो न दोषाय निन्द्यस्थानस्थितोऽपि सन् ।
दृष्टः केन्द्रत्रिकोणस्थैः सौम्यजीवसितैर्यदि ॥ १०१ ॥

क्रूरग्रह लग्न से निंदनीय स्थान में रहे हों, परन्तु केन्द्र या त्रिकोण स्थान में रहे हुए बुध, गुरु या शुक्र से देखे जाते हों अर्थात् शुभ ग्रहों की दृष्टि पड़ती हो तो दोष नहीं है ॥ १०१ ॥

कूरा हवंति सोमा सोमा दुगुणं फलं पयच्छंति ।
जइ पासइ किंदठिओ तिकोणपरिसंठिओ वि गुरू ॥ १०२ ॥

केन्द्र में या त्रिकोण में रहा हुआ गुरु यदि क्रूरग्रह को देखता हो तो वे क्रूरग्रह शुभ हो जाते हैं और शुभ ग्रहों को देखता हो तो वे शुभग्रह दुगुना शुभ फल देनेवाले होते हैं ॥ १०२ ॥

सिद्धछाया लग्न—

सिद्धच्छाया क्रमादर्कादिषु सिद्धिप्रदा पदैः ।
रुद्र-सार्द्धाष्ट-नन्दाष्ट-सप्तभिश्चन्द्रवद् द्वयोः ॥ १०३ ॥

जब अपने शरीर की छाया रविवार को ग्यारह, सोमवार को साढे आठ, मंगलवार को नव, बुधवार को आठ, गुरुवार को सात, शुक्रवार को साढे आठ और शनिवार को भी साढे आठ पैर हो तब उसको सिद्धछाया कहते हैं, वह सब कार्य की सिद्धिदायक है ॥ १०३ ॥

प्रकारान्तर से सिद्धछाया लग्न—

वीसं सोलस पनरस चउदस तेरस य बार बारेव ।
रविमाइसु बारंगुलसंकुछायंगुला सिद्धा ॥ १०४ ॥

जब बारह अंगुल के शंकु की छाया रविवार को बीस, सोमवार को सोलह, मंगलवार को पंद्रह, बुधवार को चौदह, गुरुवार को तेरह, शुक्रवार को बारह और शनिवार को भी बारह अंगुल हो तब उसको भी सिद्धछाया कहते हैं ॥ १०४ ॥

शुभ मुहूर्त्त के अभाव में उपरोक्त सिद्धछाया लग्न से समस्त शुभ कार्य करना चाहिये । नरपतिजयचर्या में कहा है कि—

नक्षत्राणि तिथिवारा-स्ताराश्चन्द्रबलं ग्रहाः ।
दुष्टान्यपि शुभं भावं भजन्ते सिद्धच्छायया ॥ १०५ ॥

नक्षत्र, तिथि, वार, ताराबल, चन्द्रबल और ग्रह ये कभी दोषवाले हों तो भी उक्त सिद्धछाया से शुभ भाव को देनेवाले होते हैं ॥ १०५ ॥

प्रथम से ग्राहक बनने वाले मुनिवरों के नाम ।

नग		नाम
१०		श्रीमान् पंन्यास श्री धर्मविजयजी गणी महाराज
१०	,,	मुनिराज श्री धीरविजयजी महाराज
५	,,	गणाधीश श्री हरिसागरजी ,,
५	,,	पंन्यास श्री हिमतविजयजी ,,
५	,,	मुनिराज श्री कर्पूरविजयजी ,, (वीर पुत्र)
२	,,	प्रवर्त्तक श्री कान्तिविजयजी ,,
२	,,	पंन्यास श्री हिमतविमलजी गणी ,,
२	,,	मुनिराज श्री कल्याणविजयजी ,, (इतिहास रसिक)
२	,,	मुनिराज श्री उत्तमविजयजी ,,
२	,,	पंन्यास श्री रंगविजयजी ,,
२	,,	मुनिराज श्री अमरविजयजी ,,
२	,,	पार्श्वचंद्रगच्छीय जैनाचार्य श्री देवचंद्रसूरीजी ,,
१	,,	मुनिराज श्री मानसागरजी ,,
१	,,	पंन्यास श्री उमंगविजयजी ,,
१	,,	पंन्यास श्री मानविजयजी ,,
१	,,	मुनिराज श्री विवेकविजयजी ,,
१	,,	तपस्वी श्री गुणविजयजी महाराज
१		श्रीमान् न्याय विशारद न्यायतीर्थ मुनिराज श्री न्यायविजयजी महाराज
१	,,	मुनिराज श्री रविविमलजी ,,
१	,,	मुनिराज श्री शीलविजयजी ,,
१	,,	मुनिराज श्री महेन्द्रविमलजी ,,
१	,,	मुनिराज श्री वीरविजयजी ,,
१	,,	मुनिराज श्री जसविजयजी ,,
१	,,	न्याय शास्त्र विशारद मुनि श्रीचिन्तामणसागरजी ,,
१	,,	मुनि श्री रत्नविजयजी ,,
१	,,	यतिवर्य पं० लब्धिसागरजी ,,
१	,,	,, पं० देवेन्द्रसागरजी ,,
१	,,	,, पं० अनूपचन्दजी ,,
१	,,	,, पं० प्रेमसुंदरजी ,,
१	,,	,, पं० लक्ष्मीचंदजी ,, (राजवैद्य)
१	,,	,, पं० रामचंद्रजी ,,
१	,,	,, वाचक पं० जीवनमलजी गणी महाराज

प्रथम से ग्राहक बननेवाले सद्गृहस्थों के नाम ।

नग	नाम	
१२५	सेण्ड हर्स्ट रोड का जैन उपाश्रय हस्ते शा० मंगलदास चीमनलाल	बम्बई
१००	झवेरी सेठ रणछोड़भाई रायचंद मोतीचंद	बम्बई
२०	सेठ रायचंद गुलाबचंद अच्छारी वाले	बम्बई
१५	सेठ किसनलालजी संपतलालजी लूनावत	फलोदी
१५	सेठ मेघराज भीखमचंद मुणोत	फलोदी
५	मिस्त्री भायशंकर गौरीशंकर सोमपुरा	पालीताना
३	सेठ आशाभाई चतुरभाई	मांडल

नग	नाम
२	जैनागम वृहद्‌भांडागार रतलाम
२	जैन श्वेताम्बर सोसायटी हस्ते बाबू चांदमलजी चौपड़ा मधुवन
१	शाह जीवराजजी भीमाजी, खीवाणदी
१	,, फूलचंदजी चुन्नीलालजी ,,
१	,, सहसमलजी सेनाजी ,,
१	,, उमेदमलजी ओटाजी ,,
१	,, चुन्नीलालजी कस्तूरचंदजी ,,
१	,, फोजमलजी वनेचंदजी ,,
१	,, दलीचंदजी दोवाजी फालंदरी
१	,, हुकमीचंदजी डोंगाजी ,,
१	,, भनुतमलजी मनाजी ,,
१	,, हेमाजी खूबाजी ,,
१	,, ताराचंदजी भभूतमलजी ,,
१	,, जी० आर० शाह ,,
१	,, जेठमलजी अचलाजी चडवाल
१	,, एच० जे० राठौड़ कोल्हापुर
१	,, मिलापचंदजी प्रतापचंदजी सिरोही
१	,, साकलचंदजी चीमनाजी जावाल
१	,, भगवानजी लुंबाजी सियाणा
१	,, ताराचंदजी वीठाजी ,,
१	,, ताराचंदजी नरसिंहजी ,,

नग	नाम
१	शाह नथमलजी हेमाजी सियाणा
१	,, कपूरचंदजी जेठमलजी ,,
१	,, भीखमचंदजी वनाजी खोपोली (कोलाबा)
१	,, भेरांजी वृद्धिचंदजी तातेड़ लेडगांव
१	,, जुवारमलजी गुमनाजी शिवगंज
१	,, फूलचंद खेमचंद वलाद
१	बाबू चौथमलजी चंडालिया पालीताना
१	शाह चतुरभाई पूंजाभाई ,,
१	मिस्त्री वृंदावन जेरामभाई सोमपुरा ,,
१	,, नटवरलाल मोहनलाल सोमपुरा सिद्धपुर
१	,, जदुलाल मानचंद सोमपुरा वीसनगर
१	भोजक हाथीराम काशीराम वडगांव
१	शाह न्यालचंद मोतीचन्द भटंडा
१	,, दलीचंद छगनलाल धांगध्रावाला
१	,, छोटालाल डामरसी कोटकपुरा
१	सेठ सत्यनारायणजी देहली
१	शाह हीरालाल छगनलाल कडी
१	बाबू इंद्रचंदजी बोथरा अजीमगंज
१	सेठ मोतीलाल कन्हैयालाल हापड़